गुरुत्तं

भाग– 14

आचार्य श्री वसुनन्दी मुनि

कृति : गुरुत्तं-14

मंगल आशीर्वाद : परम पूज्य श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी मुनिराज

प्रवचनकार : आचार्य श्री 108 वसुनन्दी जी मुनिराज

संपादन : आर्यिका वर्धस्वनंदनी

प्राप्ति स्थान : • श्री जम्बूस्वामी तपोस्थली, बोलखेड़ा (कामां) राजस्थान

संस्करण : प्रथम 1000 (सन् 2021)

प्रकाशक : निर्ग्रंथ ग्रंथमाला समिति

मुद्रक : पारस प्रकाशन, दिल्ली

मो. : 9811374961, 9818394651, 9811363613

pkjainparas@gmail.com, kavijain1982@gmail.com

पुरोवाक्

भत्ति-सुक्ख-संतीणं, तुट्ठीए तिप्पीए णिगरणं च।
णाणं व णत्थि अण्णं, णो भूदो खलु होस्सदे णो।।

—विद्यावसुश्रावकाचार

निश्चय से ज्ञान के समान भक्ति, सुख शांति और तृप्ति का कारण अन्य न था, न है और न होगा।

णाणं महा दीवो, जदि सम्मत्त-सुद्धचरित्तजुत्तं।
विसयमोहपवणेणं, णिव्ववेज्ज खलु तं कयावि ण।।

—सुद्धप्पा

ज्ञान महाप्रदीप है। यदि वह ज्ञान सम्यक्त्व व शुद्ध चारित्र से युक्त है तो उसे विषय व मोह की पवन के द्वारा कदापि भी नहीं बुझाया जा सकता।

प्राणीमात्र को संतप्त करने वाले, कंठ को शुष्क व चर्म को झुलसाने वाले ज्येष्ठ मास के प्रचंड सूर्य के आतप से बचने के लिए पथिक पदत्राण व सिरत्राण का प्रयोग करते ही हैं उसी प्रकार मोक्षमार्ग के पथिक पाप, दुःख व क्लेश रूपी सूर्य के ताप से बचने हेतु देव, शास्त्र, गुरु का आलंबन लेते है। वर्तमान में वीतरागी देवों का तो साक्षात् सानिध्य संभव है ही नहीं और जिनेन्द्र प्रभु की वाणी या जिनागम के गूढ़ रहस्यों के सुबोधार्थ समीचीन मति भी दृष्टिगोचर नहीं होती। तब मात्र गुरु का सानिध्य ही संसार रूपी महासागर से पार होने हेतु सम्यक् द्रोणी है। वर्तमान में गुरु ही जिनशास्त्रों

के रहस्यों को समीचीनता से उद्घाटित कर भव्यों तक पहुँचाने में समर्थ हैं। अनादिकालीन कर्म कालिमा के प्रक्षालन हेतु गुरु सानिध्य, गुरुवचन ही निर्मल मंदाकिनी की धारा के समान है।

जिस प्रकार विक्रिया से उत्तर शरीर को धारण करने वाले देव के आत्म प्रदेश अनुस्यूत रहते हैं उसी प्रकार परमागम से अनुस्यूत आचार्य परमेष्ठी के वचन ही भव्यों के कल्याण में समर्थ होते हैं। उनकी पावन वचन वर्गणाएँ निःसंदेह आत्मा को निर्मल व पवित्र बनाने वाली होती हैं। जिस प्रकार सूर्य की किरणों से सूक्ष्म बैक्टीरिया नष्ट हो जाते हैं। उसी प्रकार गुरु रूपी सूर्य से उद्‌गमित वचन रूपी रश्मियाँ विकार, विकृत या दूषित भावना रूपी कीटाणु का क्षय करने वाली होती हैं। सूर्य पक्षपात से रहित होकर सभी को अपना प्रकाश प्रदान करता है। सूर्य के प्रकाश से धरतीतल के समस्त प्राणी लाभान्वित होते हैं उसी प्रकार गुरु के वचन सभी प्राप्त कर सकें, सभी उत्तम, श्रेष्ठ कल्याणकारी मार्ग पर अग्रसर हो सकें। एतावता गुरुवचनों, प्रवचनों का संकलन यहाँ किया जा रहा है।

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज के मीठे प्रवचनों का संकलन ''गुरुत्तं'' नामक पुस्तक के विभिन्न भागों के रूप में किया जा रहा है। पाठकों के पुस्तक के नवीन भाग को शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त करने, पढ़ने की उत्सुकता व उनके द्वारा बताया गया इन प्रवचनों द्वारा उनके जीवन का समीचीन परिवर्तन हमारे लिए प्रेरणादायी भी है। अतः गुरुत्तं के 13 भाग पाठकों तक पहुँच चुके हैं। अब यह गुरुत्तं भाग 14वाँ भाग प्रस्तुत है। हमें आशा है कि पूर्व की भांति ही आप सब इसका भी समीचीन लाभ प्राप्त कर सकेंगे। अवगुणों का नाश, सम्यक् गुणोत्पादन, कषायों का शमन, धर्मध्यान की वृद्धि, परिणामों की विशुद्धि प्रभृति कृति संपादन का उद्देश्य है।

2019 चातुर्मास में शनिवार व रविवार को नोएडा में होने वाले विशेष प्रवचनों का यहाँ संकलन किया गया है। उस समय हमारा चातुर्मास कालका जी दिल्ली में हुआ था। नोएडा के श्रावकगण आते थे व कहते थे कि रयणसार की जो वाचना चल रही है वह तो अद्‌भुत है ही लेकिन शनिवार-रविवार का तो हम तीव्र उत्सुकता के साथ इंतजार करते हैं। उन दिनों तो हॉल में पैर रखने की भी जगह नहीं होती, सीढ़ियों में भी लोग बैठे रहते हैं। आचार्य श्री के Weekend प्रवचन तो awesome हैं।'' इन शब्दों को सुनकर हमें भी गुरुवर श्री के प्रवचन सुनने की और भी तीव्र उत्कंठा होती थी।

गुरुवर श्री ने ''नारी निर्मल बने निर्बल नहीं'', समय का लुटेरा, जो ऊबे सो डूबे, बिना कली का चमन, गुरुत्वाकर्षण इत्यादि शीर्षकों पर प्रवचन दे सभी के मन, मस्तिष्क व हृदय को झकझोर दिया। इन शीर्षकों को पढ़कर ही इन्हें पढ़ने हेतु मन आकर्षित होता है। नोएडा निवासियों को बस यही कहते सुना कि निरंतर ऐसा जनसमूह व ऐसे प्रवचन न आज तक देखे, न सुने।

प्रस्तुत कृति **गुरुत्तं भाग-14** परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के मीठे प्रवचनों का संकलन है। गुरुवर की साक्षात् अमृतवाणी के श्रवण से वंचित रहने वाले भव्यजनों तक गुरु की यह कल्याणकारी वाणी पहुँच सके, इस हेतु यहाँ प्रवचनों का संकलन किया गया है। हमारे द्वारा प्रामदवश अल्पज्ञता वश इस संपादन के कार्य में यत्किंचित् भी त्रुटि रह गई हो तो सुधी पाठक नीर-क्षीर विवेकी हंसवत् गुणग्राहक दृष्टि बनाकर क्षीर रूपी गुणों का अवग्रहण करें और सारहीन नीर का परित्याग। संभव है आपका आनंद, संतोष, हितमार्ग संप्राप्ति एवं कल्याण हमारे परिणामों में विशुद्धि एवं आनंद का निमित्त बन सके।

पुस्तक की पांडुलिपि तैयार करने में आर्यिका श्री यशोनंदनी माता जी का श्रम श्लाघनीय है। पुस्तक के मुद्रण प्रकाशन में सहयोगी सभी धर्मस्नेही बंधुओं को पूज्य गुरुवर श्री का मंगलमय शुभाशीष।

गुरुवर श्री का संयम पथ सदैव आलोकित रहे शताधिक वर्षो तक वसुधा गुरुवर श्री के तप, ज्ञान, साधना से सुरभित रहे। परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, अक्षर शिल्पी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के चरणों में सिद्ध-श्रुत-आचार्य भक्ति सहित कोटिश: नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु.....।।

''जैनं जयतु शासनं''

श्री शुभमिति माघ शुक्ल दशमी
श्री वीर निर्वाण संवत् 2547
सोमवार 22/2/2021
श्री जम्बूस्वामी तपोस्थली-बौलखेडा,
कामां, भरतपुर (राज.)

–आर्यिका वर्धस्वनंदनी

अनुक्रमणिका

पुरोवाक्	3
1. "कोऽहं"	9
2. सदा न फूले केतकी	27
3. गुरुत्वाकर्षण	48
4. सद्गृहस्थ के सद्कर्तव्य	75
5. धर्म का प्रभाव	95
6. जो ऊबे सो डूबे	114
7. नारी निर्मल बने निर्बल नहीं	143
8. समय का लुटेरा	167
9. बिना कली का चमन	197

उच्चावचजनप्राय: समयोऽयं जिनेशिनाम्।
नैकस्मिन् पुरुषे तिष्ठेदेकस्तंभ इवालय:।।

अर्थ–जिनेंद्र देव का जैन शासन छोटे-बड़े-हीन अधिक सब तरह के श्रावक-श्राविका श्रमण व श्रमणा चतु:संघ समाजों से संगृहीत समझना चाहिए। कोई यह न समझे कि एक ही खंभे पर (या 1 ईंट पर) इमारत कभी खड़ी रह सकती है।

–उपासकाध्ययन

श्री सोमदेव सूरी

"कोऽहं"

महानुभाव! यह संसार एक रंगमंच है, इस रंगमंच पर प्रत्येक संसारी जीव अनेक भेष को धारण करके कुछ देर के लिये अपना रोल अदा करता है, किन्तु जिस भेष को धारण करके यह संसारी प्राणी अपनी प्रस्तुति कर रहा है वह उसका वास्तविक स्वरूप नहीं है। यह संसार का मंच कभी खाली नहीं हुआ, इस मंच पर अपनी-अपनी प्रस्तुति देने वाले व्यक्ति जो उस प्रस्तुति स्वरूप को ही अपना सत्यस्वरूप मान लेते हैं वे कभी सत्यस्वरूप तक पहुँच नहीं सकते। जो इस संसार मंच पर नाटक करते हुये स्वयं को नाटककार ही समझ रहे हैं और अपने वास्तविक स्वरूप को भी जानते हैं वे अधिक समय तक उस आर्टिफीशियल कृत्रिम स्वरूप में रह नहीं सकते, उन्हें कोई दीर्घकाल तक भ्रमित नहीं कर सकता।

रामलीला के मैदान में रंगमंच करता हुआ एक व्यक्ति रावण के भेष में है, एक राम के भेष में है, तो एक सीता के भेष में है, तो कोई अन्य-अन्य किरदार के भेष में है। सब अलग-अलग रूप में हैं। जब तक रंग मंच पर हैं तब तक उन्हें अपने अनुकूल डॉयलॉग्स बोलने पड़ेंगे, अन्यथा संसार के रंगमंच पर संसार का आनंद नहीं आयेगा तुम्हारा नाटक फ्लॉप हो जाएगा व ड्रामा ड्रामा ही बनकर रह जायेगा, इसलिए उस संसार के नाटक में तुम्हें जो कुछ भी करना है करो, किन्तु इतना ध्यान रखो तुम वह नहीं हो जो तुम अभी कर रहे हो। कभी तुम संसार के मंच पर देव बनकर प्रस्तुत हुये, कभी उसी संसार

के मंच पर नारकी भी बने, कभी उस मंच पर पशु-पक्षी-कीट-कृमि भ्रमर-पतंगे आदि बने तो कभी भोगभूमि के तिर्यंच व मनुष्य बने तो कभी कर्मभूमि के निर्धन पाप का फल भोगने वाले नर बने, तो कभी इस कर्म भूमि में पुण्य का फल भोगने वाले नरश्रेष्ठ भी बने। किंतु फिर भी तुम वह नहीं हो जो तुम बने हो।

जो बनता है वह कृत्रिम अवस्था है। बनने वाला एक दिन मिटता जरूर है। जो बनता है वह स्वयं समझता है कि मैं बन रहा हूँ मैं वास्तव में ऐसा हूँ नहीं। बनना और होना दोनों में बहुत अन्तर है। बनना एक बाह्य अवस्था है, बनने में सदैव दूसरे से प्रशंसा पाने का भाव है, बनने में दूसरे को कुछ का कुछ दिखाने का भाव है, बनने में अपनी असलियत छिपाने का भाव है, किन्तु होने में बाहर के नकली आवरण को दूर कर देना है फिर आपको कुछ बनना नहीं जो है सो है।

महानुभाव! 'मैं कौन हूँ'? इस बात को हम आज तक इसीलिये नहीं जान पाये क्योंकि अनादिकाल से हम बनते चले आये हैं। और जो बनता चला आया है वह मिटता भी चला आया है। बनने के साथ ही मिटने का सिलसिला प्रारंभ हो जाता है। जन्म के साथ ही मृत्यु की गिनती प्रारंभ होती है। इधर हम सीधी गिनती कर रहे हैं कि हमारी आयु इतनी हो गयी, उधर मृत्यु उल्टी गिनती करती है कि इतने वर्ष कम हो गये। इधर से बढ़ता हुआ दिखाई देता है, उधर से घटता हुआ दिखायी देता है। जैसे मथानी की रस्सी का एक छोर बढ़ता हुआ दिखायी दे रहा है तो दूसरा छोर उतना घटता हुआ दिखायी दे रहा है। सूर्योदय के साथ ही सूर्य अस्त का प्रारंभ हो जाता है। जन्म-मृत्यु की नियति पर यावज्जीवन नाच करते रहते हैं। जो पुष्प खिलता है वह मुरझाता जरूर है। इस नियति को कोई टाल नहीं सकता।

अब थोड़ा सा देखना ये है कि वास्तव में "मैं हूँ कौन"? यद्यपि 'मैं कौन हूँ' ये प्रश्न ही हमारे मन में कभी नहीं आता, क्योंकि हमारी ये धारणा बनी हुयी है कि मैं हूँ कौन? लो मैं क्या अपने आप को नहीं जानता, इसलिये मैं हमेशा दूसरों के विषय मे पूछता हूँ, दूसरों की जानकारी करता हूँ कि सामने वाला कौन है, सामने वाले फ्लैट में कौन रहता है, पीछे कौन रहता है, सामने से कौन आया, कौन गया। 'कौन है' यह प्रश्न हमेशा हमारे चित्त में Second Person और IIIrd Person के लिये जनरेट होता रहा Ist Person के लिये कभी जनरेट नहीं हुआ। जब तुम पहली बार किसी से मिलते हो तो सामने वाला व्यक्ति आपसे पूछता है कि आप कौन हैं, कहाँ से आये हैं। या आप किसी से, उसके मित्र या निकट संबधी के बारे में पूछते हैं वह कौन है। तो प्रायः कर के यावज्जीवन व्यक्ति के प्रश्न IInd या IIIrd Person से संबंधित ही होते हैं Ist Person से संबंधित प्रश्न आज तक मन में पैदा ही नहीं हुआ। और कभी-कभी तो यह जीव अपने भ्रम को दूसरों पर थोपने का भी दुःसाहस करता है और सामने वाले को बताना चाहता है कि मैं कौन हूँ। और पूछता भी है, क्या तू नहीं जानता है कि मैं कौन हूँ। सामने वाला व्यक्ति सहम जाता है, कोई बलवान् और विवेकी हो तो उत्तर दे भी सकता है किन्तु जो व्यक्ति उस जैसा ही डरपोक है कायर है, निर्बल-दुर्बल है वह कहता है हाँ भाई मुझसे गलती हो गयी मैंने आपके सामर्थ्य को नहीं जान पाया।

तो व्यक्ति सामने वाले को भ्रमित करना चाहता है, सत्यता ये है कि वह स्वयं अपने आप को नहीं जानता, उसने अभी बाहर की पर्याय व वेषभूषा को अपना असली स्वरूप मान लिया है और भ्रमित हो गया है। जैसे किसी व्यक्ति का पैर किसी जड़ी-बूटी पर पड़ जाये जिससे बुद्धि विभ्रम हो जाता है, अर्थात् यदि मार्ग में चलते-चलते

किसी का पैर जड़ी-बूटी पर पड़ जाये तो वह जो सीधा चल रहा था, उल्टा चलने लगेगा कि मेरी मंजिल इधर नहीं उधर है। जहाँ पूर्व है वहाँ उसे पश्चिम दिखेगा और जहाँ पश्चिम है वहाँ पूर्व दिखेगा। जड़ी-बूटी का प्रभाव ऐसा भी हो सकता है कि जो दृश्य सामने है वह न दिखकर कुछ और दिखाई दे जाये।

कुछ लोग सिद्धियाँ भी करते हैं, इन्द्रजालिक होते हैं, वे सिद्धि करके अपने करतब दिखाते हैं और कुछ का कुछ दिखा देते हैं। एक करतब दिखाने वाले व्यक्ति ने एक पेलने वाला कोल्हू लिया (पहले पत्थर के होते थे, फिर समय बीता लोहे के तीन बेलन आये उसके बीच में जब गन्ना देते हैं वह जब बैलों से चलता है तो उस कोल्हू से रस निकलता है) वह अपना करतब दिखा रहा था, उसने सबके सामने उस कोल्हू को अपने सिर पर रख लिया। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ इस कोल्हू में तो बहुत वजन है एक बेलन में ही 3-4 मन का वजन हो सकता है। और ये बड़े-बड़े बेलन हैं संभव है इनमें 5-6 कुन्टल वजन भी हो। इस व्यक्ति ने इन्हें अपने सिर पर रख कैसे लिया, और सभी लोग वाह-वाह करके तालियाँ बजा रहे हैं। तभी एक व्यक्ति जंगल की ओर से अपने सिर पर घास की पोटली रखकर आ रहा था और वह खेल देखते हुये भीड़ में खड़ा हो गया। सब कह रहे थे वाह-वाह कमाल हो गया इसने कोल्हू को अपने सिर पर रख लिया। वह व्यक्ति कहता है—मूर्ख कहीं के कहाँ कोल्हू सिर पे रख लिया, कोल्हू तो जमीन पर रखा है वह तो जमीन पर सिर लगाकर के बस खड़ा है। कहाँ रखा है सिर पर? उस कला दिखाने वाले व्यक्ति ने कहा—तेरे सिर पर घास की पोटली रखी है इसलिये तुझे साफ-साफ दिखाई नहीं दे रहा, घास की पोटली को नीचे रखकर के देख, तब तुझे मालूम चलेगा मेरे सिर पर कोल्हू है या नहीं। उसने घास की पोटली जैसे ही सिर से उतारकर नीचे रखी,

दूर खड़ा हुआ तो कहने लगा हाँ-हाँ ठीक कहते हो, कोल्हू सिर पर ही रखा है। पुनः थोड़ी देर बाद घास की पोटली उठायी सिर पर रखा और कहने लगा अरे सब पागल हो गये हैं, कोल्हू सिर पर नहीं रखा। तो वह जड़ी-बूटी थी जो उसके प्रभाव को नष्ट कर रही थी।

ऐसे ही कई व्यक्ति जो मद्यपायी होते हैं वह भी भ्रमित हो जाते हैं और अपने पूर्व संबंधों को भूल जाते हैं कि ये मेरी माँ है, पत्नी है, बहिन है कौन क्या है सब भूल जाता है। बुद्धि विभ्रम हो जाता है जिसके कारण यद्वा-तद्वा प्रवृत्ति करने लगता है। बुद्धि विभ्रम वाले व्यक्तियों की प्रवृत्तियों पर हँसी आती है अरे! ये क्या प्रवृत्ति कर रहा है। एक मद्यपायी अधिक पीकर के नशे में मार्ग में चला जा रहा था और जाते-जाते सामने एक पेड़ आ गया। वह उस पेड़ से कहता है चल हट पीछे, अब भला वह पेड़ वहाँ से क्यूँ हटने वाला पेड़ तो वहीं खड़ा रहा, उसने दो-चार बार कहा हटता है या नहीं हटता, कोई उत्तर नहीं आया। उसने गुस्से में पेड़ में कस के लात मारी और लात मार के स्वयं मुँह के बल नीचे गिर पड़ा और जब खड़ा हुआ तब जहाँ पेड़ था उस तरफ पीठ हो गयी और मुँह दूसरी तरफ, अब जब चलने लगा तो पेड़ सामने नहीं अड़ा तो कहने लगा लातों के भूत बातों से नहीं मानते, जब लात पड़ी तो कैसे पीछे हो गया। ऐसी ही प्रवृत्ति मोही जीव की है जो अपनी आत्मा को नहीं जानता, वह भी कहता है मेरे पास तो सब कुछ है, पुद्गल के वैभव को इकट्ठा करके कहता है मैं धनी बन गया, मैं तो चक्रवर्ती बन गया, राजा-महाराजा बन गया मेरे पास बहुत वैभव है। किन्तु वह यह नहीं जानता यह सब तो पुद्गल है तेरा सही वैभव तो तेरी आत्मा में है, एक बार तो अपनी आत्मा के वैभव को खोजने का प्रयास कर।

तू जो दूसरों के वैभव को देखकर के खुश होता है, दूसरों के

वैभव को देखकर के रो लेता है। जैसे एक शराबी व्यक्ति रोड़ पर खड़े होकर नाचने लगता है अरे मेरी बस आ गयी-बस आ गयी और जोर-जोर से ताली बजा रहा है, किसी ने पूछा क्या ये तेरी बस है तो कहता है हाँ मेरी बस है और जब थोड़ी देर बाद वह बस उस व्यक्ति को बिना बिठाये ही आगे बढ़ गयी, तो वह रोने लगा मेरी बस चली गयी बस चली गयी। लोग कहने लगे लगता है ये पागल हो गया है या ज्यादा शराब पीकर आ गया है। बस इसकी थोड़े ही थी जो इसको बिठाती, ये तो सरकारी बस चल रही है जिसे ये अपनी मान रहा है। और चली गयी तो कहता है चली गयी। यह तो इसका काम ही है इस बस को इस रोड़ पर आना भी है और जाना भी। ऐसे ही पुद्‌गल है वह तुम्हारे पुण्य से आता भी है और पाप से चला भी जाता है। आता है तो कहते हो मेरे पास बहुत धन है और जैसे ही पुण्य मंद होता है पाप का उदय आता है धन नष्ट हो जाता है तो रोने लग जाते हो मेरा सब छिन गया। सूर्य का उदय होते ही किरण आती है और आकाश में बादल छाते ही सूर्य का प्रकाश लुप्त हो जाता है या संध्याकाल में सूर्य अस्त होता है तो सूर्य का तो यही स्वभाव है, उसकी यही नियति है जिसे कोई टाल नहीं सकता।

ऐसे ही हमारे जीवन में अर्जित किये हुये पुण्य और पाप कर्म हैं उनका भी यही स्वभाव है, वे भी उदय में जब आते हैं तब अपना फल देते हैं और जब फल दे जाते हैं तो निर्जीण हो जाते हैं फिर वे फल बार-बार नहीं देते। प्रश्न फिर वही खड़ा है कोऽहं? क: अहं क पर लगा हुआ विसर्ग और क के साथ में लगा हुआ अकार और अहं के साथ में लगा हुआ अकार जब दो अकार के बीच में विसर्ग आता है तो फिर विसर्ग का उ बन जाता है और अहं के अ का लोप हो जाता है। तो उ+अ=ओ बन जाते हैं तो बना कोऽहं। 'क' अक्षर का अर्थ होता 'आत्मा'। इसलिये आचार्यवर, साहित्यकार, नीतिकार

लिखते हैं कि जो सिर्फ कहता है करता नहीं उसने अपनी आत्मा को हता है, आत्मा का घात किया है। किन्तु तो करता है वह आत्मा में रहता है, अपनी आत्मा में लीन है। कहने वाले ने आत्मा को नहीं पाया, डूबने वाले ने आत्मा को पाया है। तो 'क' का अर्थ होता है आत्मा।

'क' के साथ लगा है विसर्ग तो कह रहे हैं कि जब तक 'क' के साथ पुद्‌गल की गंदगी का विसर्जन नहीं होगा तब तू अहं (मैं) है, उस मैं को नहीं जान पायेगा। उस आत्मा के साथ जो पुद्‌गल की गंदगी लगी है उसका विसर्जन करना जरूरी है। चाहे वह गंदगी भाव कर्म के रूप में हो या द्रव्यकर्म के रूप में हो या शरीरादि नोकर्म के रूप में हो और चाहे वह मकान, दुकान-वैभव-अस्त्र-शस्त्र-वस्त्र आभूषण-वाहन चेतन-अचेतन परिग्रह आदि पुद्‌गल हो उन सबका विसर्जन जरूरी है, उसके साथ शुद्ध आत्मा रह नहीं सकती। जिसने विसर्जन कर दिया वही कहता है सोऽहं।

सोऽहं अर्थात् वह शुद्ध आत्मा मैं हूँ। वह शुद्ध आत्मा मैं तभी बन सकता हूँ जब पहले 'एकोऽहं' ये जान लें कि मैं एक हूँ 'द्वितीयो नाऽस्ति न भूतो न भविष्यति'। मैं एक हूँ, एक था, एक ही रहूँगा, द्वितीय स्वरूप न मेरा कभी था, न है, न कभी हो सकेगा।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी जी ने भी कहा-

एकोऽहं णिम्ममो शुद्धो, णाण दंसण लक्खणो।
सेसा बाहिरा भावा, सव्वे संजोग लक्खणा।

मैं एक हूँ, कौन सा एक हूँ निर्ममता से युक्त अर्थात् ममत्व भाव से रहित हूँ ये ममत्व भाव तो परकृत हैं जैसे जल शीतल होता है किन्तु परकृत अग्नि के संयोग से गर्म हो जाता है ऊष्णता आ जाती है। ऐसे ही मैं शुद्ध चैतन्य हूँ किन्तु पुद्‌गल के संयोग से मेरे अंदर विकार आ गया है, ममत्व भाव आ गया है, राग-द्वेष-मोह का भाव

आ गया है। मेरी आत्मा में ऐसी चुम्बकीय शक्ति पैदा हो गयी है जिस चुम्बकीय शक्ति के कारण मैं द्रव्य कर्म का बंध कर रहा हूँ। ज्ञानावरण दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, अंतराय, आयु, नाम, गोत्र इत्यादि कर्मों का बंध कर रहा हूँ। उस चुम्बकीय शक्ति का नाम क्या है जो मेरी आत्मा में आ गयी है? उसका नाम है भाव कर्म। वह मोहरूप में मिथ्यात्व, राग-द्वेष के रूप में है वह भाव कर्म है वह भाव कर्म नष्ट हो तब द्रव्य कर्म का बंध नहीं होगा। और जब उन द्रव्य कर्मों का बंध होता है तब वे द्रव्य कर्म उदय में आते हैं तब शरीरादि नो कर्म की प्राप्ति होती है।

यदि मैं राग-द्वेषादि कर्मों का नाश कर दूँ तो मैं द्रव्य कर्मों का अर्जन नहीं करूँगा और द्रव्य कर्मों का अर्जन नहीं होगा तो मुझे नोकर्म भी प्राप्त नहीं होंगे और फिर द्रव्य कर्म का उदय नहीं होगा तो मेरे मोह रूप, राग-द्वेषादि रूप परिणाम भी नहीं बनेंगे। तो चेतना की वह चुम्बकीय/गुरुत्वाकर्षण शक्ति जिससे गुरु रूप में विद्यमान ये पुद्‌गल मेरी आत्मा पर हावी हो जाता है क्योंकि इस भारी पुद्‌गल को मैं ही बुलाता हूँ। किन्तु अपने आत्मा के गुरुत्वाकर्षण को प्रकट नहीं करता। मैं बाहर के आकर्षण में तो डूब जाता हूँ किन्तु अपने गुरुत्वाकर्षण को प्रकट नहीं करता कि मेरे अंदर भी गुरुता से भरा, श्रेष्ठता से भरा, गुणों से युक्त एक ऐसा आकर्षण है जिसे देखकर के संसारी प्राणी अपनी अशुद्ध पर्याय को छोड़कर के शुद्ध दशा को प्राप्त कर सकते हैं। ऐसा मेरी आत्मा में आकर्षण है। वह आकर्षण गुणों को प्रकट किये बिना नहीं हो सकता।

तो आचार्य कुंदकुंद स्वामी जी ने कहा 'एकोऽहं' मैं एक हूँ, 'णिम्ममो' निर्मम हूँ 'शुद्धो-शुद्ध हूँ, 'णाण दंसणलक्खणो' ज्ञान और दर्शन लक्षण वाला हूँ। जानना मेरा स्वभाव है, देखना मेरा स्वभाव है। जब मेरी आत्मा ज्ञान और दर्शन से युक्त होती है, जब मैं पंचेन्द्रिय

संज्ञी होता हूँ, पर्याप्त होता हूँ, जाग्रत अवस्था में होता हूँ शुभ लेश्याओं से युक्त होता हूँ और कर्मभूमि में यदि हूँ तो देव-शास्त्र-गुरु का सान्निध्य पाकर के अपने मोहनीय आदि कर्मों की स्थिति को अन्तः कोड़ा-कोड़ी सागर करके और अपने संसार को अर्द्धपुद्‌गल परावर्तन के भीतर-भीतर करके, एवं वर्तमान काल में बाँधने वाले कर्मों की स्थिति को भी अंतः कोड़ा-कोड़ी सागर का बंध करते हुये उत्कृष्ट भी नहीं, सर्वजघन्य भी नहीं तब मैं अपनी आत्मा को जानने में, मानने में, समझने में समर्थ होता हूँ तो मैं सम्यक्त्व के सम्मुख होता हूँ।

अशुभ लेश्या के साथ नर-तिर्यंच या देव सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं कर सकते, नारकियों के लिये अपवाद है क्योंकि उनके शुभ लेश्यायें नहीं होती। पर्याप्त अवस्था में ही सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। जागृत अवस्था में शुभ लेश्या व शुभ परिणामों के साथ होती है और ज्ञानोपयोग में होती है। जब वह सम्यक्त्व के सम्मुख होता है तभी वह जीव अपने आप को जानने में समर्थ होता है। जब तक मिथ्यात्व में डूबा रहता है तब तक पर पदार्थों को ही अपना मानता रहता है। 'सेसा बाहिरा भावा, सव्वे संजोग लक्खणा' संसार में जितने भी पदार्थ हैं वे सब मेरी आत्मा से बाहर हैं। किंतु राग-द्वेष-मोह वश ये आत्मा बाह्य पदार्थों को अपना मान लेती है।

जो मोह के महासागर में आकण्ठ डूबे हुये हैं वे क्या कहते हैं—दो जिस्म एक आत्मा। हम दोनों का शरीर अलग-अलग है पर हम एक हैं। यह मोह का प्रकृष्ट रूप है जब सामने वाले प्राणी को अपने रूप मान रहा है कि मैं और तुम हम दोनों की आत्मा एक है किंतु ऐसा है नहीं। जब एक की मृत्यु हो तभी दूसरे की मृत्यु हो जाये ऐसा कुछ जरूरी नहीं है। वह जब जन्मा तब दूसरा भी जन्मा हो यह जरूरी नहीं है। दोनों का अलग-अलग प्रारब्ध है, अलग-अलग

नियति है, अलग-अलग कर्म हैं, अलग-अलग उनके फल हैं लेकिन फिर भी मोह के आवेश में आकर के कहता है कि मैं तेरे बिना जी नहीं सकता, सामने वाला भी कहता है मैं तेरे बिना जी नहीं सकता, हम दोनों एक हैं, तुम ही मेरी धड़कन हो, तुम्ही मेरी श्वांस हो, तुम्ही मेरे प्राण हो ये सब शब्द केवल अपने मन को भ्रमित करने के लिये कहे जाते हैं, इनमें सत्यांश किंचित् भी नहीं है। सव्वे संजोगा भावा' ये सभी संयोगी भाव हैं। से सभी संजोगी लक्षण हैं इन संयोगी लक्षणों में मेरी आत्मा नहीं है, मेरी आत्मा का नियोग तो संयोगों के वियोग करने में है तभी आत्मा का आत्मा के साथ योग होता है। तब आत्मा आत्मा का आत्मा में प्रयोग करती है, सदुपयोग करती है तभी वह आत्मा आत्मा का उपभोग करती है, इसके बिना तो आत्मा रोग से युक्त होती है और रोग से युक्त आत्मा संयोग और वियोगों के दु:खों को भोगती है।

महानुभाव! इसीलिये आचार्य पूज्यपाद स्वामी जी ने भी कहा–

एकोऽहं निर्ममः शुद्धो, ज्ञानी योगीन्द्र गोचरः।
बाह्याः संयोगजा भावाः मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा॥27॥

मैं एक हूँ, निर्मम हूँ और ज्ञानी पुरुषों के द्वारा जानने योग्य हूँ। ज्ञानी कौन? जो योगियों में इन्द्र की तरह से हैं वे केवली भगवान् अथवा वीतरागी छद्‌मस्थ 11-12 वें गुणस्थान वाले अथवा और नीचे आयें तो श्रेणी पर चढ़े हुये मुनि जो वीतराग दशा प्रकट करके चढ़ रहे हैं। उनके द्वारा ही ये आत्मा गम्य है। छटवें गुणस्थान में प्रमत्त दशा में प्रवृत्ति करने वाले मुनिराज भी आत्मा को शब्दों से, अनुमान से, शास्त्र प्रमाण से जानते हैं, अनुभव से नहीं जानते, युक्तियुक्त तर्क से जानते हैं। आत्मा अनुभव से तो केवल सप्तम गुणस्थान से आगे ही जानी जाती है उसके पहले अनुभव से आत्मा नहीं जानी जाती। अनुभव से जानने के लिये उस मार्ग से गुजरना पड़ता है।

अग्नि की बहुत बड़ी-बड़ी लपटों को देख करके सोना शुद्ध नहीं हो जाता, सोना शुद्ध तब होता है जब अग्नि की लपटों में तपता है, अग्नि परीक्षा देता है तभी सोना शुद्ध होता है। मुनि महाराज की क्रिया-चर्या को पढ़ लेने से किसी को मुनित्व का अनुभव नहीं हो सकता, मुनित्व का अनुभव तो तब होता है जब मुनिचर्या को धारण करके स्वयं श्रमण धर्म की साधना करता है। एक गर्भवती स्त्री जब स्वयं गर्भ धारण करती है तभी गर्भ की पीड़ा का अनुभव कर सकती है चाहे भले ही किसी से गर्भ की पीड़ा के बारे में सुने, आँखों से रोते-तड़पते-बिलखते देखने के बावजूद भी उसे गर्भ की पीड़ा का अनुभव नहीं हो सकता। तो आत्मा का अनुभव तो तभी होता है, जब आत्मा में डूबते हैं। समुद्र के किनारे खड़े होकर के सीपियों को तो पा सकते हैं, समुद्र के किनारे पड़े कंकड़-पत्थर के ढेर को तो प्राप्त कर सकते हैं, बालू के ढेर से तो अपनी झोली को भर सकते हैं किन्तु समुद्र के तल में पड़े हुये दिव्य रत्नों के दर्शन नहीं कर सकते। समुद्र के किनारे खड़े होकर समुद्र की लहरें गिनी जा सकती हैं किन्तु समुद्र में अवगाहन करने का आनंद नहीं पाया जा सकता। लहरों को गिनना अलग बात है और उसमें डूबकर के आनंद लेना अलग बात है।

लोग कहते हैं हमें समुद्र का अनुभव है हम समुद्र देखकर आ गये। अरे! क्या अनुभव कर सकते हो? अनुभव देखने से प्राप्त नहीं होता है। अग्नि में जो जल गया है उसे पता है अग्नि कैसे जलाती है, अग्नि को देखने से अग्नि के जलाने का अनुभव प्राप्त नहीं होता। जिसने मिठाई खाई हो उसे ही मिठाई का स्वाद ज्ञात है जीवन भर नमक खाने से मिठाई का स्वाद अनुभव में नहीं आता भले ही जिंदगी भर दूसरों को मिठाई खाता हुआ-खिलाता हुआ देखता रहे। आप कहते हैं–

जाके पाँव न फटी बिवाई, वह क्या जाने पीर पराई।

तो निः संदेह आत्मा तो अनुभव की चीज है। मैं कौन हूँ? मैं वही आत्मा हूँ जो ज्ञानी है–योगीन्द्रों के द्वारा जानने योग्य है। बाह्या: संयोगजा भावा:, मत्त: सर्वेऽपि सर्वथा' जितने भी पुद्‌गल पदार्थ हैं वे सभी मुझसे पृथक हैं, थे और रहेंगे किन्तु मोहवश मैं इनको अपना मान लेता हूँ खुद को नहीं जान पाता कि वास्तव में मैं कौन हूँ?

मैं कौन हूँ? ऐसा दिल में जब ख्याल आ गया।
आज खुद से ही मिलने का सवाल आ गया॥

खुद से मिलने का यदि अवसर है तो वह यही है कि मैं कौन हूँ इस प्रश्न को अपने आप से पूछो। दूसरों से अनादिकाल से आज तक खूब प्रश्न पूछते चले आ रहे हैं कि तुम कौन हो, वह कौन हैं आदि-आदि प्रश्न तो बहुत पूछते रहे किन्तु मैं कौन हूँ ये प्रश्न मैंने अपने आप से नहीं पूछा। दुनिया से पूछा, दुनिया ने बहुत उत्तर दिये किन्तु दुनिया के उत्तर सम्यक् नहीं थे किसी ने कहा तुम द्रव्य हो, किसी ने कहा तुम जीवद्रव्य हो, किसी ने कहा तुम मनुष्य गति के हो अत: मनुष्य हो, किसी ने कहा तुम कर्मभूमिज हो, किसी ने कहा आर्य हो, किसी ने कहा बालक-युवा-वृद्ध हो, किसी ने कहा जैन हो, किसी ने कहा दिगम्बर हो किसी ने कहा गृहस्थ हो, किसी ने कहा श्रावक हो किसी ने अमुक नाम बताया, किसी ने कहा तुम उसके पुत्र हो, किसी ने कहा तुम अमुक के भाई-पिता-पति आदि हो ये सब उत्तर मिलते रहे किन्तु मुझे मेरा जो उत्तर प्राप्त करना था वह आजतक नहीं मिला।

''एक मैं हूँ जो खुद को समझ न सका आज तक।
और एक ये दुनिया है, जो न जाने क्या-क्या समझती है मुझे''

मैं कौन हूँ इसे समझने के लिये, जो मैं नहीं हूँ उसे छोड़कर मैं की यात्रा करनी पड़ेगी। जब तक मैं मद में हूँ तब तक मैं आत्मा

में नहीं पहुँच सकता। मृणमय आवरण को ओढ़कर रहते हुये मैं चिन्मय आत्मा को नहीं जान सकता। मृणमय खोल से पृथक मेरा अस्तित्व है उस चिन्मय अस्तित्व को जानने के लिये मृणमय इस मिट्टी के शरीर को पड़ौसी/ अन्यजन मानना ही पड़ेगा। ऐसा नहीं हो सकता मैं इसे छोड़ूँ भी नहीं और अपने आप को प्राप्त कर लूँ।

मेरा जीवन गणित के शून्य की तरह से है। जिसके साथ जुड़ गया उसकी कीमत बढ़ा दी। शून्य का क्या मूल्य है? आज तक मेरा जीवन गणित के शून्य की तरह से रहा, मेरा तो कोई मूल्य नहीं जिसके साथ रहा उसकी कीमत बढ़ाता रहा। किन्तु जब मेरी आत्मा उसे शून्य कर देगी जिसकी कीमत बढ़ा रहा है। जब उस पुद्‌गल को शून्य मान लेगा तो तुम्हारी आत्मा का अंक अपने आप प्रकट हो जायेगा। किंतु तब तक प्रकट नहीं हो सकेगा जब तक हम पर में खोज रहे हैं, पर को देख रहे हैं।

महानुभाव! यह प्रश्न स्वयं से करना जरूरी है। आचार्य अजित सेन सूरि जी ने छत्र चूड़ामणि ग्रंथ में कहा है जब तक व्यक्ति खुद से प्रश्न नहीं करता कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया, कहाँ जाना, क्या करना चाहिये, क्यों आया, तब तक वह सम्यक्त्व को प्राप्त कर नहीं सकता। सम्यक्त्व प्राप्त करने का प्रश्न यही है कि खुद से प्रश्न करें, दुनिया से प्रश्न बहुत किये, दुनिया ने तुमसे बहुत प्रश्न किये किन्तु अब पहला और अंतिम प्रश्न अपने आप से करना है कि मैं कौन हूँ। यदि ये प्रश्न स्वयं से कर लिया और अंदर से उत्तर आ गया तब समझना चाहिये कि वास्तव में आपने अपने स्वरूप को प्राप्त कर लिया।

मैं कौन हूँ, आया कहाँ से, और मेरा रूप क्या?
जाना कहाँ, कहाँ जा रहा हूँ, मेरा यथारत स्वरूप क्या?॥

ये प्रश्न अपने आप से करने हैं। इन प्रश्नों को करके देखो, और

उत्तर पुस्तकों में नहीं, तीर्थक्षेत्रों में नहीं, मूर्तियों में नहीं, गुरुओं के पास नहीं वरन् अपनी आत्मा में खोजो। सम्यक्ज्ञान का प्रकाश लेकर के अपनी आत्मा में तलाश करो तुम्हें तुम्हारी आत्मा में उत्तर मिल जायेगा। अभी तक जो आपने तलाश की है वह तन में, धन में, वचन में, स्वजन-परजन में की है किन्तु अपनी चेतना में वह तलाश नहीं की है।

जिस्म और रुह का रिश्ता भी बड़ा अजब रिश्ता है।
ता उम्र साथ रहा फिर भी तुअरुफ्फ न हुआ।

जिंदगी भर साथ रहने के बाद भी उससे परिचय नहीं हो पाया कि ये शरीर था, मैं नहीं था। आप पढ़ते जरूर हैं बारह भावना में कि-

जहाँ देह अपनी नहीं तहाँ न अपना कोय।
घर संपत्ति पर प्रगट हैं, पर हैं परजन लोय॥

इस लाइन का अर्थ ऐसा नहीं लगाना कि जहाँ देह अपनी नहीं अर्थात् जहाँ मेरी देह है वहाँ मेरा सब कुछ है, जहाँ मैं नहीं जाता हूँ वहाँ मेरा कुछ भी नहीं है। दुकान पर बैठ जाता हूँ तो दुकान मेरी, दुकान नौकरों के भरोसे छोड़ दी तो दुकान मेरी गयी, पत्नी के पास बैठा हूँ तो पत्नी मेरी, नहीं तो गयी हाथ से। यदि कहीं खेत-जमीन आदि पड़ी है, उन्हें 10-15 साल से नहीं देखा तो गये हाथ से तो ऐसी व्याख्या नहीं करना। सही व्याख्या यह है कि "जहाँ देह मेरी नहीं" जहाँ अर्थात् जदपि मेरी देह भी मेरी नहीं है, मेरा शरीर भी मेरा नहीं है तदपि अन्य बाह्य पदार्थ (चेतन-अचेतन) मेरे कैसे हो सकते हैं।

महानुभाव! ये आत्मा और शरीर अनादिकाल से एक साथ रहते आये हैं फिर भी शरीर के साथ रहते हुए भी यह आत्मा स्वयं को जान न पायी, इस शरीर को ही अपना मान कर बैठ गयी। और

बड़ा अचम्भा लगता मुझको, जो खुद से अन्जान है
पर्यायों के पार देख ले, आप स्वयं भगवान् हैं॥

अरे! इन पर्यायों के पार देख ले तो समझ में आ जाएगा कि तू स्वयं ही भगवान है। जब तक तेरी पर्याय बुद्धि है, बहिरात्मा है, मूढ है तब तू मान रहा है मैं ये हूँ, वो हूँ अपना नाम-धाम-चाम सब कुछ जो बाहर दिखाई दे रहा है वह सब अपना मान रखा है। किन्तु जब पर्यायों के अतीत पार पहुँच जायेगा तब समझ जायेगा तू और भगवान् कोई अलग-अलग नहीं हैं। ''सोऽहं, सिद्धोऽहं'' तू सिद्ध है। जैसे पहले वे सिद्ध परमेष्ठी हो चुके हैं वह तू है, वे भी पहले ऐसे ही थे अपने से अन्जान थे। उन्होंने अपने को देख लिया तो निःसंदेह वे भी भगवान बन गये।

एक दार्शनिक गहन चिंतन करने वाला, नयी-नयी खोज करने वाला, समाज को अपनी उपलब्धियाँ प्रस्तुत करने वाला बड़ा व्याकुल दिखाई दिया। लोगों ने उसे देखकर पूछा-भाई! क्या बात है तुम तो हमेशा चिंतन में डूबे रहते थे आज आपके चेहरे पर व्याकुलता क्यों दिखाई दे रही है, ऐसा क्या हो गया? उसने कहा-मेरी व्याकुलता का बहुत बड़ा कारण है, छोटी-मोटी बात होती तो मैं व्याकुल चित्त नहीं होता। कारण ये है कि जो तुम सामने खड़े हो ना, अब अपने पीछे देखो क्या है? (व्यक्ति) उन्होंने कहा-मेरी परछाई। क्या तुम्हें तुम्हारी परछाई दिखाई दे रही है? व्यक्ति ने कहा हाँ दिखाई दे रही है। किन्तु मुझे मेरी परछाई दिखाई नहीं दे रही, मेरी परछाई गायब हो गई है देखो मैं भी तुम्हारे साथ खड़ा हूँ पर मुझे मेरी परछाई दिखाई नहीं देती। वह दार्शनिक बड़ा व्याकुल हो रहा है कि मेरी परछाई गुम हो गई।

महानुभाव! एक वह दार्शनिक है जो अपनी परछाई गुम होने पर इतना व्याकुल हो रहा है और एक हम हैं कि हमारी आत्मा ही

गायब हो गई और हमें कोई चिंता ही नहीं। परछाई गायब हो जाये तो व्यक्ति सिर धुन-धुन कर रोता है और जब आत्मा गायब हो गई तो मस्ती से सोता है, कोई चिंता ही नहीं आत्मा की। हमें उस आत्मा की खोज करना है। आज पर में पर को खूब खोजा, आज पर में भी निज को खूब खोजा, पर में पर के लिये खूब खोजा, निज में पर के लिये खूब खोजा किन्तु निज में निज को खोजने के लिये निज में निज को खोदा नहीं। निज में निज को खोद करके देख लेता तो मेरी आत्मा इस पुद्गल के ढेर में मिल जाती।

मैं खोजता हूँ बाहर की ही आँख लिये।
अंतरंग की चीज मुझे आज तक मिलती (मिली ही) नहीं॥

बाहर की आँखें सिर्फ और सिर्फ बाहर तक ही खोज पाती हैं अंतरंग की चीज को खोजने के लिये तो बाहर की आँखों को बंद करना पड़ता है। इसीलिये ध्यान लगाने वाले योगी-साधक-संत-तपस्वी मुनि-ज्ञानी ध्यानी प्रायः कर के आँख बंद करके ही ध्यान लगाते हैं। आँख खुली भी हों तब भी वे खुली आँखों में बंदवत् है बाहर का दृश्य नहीं देखते उस समय वे अपने अंतरंग में झाँक रहे होते हैं। अंतरंग की वस्तु बाहर की आँखों को खोलकर कैसे प्राप्त कर सकोगे। तुम्हारे अंदर में जो चीज है उसे बाहर भागकर कैसे प्राप्त करोगे। जो अंदर ही ढका हुआ रखा है, खोदने से मिलेगा बाहर खोजने से कैसे प्राप्त करोगे। तो मेरी आत्मा शक्ति रूप परमात्मा है, वह आत्मा खो गयी, अपने आप को मैं भूले हुये हूँ, और सबकी गिनती करता चला जा रहा हूँ।

एक बार दस जुलाहे तीर्थयात्रा करने को निकले, वे सभी बहुत उत्साह के साथ निकले और बड़े आनंद के साथ उनकी यात्रा चल रही थी। जंगली रास्ता था जंगली जानवरों का भय था, ऊँची-नीची पगडंडी, कभी पहाड़ पर से निकलते, कभी कंदराओं में से निकलते,

आगे नदी मिली पुनः नदी को पार करके सकुशल पहुँच गये। उनमें से एक ने कहा अपन सब इतनी दूर तक सभी बाधाओं को पार करके आये, एक बार देख तो लें कि वास्तव में हम 10 हैं कि नहीं। अब एक व्यक्ति गिनने लगा 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9... अरे हम तो 9 हैं, दुबारा से गिना तो गिनती पुनः आयी 9। जब भी गिनें तब भी 9 ही आये। अब वे सभी रोने लगे कि हमारा एक साथी बिछुड़ गया। या तो उसे जंगली रास्ते में किसी जंगली जानवर ने खा लिया, या नदी में डूब गया। वे सभी रो रहे थे, उनकी रोने की आवाज को सुनकर एक पथिक जो वहाँ से जा रहा था, उनके पास आया, पूछा-भाई क्या हुआ! वे बोले क्या बतायें हम यात्रा करने के लिये दस लोग निकले थे, किंतु हमारा एक साथी हमसे बिछुड़ गया अब हम नौ रह गये हैं। अब हम गाँव में जाकर कैसे बतायेंगे कि हमारा साथी कहाँ चला गया।

उस पथिक ने कहा-भैया! आप लोग तो दस ही हो। वे बोले अरे! आप हमारी मजाक क्यों उड़ाते हो, हम 9 ही तो बचे हैं।

कहकर के पुनः गिनने लगा 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9 । पथिक ने उस जुलाहे के गाल पर एक तमाचा लगाया और कहा तू 10 वाँ है। जब तक तमाचा नहीं लगा, तब तक तू दसवाँ व्यक्ति है इसकी स्मृति नहीं आती।

महानुभाव! हमें हमारी स्मृति के लिये भी तब झटका लगता है, जब जीवन में कोई अप्रत्याशित घटना घटित होती है, अचानक ऐसी घटना घटित हो जाये जिसके बारे में कभी सोचा भी नहीं, कल्पना भी नहीं की तब फिर संसार के समस्त चेतन-अचेतन द्रव्यों से मोह घट जाता है, विरक्ति हो जाती है और आत्मा की सुध आ जाती है, तब ही ख्याल आता है कि मैं भी हूँ। तब अपनी आत्मा का बोध होता है।

आपसे बस इतना ही संकेत करना चाहते हैं कि

मिट्‌टी के नौ महले बैठा हंस ज्योति फैलाये।
हं सोऽहं, सोऽहं सोऽहं का अमृत नाद सुनाये॥

वास्तव में मेरी आत्मा तो परमात्मा से युक्त है, इस मिट्‌टी के महल में बंद है। ये मिट्‌टी मैं नहीं हूँ और जो मिट्‌टी है वह मैं नहीं हूँ। ये मिट्‌टी तो बनती है पुनः मिटती है, पुनः बनती है व मिटती है ये मैं नहीं हूँ। मेरी आत्मा तो नित्य है, शाश्वत है, अजर-अमर है, अखण्ड है, वही मैं हूँ। उस चिन्मय आत्मा के बारे में ही हमें उनके समीप बैठकर के खोज करनी है जिन्होंने अपनी आत्मा को जान लिया है। अनुभव कर लिया है, प्राप्त कर लिया है। उनके समीप बैठकर के आत्मा की खोज करने में थोड़ी सरलता होगी। जिसका दीपक जला हुआ है, उसके समीप में बैठकर के तुम्हें अपने बुझे हुये दीपक का अहसास हो जायेगा और संभव है कभी तुम्हारा मन कर जाये अपने दीपक को किसी दूसरे के जले दीपक से जलाने का। आप सभी को बस यही संकेत है कि आप अपने बुझे दीपक को जलाने की सम्यक् कोशिश कर लो फिर आपको आत्मा स्वयं ही दृष्टिगोचर होगी, अनुभवगम्य होगी। जब तक आपकी चेतना का दीपक बुझा हुआ है तब तक अनंत आत्मा तुम्हारे सामने रहेंगी फिर भी तुम्हारा तुम्हारी आत्मा से परिचय नहीं हो सकेगा। आप अपनी आत्मा से अपना परिचय करें, अपने समग्र वैभव को प्राप्त कर सकें, ऐसी मंगल भावना आप सभी के प्रति भाता हूँ।

॥श्री शांतिनाथ भगवान् की जय॥

॥जैनं जयतु शासनं–विश्वकल्याणकारकं॥

सदा न फूले केतकी

महानुभाव! जीवन में राग बहुत खतरनाक है। वस्तुओं के प्रति राग, विषयों के प्रति राग, भोगों के प्रति राग, संसार के प्रति राग, शरीर के प्रति राग निःसंदेह ये चेतना को जलाने वाली आग की तरह से है। ममत्व भाव जब तक है तब तक दुःख है ममत्व भाव छूटते ही दुःख भी छूट जाता है। जब तक सूर्य का उदय है तब तक सूर्य का प्रकाश है सूर्य के अस्त होते ही प्रकाश भी अस्त हो जाता है। चन्द्र उदय होते ही चन्द्रमा की चाँदनी फैलती है चन्द्र अस्त होते ही उसकी चाँदनी भी अपने आप लुप्त हो जाती है। राग का जब तक प्रचार-प्रसार है तब तक दुःख है, द्वेष का जब तक प्रचार-प्रसार है तब तक रौद्र और आर्त्त ध्यान है। जब तक जीवन में पाप की प्रवृत्तियाँ हैं तब तक जीवन दुःखों से भरा हुआ है। जिस समय जीवन में पाप नष्ट हो जायेगा उस समय संसार का कोई भी व्यक्ति और कोई भी पौद्‌गलिक परमाणु हमारी आत्मा को दुःखी न कर सकेगा।

पाप और मं दोनों एकार्थवाची हैं। मंगल जो पाप गलाये सो मंगल। 'मं' माने पाप और 'त्व' पना पाप पना। ममत्व भाव ही पापपना है, बिना ममत्व के कोई भी जीव पाप कर नहीं सकता। समत्व ममत्व को प्रक्षालित करने वाला है। समत्व के बिना कभी निर्ममत्व अवस्था प्राप्त नहीं होती। जहाँ समत्व भाव है वहाँ से ममत्व भाव हट जाता है, परत्व भाव हट जाता है। किन्तु जब तक ममत्व

है तब तक चाहे घड़ी हो या चाहे और कोई वस्तु हो वह दुःख की हेतु होती है, सेठ जी विदेश से एक बहुत कीमती घड़ी खरीदकर लाए, वो घड़ी उन्हें बहुत प्रिय थी। उनके घर में एक बहुत कर्तव्यनिष्ठ रामू नाम का सेवक था। सेठ जी उससे अत्यंत स्नेह रखते थे। एक दिन उसकी सेवा से प्रसन्न होकर सेठ जी ने सोचा कि ये घड़ी रामू को दे दूँगा। किसी कारणवशात् उस समय उसे नहीं दे पाए, अगले दिन प्रातः अपने दफ्तर चले गए। पीछे से रामू से सफाई करते समय वह घड़ी गिरकर टूट गयी। शाम को सेठ जी आए देखा उन्हें बहत दुःख हुआ किंतु, रामू की तरफ देखा तो उसका भाव सामान्य था। सेठ जी ने सोचा घड़ी इससे टूटी है किन्तु यह दुःखी क्यों नहीं है। तभी सेठ जी ने दुःखपूर्ण आवाज में रामू से कहा–कितनी कीमती घड़ी थी मैंने तुम्हें देने का निश्चय कर लिया था, पर अब क्या वह तो टूट गई। इतना सुनना ही था कि रामू बहुत दुःखी हो गया। पहले सेठ जी दुःखी थे रात में सो नहीं पा रहे, तो अब रामू दुःखी है रात को सो नहीं पा रहा। घड़ी कल भी टूटी थी, आज भी घड़ी ज्यों की त्यों टूटी पड़ी है कल वह व्यक्ति चैन से सो रहा था, आज यह व्यक्ति चैन से सो रहा है। कल स्थिति दूसरी थी। घटनाक्रम एक ही है। न तो घड़ी ठीक हुयी, वह ज्यों की त्यों है।

वस्तु नहीं बदलती, जमाना नहीं बदलता हमारे परिणाम बदलते रहते हैं। जमाना हमें दुःख नहीं देता है, जमाना हमें सुख नहीं देता है, जमाना हमसे कुछ छीनता नहीं है, जमाना हमें कुछ देता नहीं है बस हम ही अपने परिणामों के अनुसार कर्मों का बंध करते हैं, और उसके फल को भोगने के लिये मजबूर होते हैं। यदि कर्म न करने के लिये मजबूत हो जायें तो कर्म का फल भोगने के लिये कभी भी हमें मजबूर न होना पड़ेगा। किन्तु हम कर्म करने के लिये

मजबूर हैं, इसलिये कर्म का फल भोगने के लिये भी मजबूर हैं। हमने अपनी राह में काँटे बिछाये हैं और उसी राह से जाना है दूसरी कोई राह नहीं तो वे कांटे हमारे पैर में ही चुभेंगे। यदि हमने अपनी राहों में फूल बिछाये हैं रास्ता दूसरा नहीं है, उसी राह से चलना पड़ेगा तो हमारे पैरों मे पुष्पों का आभास होगा, काँटे नहीं चुभ सकेंगे।

हम ये सोचते हैं अपने मन को बहलाने के लिये कि शायद सुख-दुःख देने वाला संसार का कोई अन्य व्यक्ति है या कोई वस्तु है किन्तु सत्य शाश्वत यही है कि हमारे अलावा हमें कोई भी सुख नहीं दे सकता, हमारे अलावा हमें कोई दुःख नहीं दे सकता। हमारे अलावा कोई भी संसार का प्राणी और वस्तु हमारी आत्मा को किंचित् भी कर्म से बाँध नहीं सकती। और हमारी आत्मा के अलावा संसार की कोई भी शक्ति हमें कर्मों से मुक्त नहीं कर सकती। गुरु दीक्षा के संस्कार देने में निमित्त बनते हैं किन्तु गुणस्थान नहीं दे सकते। गुणस्थान तो हम स्वयं के पुरुषार्थ से प्राप्त करते हैं। कोई तुम्हें गाड़ी उपलब्ध करा सकता है पर गाड़ी में तुम न बैठो तो तुम्हें मंजिल की प्राप्ति नहीं हो सकती। जब तुम स्वयं गाड़ी में बैठने को तैयार हो तभी मंजिल तक पहुँच पाओगे।

एक व्यक्ति इस किनारे से उस किनारे तक जाना चाहता है और अगर वह नाव में न बैठेगा तो नहीं पहुँच पायेगा। चाहे नदी में पचासों, सैकड़ों नावें भी क्यों न पड़ी हों इससे क्या फर्क पड़ता है गर एक नाव में भी हमने पैर रख लिया तो हम उस किनारे पहुँचने में सक्षम हो सकते हैं। जब तक हम तैरना नहीं जानते हैं तब तक नदी में सैकड़ों-हजारों-करोड़ों लोग तैरें इससे क्या फर्क पड़ता है क्योंकि उनके तैरकर पहुँचने से मैं नदी के उस किनारे पर नहीं पहुँच जाऊँगा। मैं जब भी तैरकर पहुँचूगा, अपने ही हाथों का सहारा लेकर के तैरना पड़ेगा तभी मैं पहुँच सकता हूँ, दूसरों

का तैरना मुझे मंजिल नहीं दे सकता। जैसे दूसरों के भोजन करने से मेरा पेट नहीं भरता है, दूसरों के पानी पीने से मेरी प्यास नहीं मिटती है, दूसरों की नींद लेने से मेरी थकान नहीं मिटती है और दूसरों के द्वारा कोई पुण्य कृत्य करने से मेरी आत्मा में आनंद की अनुभूति नहीं हो पाती है। इसी तरह से जब तक मैं स्वयं अपना भला न करना चाहूँ तब तक विश्व की कोई भी शक्ति मेरा भला नहीं कर सकती।

महानुभाव! आज चर्चा करते हैं इस वाक्य पर सदा न फूले केतकी। चाहे केतकी हो, चाहे चम्पा हो, चाहे चमेली हो, चाहे केवड़ा हो, चाहे गेंदा हो, चाहे कुमुदनी हो, चाहे कमल हो, चाहे बेला हो कोई भी फूल हो व बबूल ही क्यों न हो सदा वृक्ष पर पुष्प नहीं रहते। ऐसा कोई पुष्प देखने में नहीं आया जो सदा एक तरह से फूलता ही फूलता रहे। पुष्प आने का भी समय होता है, फल आने का भी समय होता है, पुष्प झरने का भी समय होता है और फल के टपकने का भी समय होता है, इतना ही नहीं समय कभी-कभी ऐसा भी आ जाता है कि उस वृक्ष पर पत्र भी नहीं रहते।

ऋतु बसंत याचक भये, दिये तरू मिल पात।
याते नवपल्लव भये, दिया दूर नहीं जात॥

बसंत ऋतु में तो वृक्ष अपने पत्तों को भी छोड़ देता है। जैसे आप अपने पुराने वस्त्रों को छोड़ते हैं वैसे ही वृक्ष अपने पुराने पत्तों को छोड़ देते हैं। जैसे आप नूतन वस्त्रों को धारण करते हैं वैसे ही वृक्ष नूतन नवपल्लवों को धारण करते हैं। ऐसा कोई वृक्ष नहीं कि जब से वह हुआ है तब से लेकर के उस पर कोई नवीन कोंपल, नया पत्ता ना आया हो और पुराना पत्ता न गिरा हो। ऐसा वृक्ष यदि देखने में आयेगा तो बस वही आ सकता है जो तुम्हारी दीवार पर

बना हुआ है पेन्ट से। उस पर नया पत्ता आया नहीं, पुराना टूटा नहीं या प्लास्टिक का पेड़ आपने लगाकर के रखा है उसमें ही ऐसा हो सकता है कि पुराना पत्ता गिरा नहीं, नया पत्ता आया नहीं। सौ वर्ष पहले भी पेड़ ऐसा ही था और आज भी ऐसा ही है। जो दीवार पर बना है वह सौ साल पहले भी ऐसा ही था, आज भी ऐसा ही है किन्तु वास्तव में जो पेड़ लगाया है वह ऐसा नहीं हो सकता, चाहे वह छोटा है तो बड़ा होता है, बड़ा है तो बूढ़ा होता है, कभी सम्पन्न है तो कभी विपन्न होता है, कभी पुष्प-पत्रों से भर जाता है फलों से लद जाता है तो कभी-कभी उसके पास स्वयं को देने के लिये भी छाया नहीं होती है। वह स्वयं भी कभी धूप में खड़ा है।

यही दशा संसार की है। प्रकृति परिवर्तनशील है।

परिवर्तन इस प्रकृति का धर्म है, स्वभाव है। Changing is the nature of the nature. परिवर्तन प्रकृति की प्रकृति है। बिना परिवर्तन के संसार में सब कुछ कूटस्थ हो जायेगा, और कूटस्थ कोई भी द्रव्य होता नहीं। प्रत्येक द्रव्य में छः गुण होते हैं। 1. अस्तित्व 2. वस्तुत्व 3. द्रव्यत्व 4. प्रमेयत्व 5. अगुरुलघुत्व 6. प्रदेशत्व। इन छः गुणों का अपना-अपना कार्य होता है। अस्तित्व गुण से द्रव्य की सत्ता कायम रहती है, वस्तुत्व से अर्थक्रिया होती है, द्रव्यत्व से द्रवित होता है, उसकी नयी-नयी पर्याय आती हैं पुरानी पर्याय नष्ट होती हैं। अगुरुलघु की अपेक्षा से कभी उसके गुण बिखर कर अलग नहीं होते, प्रदेशत्व गुण की अपेक्षा से उसका कोई न कोई आकार होता है, प्रमेयत्व गुण की अपेक्षा से वह किसी न किसी के ज्ञान का विषय होता है। ये छः गुण प्रत्येक द्रव्य में पाये जाते हैं। ऐसा कोई भी द्रव्य नहीं जिसमें छः गुण न पाये जायें। तो जो द्रव्यत्व गुण प्रत्येक द्रव्य में पाया जाता है उसका आशय है कि

वह द्रव्य कभी भी, किसी भी दशा में कूटस्थ नहीं होता, वह द्रवित होता ही होता है पर्यायें आती ही रहती हैं।

मैं जीव हूँ तो कूटस्थ नहीं हूँ, मेरे अंदर भी परिवर्तन होता है। मैं पहले भी जीता था, आज भी जी रहा हूँ, और आगे भी जीता रहूँगा। ये जीवत्व शक्ति, चैतन्यमय शक्ति मेरी चेतना रूप ही परिणमन कर रही है वह अचेतन रूप नहीं होगी और वह चेतन भी कभी अचेतन रूप नहीं होगा। जैसे मटके में घी रखा है सौ वर्ष बाद भी घी निकलेगा तो ऐसा नहीं है कि रखे-रखे दूध बन जाये। ऐसा भी नहीं रखे-रखे पानी या मट्ठा बन जाये। ये तो हो सकता है कि घी में से बदबू आने लग जाये खराब होने लगे पर वह घी-घी ही रहेगा। ऐसे ही चेतना चेतना ही रहेगी, चेतना कुछ और नहीं बन जायेगी। किंतु परिवर्तन होता है, परिवर्तन स्वसापेक्ष्य होता है। परिवर्तन में पर निमित्त बनता है किंतु परिवर्तन जब भी होता है उसका खुद का खुद में ही परिवर्तन होता है इस परिवर्तन को कोई रोक भी नहीं सकता। परिवर्तन कभी अनुकूल दिखाई देता है कभी प्रतिकूल, कभी उसी वृक्ष के नीचे से निकलते थे तो ठंडी हवा लगती थी, बड़ा आनंद आता था पास में जाते ही, कभी वृक्ष के समीप से निकलते थे उसकी गंध से नासा तृप्त हो जाती थी, कभी सामने से निकलते थे तो फलों को देखकर के आँखें तृप्त होती थी और फल खाकर के मन और उदर तृप्त होता था। आज वहीं से निकलते हैं तो ठूंठ सा दिखाई देता है, उसे देखकर के क्रोध और आता है, काटने का मन करता है। जब पहले फला-फूला था तब लगता था इसमें एक बाल्टी पानी लाकर सींच दूँ, अब सूख गया है तो लगता है काटकर के अलग कर दूँ। उसी वृक्ष को देखकर परिणाम कभी खुश होते थे, आज इसी वृक्ष को देखकर परिणाम संकुचित होते हैं। एक जैसी अनुभूति उस वृक्ष के पास हमें नहीं

होती, अनुभूतियाँ अलग-अलग बदलती रहती हैं। क्योंकि वृक्ष का स्वरूप भी अलग-अलग बदल रहा है। एक सा नहीं होता। आप बारह भावना में पढ़ते हैं।

कहाँ गये चक्री जिन जीता भरत खण्ड सारा।
कहाँ गये वे राम और लक्ष्मण जिन रावण मारा।।
कहाँ कृष्ण रुक्मणि सत्भामा अरु संपति सगरी।
कहाँ गये वे रंग महल अरु सुवरण की नगरी।।
नहीं रहे वे लोभी कौरव जूझ मरे रन में।
गये राज तज पाण्डव वन में अग्नि लगी तन में।।
मोहनींद से उठ रे चेतन! तुझे/जगावन को।
हो दयाल उपदेश करें गुरु बारह भावन को।।

यहाँ तुझे नहीं मुझे कहना चाहिये, तुझे कहते हैं तो ऐसा लगता है किसी और की बात कर रहे हैं। मुझे कहो, वे मुझे जगाने की बात कर रहे हैं।

कभी भरत चक्रवर्ती का जीव शेर की पर्याय में था, कभी भरत चक्रवर्ती का जीव सामान्य ब्राह्मण की पर्याय में था, कभी वही जीव प्रतीन्द्र की पर्याय में था, कभी अहमिन्द्र की पर्याय में था, कभी राजा की पर्याय में था, कभी वह चक्रवर्ती की पर्याय में है, तो कभी वह यहाँ योगी की पर्याय में है, कभी अरिहंत की पर्याय में है तो कभी सिद्ध की पर्याय में है। पर्याय कोई शाश्वत नहीं हैं पर्यायें पकड़ने में नहीं आती हैं। बुद्धिमान् व्यक्ति पर्यायों को नहीं पर्यायी को पकड़ते हैं। पर्याय को पकड़ने वाले बालक होते हैं, चन्द्रमा की चाँदनी दिखाई दी, जल में परछाई दिखाई दी तो उसे पकड़ने की कोशिश करते हैं। जो परछाई को पकड़ने की कोशिश करते है 'ते बालिशाः' वे बालक हैं, अल्पज्ञ हैं, ज्ञानहीन हैं। जैसे बालक समझता है चन्द्रमा तो पानी में है पकड़ में आ जायेगा ऐसे ही जो

पर्यायों को शाश्वत पकड़कर रखना चाहते हैं वे निःसंदेह अपनी आत्मा को ही ठग रहे हैं। अपने साथ ही आँख-मिचोली का खेल खेल रहे हैं। वे सोचते हैं जो आज है वह सदा बना रहेगा किन्तु वह हमेशा रह नहीं सकता।

'जातस्य ध्रुवं मृत्यु।' जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु नियम से होगी ही होगी, कौन बचा सकता है। कोई नहीं बचा सकता। जन्म के साथ ही मृत्यु ऐसे लगी रहती है जैसे कोई परछाई पीछे लगी हो। और मृत्यु के साथ आत्मा में कर्म लगे हैं तो जन्म भी नियामक है। कर्म अलग कर दिये तो जन्म-मृत्यु दोनों अलग हो गये।

ऊगे सो नित आथवे, फूले सो कुम्लाय।
जन्मे सो निश्चित मरे, कौन अमर है आये॥

जो फूलता है वह पुष्प निश्चित कुम्हलाता है, जो उदय को प्राप्त होते हैं वे सूर्यादि ग्रह अस्त भी होते हैं। जो जन्म लेता है वह मृत्यु को भी प्राप्त होता है, इस संसार में कौन अमर है जो जन्म लेकर कभी मृत्यु को प्राप्त न हो? चाहे राजा हो या रंक, विद्वान् हो या मूर्ख, सुंदर हो या कुरूप, कुलीन हो या नीचकुल वाला, देव हो या इंद्र या अहमिन्द्र या नारकी, पशु हो या पक्षी, स्त्री हो या पुरुष, बालक है या बालिका कोई भी है किसी की भी पर्याय तो शाश्वत नहीं है। पर्याय वह कहलाती है जो परायी हो। जो परायी है तो अपनी कैसे हो सकती है। अपने कुल में जन्म लेती है बेटी की तरह से किन्तु वह है परायी, उसे भोगेगा कोई और। पर्याय ने मेरे द्रव्य में जन्म लिया है किन्तु वह जायेगी जरूर, नष्ट होगी ही मेरे साथ हमेशा नहीं रह सकती। और पर्याय यानि पर आय अर्थात् दूसरों की इनकम हो सकती है मेरी नहीं है उससे मेरा कोई सरोकार नहीं। इस पर्याय को बस इतना ही समझो कि

जब तक तुम्हारे साथ है तब तक अपनी मानो। जैसे जब तक बेटी घर में है तब तक देखकर के खुश होलो, आनंदित हो लो। उसे देख कोई दुःखी भी हो सकता है, कोई सुखी भी हो सकता है, तो ऐसे ही पर्याय जो तुम्हारे पास है उस पर्याय को प्राप्त करके पुण्य भी कमाया जा सकता है और उसी पर्याय को प्राप्त करके पाप का संचय भी किया जा सकता है। पराई बेटी की तरह से हमारे द्रव्य में उत्पन्न होने वाली पर्याय यह शाश्वत मेरी नहीं रहेगी, किन्तु बुद्धिमानी ये है कि उस पर्याय से भी मैं सुख का अनुभव करूँ। उस बेटी के प्रति लाड-प्यार करके जैसे माता-पिता आनंद का अनुभव करते हैं ऐसे ही मैं अपनी पर्याय का सदुपयोग करके शाश्वत सुख के रास्ते खोज लूँ, जिस शाश्वत सुख को मौत भी न छीन सके, ऐसी अवस्था मुझे प्राप्त करना है। और वह अवस्था है मेरी आत्मा की शुद्ध दशा। जिसे संसार का व्यक्ति तो क्या मौत भी नहीं छीन सकती।

मेरी आत्मा एक बार शुद्ध दशा को प्राप्त हो गयी तो फिर वह कभी भी अशुद्ध दशा को प्राप्त न होगी। किंतु शुद्ध दशा को प्राप्त करने का पुरुषार्थ इस पर्याय के रहते ही किया जा सकता है तो कर लेना चाहिये। एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक तो पुरुषार्थ किया ही नहीं जा सकता, संज्ञी पंचेन्द्रिय भी बन गये तो नरक और देव पर्याय में भी पुरुषार्थ नहीं किया जा सकता मोक्षमार्ग में गमन करने का। वहाँ श्रावक-श्राविका नहीं हो सकते क्योंकि वे देव-नारकी व्रती नहीं बन सकते। पशु श्रावक हो सकता है किन्तु वह श्रावक के सम्पूर्ण कर्तव्य का पालन नहीं कर सकता, सम्पूर्ण लाभ नहीं ले सकता। वह भगवान् की पूजा तो कर सकता है अभिषेक कैसे करेगा। मुनिमहाराज के आहार की अनुमोदना तो कर सकता है किन्तु आहारदान कैसे देगा। वह जिनवाणी सुन तो सकता है पर

स्वाध्याय कैसे करेगा। वह तत्त्वचिंतन तो कर सकता है किंतु माला कैसे फेरेगा। मनुष्य ही एक ऐसा है जो न केवल श्रावक या श्रमण अपितु महाश्रमण व परमात्मा भी बन सकता है।

इस मनुष्य पर्याय में बहुत सारी संभावनायें हैं, इस मनुष्य शरीर को प्राप्त करके आत्मा को अनेक रूप दिये जा सकते हैं। ये ऐसी चिकनी मिट्टी है जिससे अनेक प्रकार के खिलौने बनाये जा सकते हैं, अनेक रूप में इस चिकनी मिट्टी का प्रयोग किया जा सकता है। जब तक ये मिट्टी नष्ट हो उसके पहले हमें मिट्टी से ऐसी वस्तु प्राप्त करना है जो मिट्टी की तरह से नष्ट न हो। भूलना नहीं मौत आयेगी जरूर, अपने पर कभी मत करो गरूर कि हम सदा जीते ही रहेंगे। यह ध्यान रखना मृत्यु आयेगी जरूर, जैसे ही मृत्यु आती है सबका गरूर निकल जाता है। मौत का नाम सुनते ही छक्के छूट जाते हैं अहंकार भाग जाता है इसीलिए आप कई बार पढ़ते हैं

अरे! नर कर उस दिन की याद, कि जिस दिन चल चल चल होगी।
अरे! तू जोड़-जोड़कर धरे, वस्तु तेरी कोई नहीं होगी।।

उसको याद करो, जिसके घर में सब कुछ है, सब रिश्तेदार भी हैं, मित्रगण भी हैं, उन सबके बीच मैं हूँ किन्तु मेरे शरीर में मेरी आत्मा नहीं है उस समय क्या माहौल बन रहा होगा, सब कुछ है किन्तु मेरी आत्मा नहीं है। मेरी आत्मा नहीं तो बताओ मेरा वहाँ क्या है? अरे! अभी तो कह रहे थे मेरा मकान, मेरी दुकान, मेरी स्त्री, मेरे पुत्र, मेरे माता-पिता अभी तो सबको मेरा-मेरा कह रहे थे, केवल थोड़ी आत्मा ही तो शरीर से खिसकी है, इतने में ही आप कह रहे हो कुछ नहीं बचा, और इस बात को तुम ही नहीं कह रहे कि मेरा यहाँ कुछ नहीं, जिनको तुम छोड़कर जा रहे हो वे भी कर रहे हैं कि इसमें कुछ नहीं रहा जल्दी जलाओ, बस

इस शरीर की इतनी सी कहानी है–

मुट्ठी भर राख और चुल्लु भर पानी।
इतनी सी है नर जीवन की कहानी।।

इससे ज्यादा कुछ नहीं, किंतु हाँ इस मुट्ठीभर राख और चुल्लू भर पानी में बहुत सामर्थ्य है। इतनी सामर्थ्य है कि मुट्ठीभर होने वाली राख के इस शरीर से और चुल्लू भर पानी होने वाले इस तरल पदार्थ से पूरे संसार को और अपनी आत्मा को जीत सकता है। आँखों में करुणा का चुल्लू भर पानी आ जाये तो पूरा संसार जीता जा सकता है और मुट्ठीभर राख के बराबर इस शरीर में इतनी सामर्थ्य आ जाये कि वह अपनी आत्मा को अपनी आत्मा में लीन कर ले तो फिर अपनी आत्मा को जीता जा सकता है, अन्यथा अंतिम नियति जो जानते ही हैं मुट्ठी भर राख-चुल्लूभर पानी।

महानुभाव! जब तक आँख नहीं मुदी हैं तब तक वह काम कर लो जिसे आँख बंद करने पर नहीं कर सकते। आँख अभी खुली है तुम स्वतंत्र हो, सामर्थ्यवान् हो, तुम्हारे पास थोड़ी समझ है और तुम्हारे पास थोड़ा समय भी है तो थोड़ा समझदारी का काम कर लो। समझदारी का काम ही जीवन को सार्थक करता है और जिसने समझदारी नहीं दिखाई वह पुनः मझधार में डूब जाता है। समझदार व्यक्ति वही कहलाता है जो अपनी समझदारी से अपना जीवन सफल और सार्थक करते हैं।

फल लदने की बात तो दूर रही जिस पेड़ पर अब कभी पत्ते नहीं आयेंगे, कोंपलें नहीं खिलेंगी, कलियाँ नहीं महकेंगी, पुष्प नहीं मुस्कुरायेंगे, तो फिर आप यह बताओ क्या आप उस वृक्ष को दीर्घकाल तक घर में रख पायेंगे? शीघ्र ही काट कर अलग कर देंगे, उसे फिर रख नहीं सकते। क्या उसे फिर खाद पानी देंगे, क्या उसकी

सुरक्षा-व्यवस्था करेंगे? सुबह-शाम देखभाल करेंगे? नहीं। क्योंकि अब उससे कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं हो सकता। अब तो इससे केवल एक ही स्वार्थ सिद्ध हो सकता है, इस लकड़ी को दीमक न लगे अन्यथा दीमक लगकर के ये लकड़ी मिट्टी में मिले इससे पहले लकड़ी को काटकर के जलाने के काम में तो ले लो, बाद में वह उस काम की भी न रहेगी।

जिस पेड़ पर पत्ते भी न आते हों, पुष्प-फल भी न आते हों, ऐसे पेड़ को अपने आँगन में कौन लगायेगा? यदि फल नहीं आयें तो कम से कम पुष्प तो आयें, पुष्प न आयें तो कम से कम पत्ते तो आयें वह छाया तो दे, ऑक्सीजन तो दे, जो वृक्ष पत्र-पुष्प-फल कुछ भी नहीं दे सकता ऐसे वृक्ष को लगाने का औचित्य क्या है कोई लाभ नहीं। तो सार्थक तभी समझा जाता है जिस वृक्ष से जो काम होता है उस काम को कर ले। तुम्हारा और हमारा जीवन पूर्ण हो, हम और आप जब अंतिम श्वांस ले रहे हों उस समय कभी कहीं मन में ये विचार न आ जाये कि जिंदगी में मुझे जो करना था, वह मैं कर नहीं पाया। भगवान् एक श्वांस और दे दे कम से कम एक बार तो भगवान् का नाम ले लूँ/ध्यान कर लूँ। जो कुछ करना है अभी कर सकते हो अभी कुछ नहीं बिगड़ा, सब कुछ अपने हाथ में है। रस्सी का अंतिम छोर भी अपने हाथ में है तो समझो अभी पूरी रस्सी अपने हाथ में है रस्सी के अंतिम छोर को पकड़कर भी पूरी रस्सी कुयें के बाहर निकाली जा सकती है। और अंतिम छोर भी हाथ से छूट गया फिर तो रस्सी को पकड़ना, गहरे कुयें में से रस्सी को बाहर निकालना असंभव जैसा होगा। अंतिम छोर 4 अंगुल का ही क्यों न हो, पूरी रस्सी चाहे चार हाथ की हो या चालीस हाथ की, चार हजार, लाख या चार करोड़ की हो तब भी अंतिम-छोर से पूरी रस्सी निकाली जा सकती है।

जीवन के अंतिम अन्तर्मुहूर्त में भी जीवन को सफल सार्थक किया जा सकता है। चारपन होते हैं शैशवपन, बालपन, यौवन और वृद्धापन। ये चारों पन ऐसे ही निकल गये, तीन निकल गये तब भी चौथे में उम्मीद है कुछ हो सकता है, यदि चौथा भी निकल गया तो अब करने के लिये समय कहाँ से निकालेंगे। समय तो पूरा निकला ही जा रहा है—निकला ही जा रहा है, और समय किसी का इंतजार नहीं करता। इंतजार तो विवेकी व्यक्ति करते हैं जैसे ही सुअवसर आये और मैं अपना काम सम्पन्न कर लूँ।

यदि नगर में Announce हो जाये कि कल चार घंटे 8-12 बजे तक लाइट आयेगी, 20 घंटे नहीं आयेगी, तो विवेकी व्यक्ति क्या करेंगे? वे 7 बजे से ही लाइट वाले कार्यों के समीप पहुँच जायेंगे लाइट आयेगी तो सब काम कर लो। चक्की चलानी है क्योंकि आटा नहीं है, पानी भर लो और जितने भी कार्य विद्युत से संबधित हैं वह सभी कर लेंगे, और जो व्यक्ति उन चार घंटों में सो जायेगा तो वह कितना बड़ा ज्ञानी कहलायेगा? आप कह रहे हैं महामूर्ख है। आप कहते हैं वह अज्ञानी है, तो जो 70 वर्ष की उम्र लेकर अभी तक सो रहा है, उसको क्या कहेंगे, ये पहले से Announce हो गया है कि आप मनुष्य बन गये, कर्मभूमि के मनुष्य से फिर से मनुष्य नहीं बन सकते, बनोगे तो फिर मिथ्यादृष्टि बनोगे देवगति में जाना पड़ेगा, भोगभूमि जाना पड़ेगा, चाहे 60 वर्ष की उम्र हो या 70-80 वर्ष की हो तब भी क्यों नहीं चेत पाते? ये मोह की नींद टूट क्यों नहीं रही? क्यों हम कल पर टाल देते हैं? ये क्यों नहीं मान लेते जिस कल की प्रतीक्षा कल थी हमें बेसब्री से, वह कल आ गया सामने हमारे आज, आज बनके।

जिस काल की प्रतीक्षा हम कल कर रहे थे कि वह कल कब आये जब हम वह काम करें, वह कल भी आज आ गया हमारे

सामने। किन्तु जब वह हमारे सामने आता है तो जिस कल की हम प्रतीक्षा कर रहे थे वह आज बनके आता है। यदि वह कल-कल बनके आये तो शायद हम धोखा न खायें। हम धोखा कहाँ खाते हैं? हम कल पर सब टाल देते हैं और कल कभी आता नहीं है और जो आता है वह आज बनकर आता है। इसलिये हम कल के काम को आज नहीं कर पाते कहते हैं कल करेंगे-कल करेंगे और ऐसे कहते-कहते पूरा जीवन निकल जाता है किन्तु वह कल अनादिकाल से लेकर आज तक मेरे जीवन में तो आया नहीं, आपके जीवन में? मेरे जीवन में वह कल कभी आयेगा भी नहीं, आपके में? इसीलिये मैंने तो जो काम कल करना था वह आज ही करना उचित समझा है। और आपने? आप कह रहे हैं महाराज श्री बहुत अंतर है। हम चाहते हैं अंतर न रहे, सब निरन्तर रहे। जिस काम को कल करना चाहते थे वह कल आज बन करके हमारे सामने आ गया तो हमने उस काम को करना प्रारंभ कर दिया, अब हमें चिंता नहीं है, जीवन कल तक बचे या न बचे। हमें जो करना था उसे कर रहे हैं, किंतु आप ऐसा नहीं कह सकते, आप पढ़ सकते हैं-

लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे।

अपने हृदय पर हाथ रखकर के देखो, पूछ लो एक व्यक्ति भी तैयार हो सकता है क्या? कि मृत्यु आज ही आ जावे और ये भी पूछ लो कि लाखों वर्षों तक जीऊँ। वृद्ध अवस्था आ गयी 4-6 साल की उम्र रह गयी तब तो बहू-बेटा घर में नहीं रख रहे हैं और लाखों वर्षों तक जिंदगी रही, अपना शरीर ही अपना साथ न दे पाये तो क्या होगा। तो आप ये पंक्तियाँ पढ़ तो सकते हो किन्तु यदि ये वास्तव में प्रैक्टीकल आपके जीवन में आ जाये तो फिर घबराओगे नहीं। किन्तु हाँ कोई साधु हो तो वह कह सकता है आज

क्या अभी कहो तब भी तैयार हूँ, 10 वर्ष बाद तो कहो 10 वर्ष बाद सही, 100 वर्ष बाद तो वह ही सही। मृत्यु के मार्ग में खड़ा हूँ जब आना हो तब आ जाना तुम्हारी इंतजारी कर रहा हूँ। जबरदस्ती मृत्यु के मुख में जाऊँगा नहीं और मृत्यु जब आ जायेगी तो एक क्षण रुकने की कोशिश नहीं करूँगा।

जीने की हो ना वांछा, मरने की हो न इच्छा

दोनों में समता भाव। ये दिन निकलते चले जा रहे हैं आप पढ़ते हैं-

सूरज चाँद छिपे निकले ऋतु, फिर-फिर कर आवे।
प्यारी आयु ऐसे बीते, पता नहीं पावे॥
पर्वत पतित नदी सरिता जल बहकर नहीं हटता।
श्वांस चलत ज्यों घटे काठ त्यों आरे सो कटता॥
ओस बूँद ज्यों गले धूप में वा अंजुलि पानी।
छिन-छिन यौवन छीन होत है क्या समझे प्रानी॥
इंद्रजाल आकाश नगर सम जग सम्पत्ति सारी।
अथिर रूप संसार विचारो सब नर अरू नारी॥

सत्य बात है, नित्य प्रातः काल मैं सूर्य को उगता हुआ भी देखता हूँ किन्तु न जाने कब सांझ हो जाती है और सूर्य मेरे सामने देखते-देखते अस्त हो जाता है। इंतजारी करता हूँ दूसरे दिन की कि सूर्य आयेगा और मुझे प्रकाश देगा, मैं अपनी आत्मा को प्रकाशित करूँगा, अपनी आत्मा का अंधकार दूर करूँगा। मिथ्यात्व का अज्ञान का अंधकार तिरोहित करके मैं स्वयं चिन्मय-प्रकाशमय ज्योतिर्मय हो जाऊँगा किन्तु यह सोचते-सोचते फिर शाम हो जाती है और सूर्य ढल जाता है। फिर अगले दिन की इच्छा-कामना करता हूँ कभी उलझ जाता हूँ, कभी भूल जाता हूँ कभी याद भी आती है पुनः देखते-देखते सप्ताह निकल गया, पक्ष निकल गये, महीने निकल गये, ऋतुयें

निकलने लगी, अब तो वर्ष निकल गया, अब तो मुझे कलैण्डर भी बदलने पड़ते हैं, सन् बदलने पड़ते हैं किंतु जिसने जो काम करना था वो कर लिया, उसे न दिन बदलने की आवश्यकता है न कलैण्डर बदलने की आवश्यकता है, न माह-वर्ष गिनने की आवश्यकता है, न ऋतु को भला-बुरा कहने की आवश्यकता है बस जो प्राप्त करना था सो प्राप्त कर लिया। सब दिन सब ऋतु एक समान हैं। समता भाव जाग्रत करना है। किसी की परवाह नहीं, किसी की चिंता नहीं। समत्व अंदर में आ गया तो समझो मैं सब कुछ पा गया। समत्व नहीं आया तो न जाने कितने सूर्य अस्त होंगे, कितने सूर्य जीवन में उगेंगे, जीवन में कितने सूर्य उगते हुये देखे हैं किन्तु हमने अपनी चेतना के क्षितिज पर एक सम्यग्ज्ञान का सूर्य नहीं उगाया। सम्यक्त्व का, चारित्र का सूर्य नहीं उगाया, इतने बार सूर्योदय देखने से क्या कर पाया, इतने चन्द्रोदय देख लिये किंतु अपने चित्त के क्षितिज पर शांति का चन्द्रोदय नहीं कर पाये। हम करुणा-दया का, सद्भावना का, समत्व का, आत्मशक्ति का चन्द्रउदय नहीं कर पाये। बस व्यवहार में ही चंद्र देखते रहे।

लोक जगत् में जो व्यक्ति सहस्रचन्द्र दर्शन कर लेता है वह तीव्र पुण्यात्मा माना जाता है। दक्षिण भारत में उसका बड़ा महोत्सव मनाया जाता है जिसने अपने जीवन में एक हजार पूर्णमासी के चन्द्र के दर्शन कर लिये। कितने वर्ष में देख लेता है? लगभग 80-81 वर्ष की उम्र में। क्योंकि एक वर्ष में 12 पूर्णमासी और बीच में लोन का महीना भी आता है इसलिये तीन वर्ष में 37 चन्द्र मानकर चलें तो लगभग 80-81 वर्ष की उम्र में सहस्र चन्द्र दर्शन कर लिये और वह वृद्ध पुरुष सहस्र चंद्र दर्शन करके भी अपने जीवन में सम्यक्त्व का चन्द्रमा न उगा सके, सहस्र चंद्र दर्शन करने के बावजूद भी जिसके जीवन में अंधकार पड़ा हो, वह वृद्ध होने के बावजूद

भी अपने गुणों से समृद्ध नहीं हो पाया तो कब करेगा।

आँख बंद करके देखो, समय कैसे निकलता चला जाता है। दिन आया, गया ऐसा लगता है जिंदगी मशीन की तरह बन गयी है जो चलती चली जा रही है। आँख बंद करके सोचो तो लगता है अभी तो हमारी बाल्यअवस्था थी, कल की ही तो बात है जब हम युवा थे, हम ऐसा करते थे- वैसा करते थे, कब निकल गया ये समय।

समय ऐसे निकल रहा है जैसे पर्वत से गिरती हुयी नदी तीव्र गति से बहती है, वैसे ही हमारा जीवन भी तीव्र गति से बह रहा है। उस जीवन को पकड़ पाना बड़ा कठिन है किंतु जीवन को सार्थक तो करना ही है। चार क्षण भी दिगम्बर संत के चरणों में बैठने का पुरुषार्थ किया है तो चार क्षण में अपने जीवन के चारों पनों को सार्थक करने की कला सीख लो। कला चार क्षण में भी सीखी जा सकती है।

अपने चित्त के विकारों का त्याग एक क्षण में होता है, अपने चित्त में गुणों का आविर्भाव एक क्षण में होता है। भरत चक्रवर्ती अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञानी बन गये। श्रेय की प्राप्ति एक क्षण में होती है, धर्म-ध्यान की प्राप्ति एक क्षण में होती है, वर्षों की इंतजारी नहीं। एक बार अपने मन को पक्का करके पाप का परित्याग कर दो, पुण्य की बारिश तुम्हारे ऊपर होने लगेगी, आनंद की वर्षा होने लगेगी। समुद्र हो, नदी, झील, तालाब अथवा छोटा सा गड्ढा हो तुम बाहर खड़े होकर देख रहे हो, कूदने में एक मिनट लगेगा बस छलांग लगायी और अंदर गये। बस इंतजारी करने में वर्षों, सहस्रों कोट्याधिक वर्ष या अनंत भव भी लग सकते हैं किन्तु डूबने में उतना समय नहीं लगता। अंधकार चाहे कितना ही पुराना क्यों न हो दिया सिलाई की एक सलाई रगड़कर तो देखो क्षणभर में अंधकार

भाग जायेगा, प्रकाश हो जायेगा।

महानुभाव! यह जीवन वास्तव में बहुत कीमती है, इसे महत्वहीन मत समझो। इस जीवन का सही सदुपयोग करना है, मूल्य वसूल कर लो, मूल्य वसूल कर लोगे तो तुम्हें पश्चाताप नहीं होगा। किसी व्यक्ति ने नये कपड़े बनवाये और वह उन्हें पहन भी नहीं पाया अचानक धोखे से प्रेस वाले से वे जल गये, तो उस व्यक्ति को कितना विकल्प आयेगा? बहुत आयेगा। क्योंकि वह उसका उपयोग नहीं कर पाया नया मकान बनवाया, मुहूर्त भी न करवा पाया उससे पहले ही जलकर स्वाहा हो गया कितना विकल्प आयेगा? किन्तु वही व्यक्ति नये कपड़े बनवाये थे, वर्षभर पहन लिये, वैसे तो दुकानदार ने कहा था छः महीने से ज्यादा चलेंगे नहीं, तुमने सालभर पहन लिये, तो अब तो वह जल जाये, फट जाये गुम जाये, तो दुःख होगा क्या? नहीं। क्योंकि उनसे छः माह की ही अपेक्षा थी मैंने तो और ज्यादा पहन लिया। मकान 50 वर्ष बाद गिर जायेगा और तुम 52 वर्ष तक रह लिये वह नहीं गिरा तुम्हें दुःख नहीं हुआ खुशी हुयी क्योंकि तुमने कीमत वसूल कर ली क्योंकि जितना लगाया था उतना वसूल हो गया।

ऐसे ही तुम्हारा जीवन है उसका मूल्य वसूल कर लो, उस जीवन का सदुपयोग कर लो। जिस जीवन को जिसके लिये प्राप्त किया है, वह वस्तु तुम प्राप्त कर लो तो जीवन सफल और सार्थक हो जायेगा। यह जीवन संयम प्राप्त करने के लिये मिला है, धर्म-ध्यान करने के लिये मिला है, यह मनुष्य का जीवन तप और त्याग करने के लिये मिला है, क्योंकि यह सब चीजें यहीं हो सकती हैं और किसी पर्याय में संभव नहीं हैं, इसलिये इस पर्याय से यही कार्य करना सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है। और ये काम नहीं किया दुनियाभर के सब काम करते रहे तो क्या फर्क पड़ता है। नयी गाड़ी खरीदी,

दुकानदार ने कहा 10 वर्ष की गारण्टी है उसके बाद मिट्टी। और तुमने उस गाड़ी को 15 साल तो चला लिया उसके बाद भी आप उस गाड़ी को किसी को दान कर दो जिसको उस second hand गाड़ी की जरूरत थी ग्राम-देहात में अपना काम चलायेगा कोई बात नहीं। जो कीमत थी उससे ज्यादा तो मैंने ही पहले वसूल कर ली। उसके उपरांत भी मैंने एक एहसान ले लिया उपकार कर दिया।

अपने जीवन से जो उम्मीद है कि मैं अपनी आत्मा का कल्याण कर सकता हूँ, धर्मध्यान कर सकता हूँ, संयम साधना कर सकता हूँ, तो ये अपनी उम्मीद पूरी कर लो। उम्मीद से ज्यादा यह जीवन फिर दूसरों के काम भी आ जाये, मैंने तो संयम धारण कर लिया, पर मेरे निमित्त से किसी दूसरे ने भी संयम धारण कर लिया, धर्म-ध्यान किया। तो अपनी कीमत अपने से ज्यादा भी वसूल की जा सकती है, किन्तु जो अपने शरीर से काम नहीं कर रहे, अपने जीवन को ही सफल नहीं कर रहे तो वे दूसरों का जीवन सफल कैसे कर पायेंगे।

हमारा विषय था–

सदा न फूले केतकी, सदा न सावन होय।
सदा न यौवन थिर रहे, सदा न जीवे कोय।।

केतकी हमेशा नहीं फूलती वह मुरझाती भी है, सदा सावन का महीना नहीं रहता कभी जेठ का महीना भी आता है। सदा बसंत की बहार नहीं होती कभी हेमन्त भी आता है। ऐसे ही हमारे जीवन के वृक्ष पर कभी बाल्य अवस्था में नव कोंपल बनती हैं तो कभी उसी वृक्ष पर पत्ते पीले पड़कर झड़ने भी लगते हैं। बाल सफेद हो गये, उड़ गये कितने घने बाल थे वे अब उड़ने लगे इसका आशय ये है कि अब मेला उजड़ने को है। बस जो खरीदना है वह जल्दी खरीद लो, जो बेचना है वह जल्दी बेच लो अन्यथा

अब सूचना मिल गयी है कि मेला उठने वाला है। जीवन का मेला उजड़े उससे पहले इसे सफल और सार्थक कर लेना चाहिये।

चार दिन की चाँदनी, फिर अंधियारी रात।

चार दिन पुण्य का उदय है, तब तक उस पुण्य के उदय में अपने जीवन को सफल कर लेना चाहिये कहीं ऐसा न हो, पुण्य का सदुपयोग कर न पायें तब तक पाप आकर के घेर ले। तो बुद्धिमान् व्यक्ति वे ही कहलाते हैं जो पुण्य और पाप चाहे दोनों ही क्यों न हों, दोनों का सदुपयोग करना जानता है। पुण्य में प्रभु भजन करना जानता है, पुण्य में दूसरों का उपकार करना जानता है, पुण्य में दान देना जानता है।

जो पुण्य में सत्कर्म करना जानता है वह पाप के उदय में समता से रहना जानता है। जो पाप के उदय में प्रभु के चरणों में अपनी भक्ति लौ लगाना जानता है, तो उसे न पुण्य कष्ट दे पाता है, न पाप कष्ट दे पाता है। पाप का उदय आया तो सोचता है समता धारण करो, एक पाप प्रकृति तो नष्ट हो गयी और पुण्य का उदय आया तो इस पुण्य से और पुण्य कमाओ। तो जो व्यक्ति पुण्य और पाप का सही सदुपयोग कर सकता है वही अपने जीवन का सही सदुपयोग कर सकता है। वस्तु का सदुपयोग करने की भावना तुम्हारे मन में बार-बार आती है, किसी भी वस्तु का दुरुपयोग न हो। एक बार जीवन में ये भी भावना आना चाहिये कि मैं अपने जीवन का सही सदुपयोग कैसे करूँ।

समय का सही सदुपयोग ही जीवन का सही सदुपयोग है। जो व्यक्ति समय का सही सदुपयोग नहीं कर पाते वे अपने जीवन का सही सदुपयोग नहीं कर पाते। क्योंकि समय के अलावा जीवन नाम की कोई चीज है ही नहीं। जन्म से मृत्यु के बीच का समय ही जीवन कहलाता है, तो समय का सदुपयोग ही जीवन का सदुपयोग

है। जीवन का सदुपयोग ही समय का सद्उपयोग है। इसलिये आप सभी को यही संकेत है कि हम अपनी हर वस्तु को सफल करें सार्थक करें, मूल्य वसूल करें, उसका सदुपयोग करें, दुरुपयोग न करें। पर्वत से गिरती तीव्र वेगशाली नदी की तरह यह जीवन सरक रहा है, अंतिम छोर भी छूट न जाये, इसलिये थोड़ा कसकर पकड़ लो जिंदगी को किंतु जितना ज्यादा कसकर पकड़ते हैं उतनी शीघ्र बालू के ढेर की तरह से फिसल जाती है, और ढीली छोड़ते हैं जिंदगी की मुट्ठी को तो यह पंछी के बच्चों की तरह उड़ जाती है। इसलिये जिंदगी पंछी के बच्चों की तरह उड़े या बालू के ढेर की तरह खिसके इसके पहले हमें अपने जीवन में से अशुभ को निकाल देना चाहिये और शुभ को स्वीकार कर लेना चाहिये, शुभ का संकल्प ले लेना चाहिये, इसी से जीवन सफल और सार्थक होगा। आप सभी का शुभ हो, मंगल हो, कल्याण हो इन्हीं सद्भावनाओं के साथ....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।
।।जैनं जयतु शासनं-विश्वकल्याणकारकं।।

गुरुत्वाकर्षण

महानुभाव! आज जीवन को सफल व सार्थक करने के लिये चर्चा करते हैं–विषय है गुरुत्वाकर्षण। संसार में जितने भी पदार्थ हैं चाहे वे चेतन पदार्थ हैं या अचेतन पदार्थ प्रत्येक द्रव्य अपना प्रभाव छोड़ता है। उस प्रभाव से उसके समक्ष में विद्यमान पदार्थ कितना प्रभावित होता है, यह प्रभाव छोड़ने वाले पदार्थ पर निर्भर करता है। जिस पदार्थ में शक्ति ज्यादा होती है वह पदार्थ अपने से अल्पशक्ति वाले पदार्थ को प्रभावित करता है। संसार में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो प्रभाव नहीं छोड़ता हो और संसार में ऐसा भी कोई पदार्थ नहीं जो कम ज्यादा प्रभावित नहीं होता हो।

पुद्गल-पुद्गल को प्रभावित करता है, चेतना-चेतना को प्रभावित करती है। दूसरे शब्दों में देखें तो चेतना का उपकार चेतना के माध्यम से भी होता है, पुद्गल के माध्यम से भी होता है, धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य व काल द्रव्य के माध्यम से भी होता है। इनमें से एक द्रव्य को भी कम कर दिया जाये तो चेतना अपना हित करने में समर्थ न हो सकेगी। आकाश सभी द्रव्यों को अवगाहन देता है, धर्म द्रव्य जो चलने में समर्थ हैं ऐसे जीव और पुद्गलों को चलाने में सहकारी है। अधर्म द्रव्य ठहरने योग्य ऐसे जीव और पुद्गलों को ठहराने में सहकारी है। काल द्रव्य सभी द्रव्यों के परिणमन में सहकारी निमित्त बनता है और पुद्गल उस जीव के लिये सुख-दुःख, जन्म-मरण, इष्ट-अनिष्ट वस्तु के संयोग और वियोग से जीव के

सुख व दुःख में निमित्त बनता है। कई बार सुख भी सुख का कारण बनता है, तो कई बार सुख दुःख का कारण भी बनता है। कई बार दुःख दुःख का भी कारण बनता है तो कई बार दुःख सुख का भी कारण बनता है।

जीव का भी जीव के माध्यम से उपकार होता है, जो शुद्ध जीव हैं वे अशुद्ध जीवों के लिये शुद्ध बनने के लिये प्रेरक निमित्त बनते है। संभव है अशुद्ध जीव शुद्ध जीवों की संगति प्राप्त करके, उनके सान्निध्य को प्राप्त करके अपने अंदर शुद्धता का आविर्भाव कर पाते हैं। आकर्षण इस संसार के प्रत्येक परमाणु में है किन्तु परमाणु का आकर्षण इस जीव को गुरुता नहीं दे सकता। कोई किसी पर आकर्षित है, कोई किसी पर आकर्षित है। जीव द्रव्य की बात करते हैं जीव द्रव्य में जब तक आकर्षण पर के प्रति है, पर के प्रति राग है या विकर्षण का भाव आ गया, द्वेष है तब तक वह जीव अपनी आत्मा को परमात्मा नहीं बना सकता, तब तक वह जीव अपनी अशुद्ध आत्मा को शुद्ध नहीं बना सकता, तब तक वह जीव अपना हित करने में समर्थ नहीं होता।

आकर्षण किसके प्रति हो? संसार के प्राणियों में आकर्षण है आपकी भाषा में कहें तो एक दूसरे के प्रति आकर्षण है। कोई अपने धन के प्रति आकृष्ट है, कोई अपने तन के प्रति आकृष्ट है, कोई अपने स्वजनों-परजनों के प्रति आकृष्ट है, कोई व्यक्ति अपने सुंदर रूप पर आकृष्ट है, कोई पुद्गल की किसी सुन्दर पर्याय को लेकर आकृष्ट होता है तो कोई व्यक्ति क्षणभर की तरह स्वप्न की भाँति दिखाई देने वाला संसार का वैभव उसके प्रति आकृष्ट हो जाता है। कभी-कभी ऐसा भी लगता है कि व्यक्ति को व्यक्ति के दोष भी आकर्षित करते हैं, जब वह उसके प्रति समर्पित होता है तो उसकी बुराई भी अच्छी लगती है, तो कभी-कभी ऐसा भी होता है जब उसे

सत्य का बोध हो जाता है तब फिर वह बुराई को छोड़कर के अच्छाई के प्रति आकृष्ट होता है। जो जिसका गुण जानता है वह उसके गुण के प्रति आकृष्ट होता है।

जो जाको गुण जानहि, सो वे आदर देत।
कोयल अम्बुज लेत है, काक निबोरी लेत।।

कोयल आम के गुणों को जानती है तो आम के वृक्ष पर आते हुये बौर को देखकर के कूकने लगती है, आम को देखकर आनंदित होने लगती है और स्वयं भी आम का भक्षण करती है। किन्तु काक आम का गुण नहीं जानता, अंगूर आदि के गुण नहीं जानता वह नीम की निबोली जानता है वह उसे लेकर के आनंदित होता है और नीम की निबोली खाता है। ऐसे ही संसार में जितने भी जीव हैं वे सभी जीव जिसे अपने लिये अच्छा व हितकर मानते हैं उसके प्रति ही आकर्षित होते हैं। किसी को क्रोध अच्छा लगता है तो किसी को क्षमा, किसी को मान अच्छा लगता है तो किसी को मार्दव भाव, किसी को छल-कपट अच्छा लगता है तो किसी को सरलता सहजता, किसी को लोभ प्रवृत्ति अच्छी लगती है तो किसी को संतोष, कोई व्यक्ति अहिंसा में आनंद लेता है तो कोई हिंसा करके, कोई सत्य बोलकर आनंद लेता है तो कोई झूठ बोलकर, कोई व्यक्ति चोरी करके आनंद लेता है तो कोई अचौर्य भावना का आनंद लेता है, कोई कुशील सेवन में आनंद लेता है तो कोई ब्रह्मचर्य व्रत का आनंद लेता है। कोई व्यक्ति वस्तुओं का संग्रह करके आनंद लेता है तो कोई वस्तुओं का परित्याग करके आनंद लेता है, कोई व्यक्ति किसी से माँगकर आनंद लेता है तो कोई दान देकर के आनंदित होता है। कोई किसी पर उपकार करके आनंद का अनुभव करता है तो कोई किसी से उपकार लेकर आनंदित होता है सभी व्यक्तियों की प्रवृत्तियाँ अलग-अलग होती हैं। वह प्रवृत्ति कभी एक जैसी हो भी

नहीं सकती क्योंकि सभी व्यक्तियों का कर्म अलग-अलग है सभी के जीवन में कर्म का उदय अलग-अलग तरह से आ रहा है, वह उदय में आने वाला कर्म हर प्राणी के परिणामों को अलग-अलग कर देता है, हर प्राणी के भावों को अलग-अलग कर देता है। वही घटना किसी को अच्छी लगती है किसी को बुरी लगती है, उसी घटना से किसी के चेहरे पर प्रसन्नता आती है, किसी की आँखों से आँसू बहते हैं। वही घटना किसी के लिये वरदान हो जाती है किसी के लिये अभिशाप बन जाती है। हमारा दृष्टिकोण अलग-अलग होता है।

जब गुणग्राहक दृष्टि होती है तब फिर अवगुणों के ढेर में से भी गुणों को देख लिया जाता है। जब हमारी दृष्टि अवगुण के प्रति होती है तब गुणों के ढेर में से भी अवगुणों को खोज लिया जाता है। जो जिसको चाहता है वह उसको प्राप्त कर लेता है। तालाब में खिलता हुआ कमल भ्रमर खोज लेता है और तालाब में पड़ी हुयी मछली को बगुला खोज लेता है दोनों का दृष्टिकोण अलग-अलग है। बछड़ा गाय के स्तन तक पहुँचकर दूध पी लेता है और जोंक गाय के स्तन तक पहुँचकर खून पीती है। दोनों का प्रयोजन अलग-अलग है, दोनों का भाव अलग-अलग है। अब हमें देखना यह है कि हमारा आकर्षण तो है किन्तु ये आकर्षण किसके प्रति है और किसके प्रति होना चाहिये।

आकर्षण अर्थात् खिचाव। जैसे जिसको आप चाहते हैं उसके प्रति आपके मन में खिचाव आता है, या उसके मन में तुम्हारे प्रति खिचाव आता है एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होते हैं। चाहे वह खिचाव माँ का बेटे के प्रति हो, बेटे का माँ के प्रति हो, भाई का बहिन के प्रति हो, बहिन का भाई के प्रति हो, जीवन साथी का जीवन साथी के प्रति, पिता का पुत्र के प्रति, पुत्र का पिता के प्रति

कोई भी खिचाव हो, ऐसा लगता है कोई अंतरंग अदृश्य शक्ति सामने वाले को खींच रही है, या मुझे कोई खींच रहा है। इस खिचाव का नाम ही है आकर्षण। ये खिचाव जब नष्ट हो जाता है, तब उस वस्तु में आता है विकर्षण।

खिचाव किसके प्रति हो, कहाँ हो, कैसे हो? तो गुरुत्वाकर्षण का पहला शब्द है 'गुरुत्व' दूसरा है आकर्षण हमारे अंदर आकर्षण तो हो पर गुरुत्व के प्रति हो। गुरुत्व का अर्थ होता है जिसमें गुरुपना है। जिसमें गुरुपना नहीं है वह गुरु नहीं है। गुरुपना क्या कहलाता है–गुरु शब्द का अर्थ यूँ तो भारी होता है, जो भारी है वह गुरु है जो हल्का है वह लघु है। जो भारी है उसके प्रति आकर्षण हो, जो हल्का है उसके प्रति आकर्षण नहीं हो। दूसरी बात ये भी है जो वस्तु अपने आप में हल्की होती है वह सामने वाली वस्तु को खींचने में समर्थ नहीं होती, जिसके पास भारीपन है वह हल्केपन को अपनी ओर खींच लेता है।

Money begets money, जिसके पास ज्यादा धन है वह निर्धनों के धन को अपने पास खींचकर ला सकता है। जिसके पास कम है वह खिंच जाता है। यदि किसी के पास लोहे का गोला रखा है और छोटी सी चुम्बक है तो छोटी सी चुम्बक लोहे के गोले को खींच नहीं पायेगी, वह खिंच करके उसके पास चली जायेगी। यदि चुम्बक बड़ी है और लोहे की आलपिनें छोटी-छोटी हैं तो वह चुम्बक उन आलपिनों को अपनी ओर खींच लेगी। तो जिसमें गुरुत्व ज्यादा होता है, जिसमें भारीपन ज्यादा होता है वह तुच्छ अल्प शक्ति धारक, निकृष्ट उन पदार्थों को अपनी ओर खींचने में समर्थ होता है।

एक राजा अपने गुणों से सुशोभित है तो उस राजा के गुण सभी को प्रभावित करते हैं, एक व्यक्ति जो राजा से भी ज्यादा शक्तिशाली व प्रभावी है उसके गुण विशेष हैं तो राजा भी गुरु के प्रति प्रभावित

हो जाता है। ऐसे ही परिवार में कोई व्यक्ति छोटा है या बड़ा किंतु यदि वह व्यक्ति गुणों से युक्त होता है, जिसमें कोई सामर्थ्य है तो वह अपने परिवार के सदस्यों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर सकता है। उसकी सभी लोग बात मानते हैं, आदर देते हैं। दूसरी ओर जिसमें कोई शक्ति नहीं, सम्यक्त्व नहीं, बल नहीं, गुरुता नहीं, कोई विशेषता नहीं तो उसकी बात कोई स्वीकार नहीं करता।

आपकी भाषा में कहें तो गुरुता आती है पुण्य के उदय से। जिसके पास ज्यादा पुण्य होता है, उसकी बात को सब मानने को तैयार रहते हैं उसका अनुगमन करने, अनुसरण करने को तैयार रहते हैं किंतु जिसका पुण्य कमजोर रह जाता है फिर उसकी परछाई भी उसका साथ नहीं देती। पुण्य कमजोर पड़ गया यानि पाप का उदय आ गया। जीवन में जब पाप का अंधकार आ जाता है तो अपनी परछाई भी अपना साथ नहीं देती है। जीवन में जब पुण्य का प्रकाश होता है तो अपनी परछाई तो क्या, हजारों परछाईयाँ हजारों जीवन्त कृतियाँ साथ देती हैं। जब गुरुता जीवन में आती है तो हम खड़े होते हैं तो कोई बैठा नहीं रहता है। जब गुरुता जीवन में आती है तो हम बैठे होते हैं तो कोई हमारे सामने खड़ा नहीं रहता। हम जिसके पास भी बैठ जाते हैं उसे भी गुरुता का अनुभव होता है। गुरुता का आशय यही है कि तुम जिसके पास भी जाकर बैठ जाओ उसे अपने हल्केपन का आभास न हो, वह समीप बैठकर के अपने में गौरव का अनुभव करने लगे।

गुरुता वह कहलाती है जो अंधकार में भी प्रकाश भर दे। गुरु शब्द जो बना है वह दो अक्षरों से मिलकर के बना है गु+रु गु शब्द का अर्थ होता है अंधकार, रू शब्द का अर्थ होता है विनाश।

गु शब्दस्त्वंधकारे च रु शब्दस् तन्निवर्तकाः।
अंधकार-विनश्यत्वात् गुरु संज्ञा विधीयते॥

जो अंधकार को नष्ट करने में समर्थ है वह गुरु है। सूर्य को भी गुरु कहा जाता है, चन्द्रमा को भी गुरु कहा जाता है और भी ज्योतिर्ग्रह हैं उनको गुरु कहा जाता है। दीपक, बल्ब, मोमबत्ती, लालटेन आदि सभी प्रकाश देने वाले पदार्थ गुरु कहे जाते हैं क्योंकि वे अंधकार को हरने वाले हैं। किन्तु वे बाहर के अंधकार को हरते हैं, अंदर के अंधकार को नहीं। इसलिये अंदर के अंधकार को हरने वाला चैतन्य गुरु कहलाता है। उस गुरु के बिना अंदर का अंधकार नष्ट नहीं होता और जब गुरु का प्रकाश अपने पास है, तब संसार का कितना बड़ा भी अंधकार क्यों न हो हमारे चित्त में जलती हुई चिंगारी को बुझा नहीं सकता। तीन लोक में कितना भी बड़ा अंधकार छा जाये, वह अंधकार उस जलती हुयी मोमबत्ती को बुझा नहीं सकता किंतु थोड़ा सा हवा का झोंका चल जाये, चाहे सूर्य का प्रकाश ही क्यों न हो हवा का झोंका आते ही वह ज्योति बुझ जाती है। ऐसे ही हमारी अंतरंग की ज्योति को बुझाने में समर्थ हमारा अंधकार नहीं है, हमारी ज्योति को बुझाने में समर्थ है विषय-कषायों की आँधी। अज्ञान से हमारी ज्योति नहीं बुझती है, जब वह विषय-कषायों में पड़ जाता है तब फिर उसके सम्यग्ज्ञान की ज्योति बुझ जाती है वह फिर उसे सुरक्षित नहीं रख पाता।

महानुभाव! गुरु शब्द का अर्थ अपन यूँ भी देखकर के चले कि गुरु कौन? गुरु वही जो अंदर के अंधकार को नष्ट करने में समर्थ है। जिसने स्वयं के अंदर के अंधकार को नष्ट कर दिया है वही दूसरों के अंदर के अंधकार के नष्ट करने में समर्थ होता है। जो दीपक स्वयं प्रज्ज्वलित है वह अनेक बुझे हुये दीपकों को जलाने में समर्थ होता है किन्तु जो दीपक स्वयं बुझा हुआ है, वह दीपक किसी भी बुझे दीपक को जलाने में समर्थ नहीं हो सकता। गुरु स्वयं प्रज्ज्वलित दीपक हैं, स्व-पर प्रकाशी हैं ऐसे ही पाँचों परमेष्ठी

स्व-पर प्रकाशी हैं वे अपने अन्तरंग में अपने आत्मा के वैभव का अवलोकन कर रहे हैं, अनुभव कर रहे हैं उसे जान रहे-देख रहे-भोग कर रहे हैं और बाहर में श्वांस की तरह छोड़ा गया प्रकाश भव्य जीवों के लिये कल्याण का निमित्त बन रहा है। जैसे श्वांस स्वयं के लिये ग्रहण किया जाता है उच्छ्वास पर के लिये। हम श्वांस लेते हैं उससे हमारा जीवन चल रहा है, जब श्वांस छोड रहे हैं जो कार्बनडाई ऑक्साइड है उससे वृक्षों का जीवन चल रहा है। वृक्ष कार्बनडाई ऑक्साइड ग्रहण कर रहे हैं उससे वृक्षों का जीवन चल रहा है और वे वृक्ष ऑक्सीजन छोड़ रहे हैं उससे हमारा जीवन चल रहा है।

स्व-पर हित एक साथ होता है। हमारी यह क्रिया कि हम सिर्फ श्वास लेते जायें इससे हमारा जीवन संभव नहीं है और केवल छोड़ते जायें तब भी संभव नहीं है छोड़ना भी जरूरी है और ग्रहण करना भी जरूरी है। दोनों आवश्यक हैं। जितना लेना जरूरी है उतना छोड़ना भी जरूरी है। दीपक अपने प्रकाश को अपने अंदर समेट करके रखे यह संभव नहीं है, दीपक अपने पूरे प्रकाश को बाहर में फेंक दे अपने पास कुछ भी न रखे ये भी संभव नहीं है। दीपक जलेगा तो प्रकाश ज्योति में भी रहेगा और बाहर भी जायेगा। ऐसे ही जो व्यक्ति आत्म कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हुआ है, गतिशील हुआ है, वह स्वयं अपना कल्याण भी करेगा और जो अपना कल्याण करने में समर्थ है उसके माध्यम से दूसरे का कल्याण भी होगा। जो दूसरे का कल्याण कर रहा है, करने में समर्थ है वह किंचित् अपना कल्याण भी कर पा रहा है। ऐसा व्यक्ति जिसकी दुर्भावना है, कषाय के तीव्र परिणाम हैं, क्रूरता भरी हुयी है, जो अपनी आत्मा का अहित कर रहा है वह समाज का भी अहित करता है। उसकी वर्गणाओं से समाज भी दूषित होती है। जैसे वायु प्रदूषण होता है, जल प्रदूषण,

ध्वनि प्रदूषण होता है ऐसे ही वैचारिक प्रदूषण भी होता है यदि किसी व्यक्ति के विचार प्रदूषित हैं तो उसके माध्यम से दूसरों के विचार भी प्रदूषित होते हैं। किसी के विचार अच्छे हैं तो उसके माध्यम से दूसरों के विचार अच्छे भी हो सकते हैं।

महानुभाव! अच्छा व्यक्ति वह नहीं जो ये कहे कि अच्छे के साथ अच्छा व्यवहार करो, बुरे के साथ बुरा व्यवहार करो। अच्छा व्यक्ति वह होता है जो कहे कि जो अच्छा है उसके साथ तो अच्छा व्यवहार करो ही किंतु जो बुरा है उसके साथ भी अच्छा व्यवहार करो। चंद्रमा अपनी चाँदनी को सिर्फ सज्जनों के घर पर ही फेंकता हो ऐसा नहीं है, उसकी चाँदनी तो चाहे राजा का महल है या किसी गरीब की झोपड़ी है, या किसी साधु-संत जी का कोई मठ है चाहे किसी डाकू की गुफा है या हिंसा करने वाले चाण्डाल का भवन चाँदनी सर्वत्र फैलती है। चंद्रमा की चाँदनी चाहे जहर रखा हो या अमृत सब पर जायेगी। सूर्य का प्रकाश भी सबके लिये है फिर चाहे वह जीव पापी हो या पुण्यात्मा, वह कभी पक्षपात नहीं करता ऐसे ही महापुरुषों का जीवन सबके हित के लिये होता है। सूर्य का कार्य प्रकाश देना है वह प्रकाश देगा चाहे प्रकाश कहीं भी पहुँचे। वह प्रकाश का संकुचन या विस्तार नहीं करेगा।। ऐसे ही संत पुरुषों का जो करुणा-दया का भाव है यदि जंगल में भी विराजमान हो जायें तो उनकी करुणा के माध्यम से, उनके शरीर से निःसृत होने वाली विशुद्ध वर्गणाओं के आभामण्डल के माध्यम से जंगल में रहने वाले क्रूर जानवर व पशु-पक्षी भी अपनी क्रूरता को छोड़कर प्रेमालाप कर सकते हैं, आपस में वात्सल्य करने लगते हैं।

उस करुणा-दया-समता का परिणाम केवल बाहर के व्यक्तियों पर नहीं जा रहा है वरन् उनकी आत्मा में भी आनंद को देने वाला होता है। तो गुरु शब्द का अर्थ गुरुता है। दूसरा गुरु शब्द का अर्थ

ऐसे भी निकाल सकते है–'गु' कहिये तो गुण 'रु' कहिये तो रूह। रूह के गुणों का जिसमें भारीपन है। आत्मा के गुणों से जो भारी हो गया है वही वास्तव में गुरु है। शरीर से जो भारी हो गया, जिसका वजन 1 क्विन्टल हो गया या ज्यादा कम हो गया तो वह गुरु नहीं। बहुत बड़े शरीर वाला हो गया तो गुरु नहीं हो गया या मगरमच्छ और बड़ा होता है वह गुरु नहीं हो गया, गुरु तो वह भी हो सकता है जिसका वजन थोड़ा भी हो पर उसकी आत्मा में बहुत वजन हो। जिसकी आत्मा गुणों से परिपूर्ण है।

अच्छाई के मायने यही हैं कि वह अच्छे के साथ भी अच्छा करता है, बुरे के साथ भी अच्छा करता है क्योंकि हीरा, हीरे से काटा जाता है, हीरे की शुद्धि हीरे से होती है किन्तु कीचड़ को कीचड़ से नहीं धोया जा सकता, कीचड़ को धोने के लिये स्वच्छ जल की आवश्यकता पड़ती है। स्वच्छ जल जहाँ निर्मलता है वहाँ पर भी प्रयोग किया जाता है, और जहाँ पर गंदगी है वहाँ पर भी स्वच्छ जल का प्रयोग किया जाता है। ऐसे ही अच्छाई वहाँ पर भी जरूरी है जहाँ पर अच्छे व्यक्ति रहते हैं, और अच्छाई वहाँ पर भी जरूरी है जहाँ बुरे व्यक्ति रहते हैं। जहाँ बुरे व्यक्ति रहते हैं वहाँ बुराई बुराई से नहीं मिटती है बुरे व्यक्ति की बुराई अच्छाई से मिटती है। शत्रु को मारने से शत्रुता नहीं मिटती किंतु शत्रुता को मारने से शत्रु बचता नहीं है। केवल शत्रु के शरीर का घात कर दिया तो शत्रुता नहीं मिटी बल्कि 2, 4, 6, 10 या इससे भी ज्यादा भवों तक शत्रुता चलती रहती है। अंदर से शत्रुत्व का अंत करके मित्र की उत्पत्ति होती है। इसलिये प्रयास यही रहे कि शत्रु न मरे शत्रुता मर जाये। शत्रुता मर जाती है तो पूरा संसार अपना मित्र बन जाता है।

गुरु शब्द का अर्थ देखा जो आत्मा के गुणों में भारी हो। देखो यदि पुद्गल से आप भारी होना चाहते हैं तो पुद्गल जब-जब भी

भारी होता है तब-तब वह पुद्गल नीचे की ओर जाता है और पुद्गल जब-जब हल्का होता जाता है तो ऊपर उठता चला जाता है। तूमड़ी में लगा हुआ मिट्टी का लेप जब तक मिट्टी भारी है तूमड़ी नदी-तालाब में डूबती चली जायेगी और लेप जब हटता चला जायेगा तो तूमड़ी ऊपर आ जायेगी। पुद्गल की वस्तुओं का स्वभाव नीचे ले जाने का है, वह जितनी भारी होगी उतना ही नीचे चली जायेगी और जितनी हल्की होगी उतना ऊपर चली जायेगी। चाहे धुआँ है, अग्नि की लपटें हैं, जल की शीतल फुहारें हैं, मोटी धारा है तो सीधी बरसेगी और आँधी आ रही है, कोहरा छाया हुआ है तो वह आसमान में रुक जायेगा, वह भी भारी है तो और ऊपर नहीं जा सकता जितना हल्का होगा उतना ऊपर उठता जायेगा। व्यक्ति यदि पहाड़ से गिरता है तो नीचे ही आता है और यदि गुब्बारा है नीचे भी रखा है तो हवा के साथ उड़कर के ऊपर पहुँच जायेगा। तो पुद्गल जितना भारी होता है उतना नीचे की ओर गति करता है, जितना हल्का होता है उतनी ऊपर की ओर गति करता है।

महानुभाव! किन्तु आत्मा जितनी गुणों से भारी होती है उतना ऊपर की ओर गति करती है। पहले आत्मा में कुछ गुण आये तो श्रावक बना, गुण कुछ और बढ़े तो श्रमण बना, और गुण आये तो पाठक (उपाध्याय) बना, और ज्यादा गुण आये तो आचार्य बना, और ज्यादा गुण आये तो अरिहंत बना और गुण प्रकट हो गये तो सिद्ध बन गया ऊपर उठता चला गया। आत्मा में पाप का उदय आया तो वह मनुष्य गति से तिर्यंचगति में चला गया, तिर्यंच गति से नरक गति में चला गया या देवगति से च्युत हुआ देवदुर्गति हुयी, कुभोगभूमि गया तो ज्यों-ज्यों पाप बढ़ता चला जाता है त्यों-त्यों गिरता चला जाता है। जो पुद्गल से अपनी आत्मा को सम्पन्न करना चाहता है वह व्यक्ति निःसंदेह डूबने वाला है। भारी वस्तु डूबती ही

डूबती है हल्की वस्तु ही तैर सकती है, किन्तु गुणों से भारी आत्मा इस भव समुद्र में तैरती है किन्तु उसे भी अंतरंग के दोषों से रहित होना पड़ता है यूँ कहें कि पाप भारी होता है और पुण्य हल्का होता है। तो पुण्य के माध्यम से वह तैरती है और पाप के माध्यम से डूब जाती है।

एक ट्रक के ट्यूब में आपने बालू भर दी और उस ट्यूब को पानी में डालकर सोचो इसके सहारे से मैं पार हो जाऊँगा तो ट्यूब डूब जायेगा और उसमें बैठने वाला भी डूब जायेगा। यदि उस ट्रक के ट्यूब में भरी हुयी बालू को निकालकर के उस ट्यूब में हवा भर दी जाये तो फिर वह ट्यूब डूबेगा नहीं, उसका आश्रय लेने वाला व्यक्ति भी डूबेगा नहीं, पार हो जायेगा।

एक व्यक्ति व्यापार करने के लिये विदेश गया, गुरुजी से कहा आप मुझे आशीर्वाद दे दो, मैं जलयात्रा करके व्यापार के लिये जा रहा हूँ। गुरु ने कहा-बेटा व्यापार के लिये जलीय मार्ग से जा रहे हो तो पहले ये बताओ क्या तुम तैरना जानते हो? वह बोला-गुरुजी मैं तैरना तो नहीं जानता। गुरु ने कहा-ठहर जाओ, आठ दिन में तुम तैरना सीख जाओगे, पहले तैरना सीखो फिर जलीय मार्ग से यात्रा करने जाना। वह बोला-गुरु जी! मेरे पास इतना समय नहीं है मेरे सभी साथी जा रहे हैं, मैं तैरना नहीं जानता और इतनी जल्दी सीख भी नहीं सकता। गुरु जी ने कहा-वत्स! तुम तैरना नहीं जानते और विदेश में जाकर तुमने जो कुछ भी कमाया लौटते वक्त यदि कोई दुर्घटना घटित हो गयी तो कम से कम तैर करके अपने प्राण तो बचा लेगा। उसने कहा-गुरु जी आप मुझे क्षमा करो, अभी मैं तैरना सीख ही नहीं पाऊँगा, मुझे अभी अपने साथियों के साथ ही जाना है फिर कब पहुचूँगा कह नहीं सकता। अभी जाना है आप तो आशीर्वाद दो।

गुरु ने कहा-चल ठीक है, एक काम कर अपने साथ जलीय

यात्रा में दो खाली पीपे लेकर के जाना, वे दोनों खाली पीपे कभी छोड़ना नहीं उसने ऐसा ही किया। वह विदेश पहुँचा वहाँ खूब धन कमाया। वहाँ के राजा से मिला उसे भी भेंट आदि दी और राजा की आज्ञा पाकर स्वदेश की ओर रवाना हुआ। उसने देखा मेरे पास बहुत सारा धन है, कहाँ रखूँ। उसने पोटलियों में धन बाँध लिया और जो उसके पास दो खाली पीपे थे, उसे लगा अनावश्यक परिग्रह है, इसमें भी कुछ धन रख लूँ और सोने के सिक्कों से दोनों पीपे भर लिये।

जब जलीय मार्ग से चलने लगा, मार्ग में तूफान आया, नाव हिचकोले लेने लगी। अब डूबी कि अब डूबी। नाव टूटकर के बिखर गयी, जो व्यक्ति तैरना जानते थे वे अपने धन का लोभ छोड़कर के तैरकर किनारे तक आ गये। जिन्हें तैरना नहीं आता था वे डूब रहे थे। जिसके पास ट्यूब था वे उसे लेकर तैर गये, जिनके पास खाली पीपे थे वो उसे लेकर कूद गये क्योंकि खाली पीपे डूबते नहीं तो उसके ऊपर आश्रित व्यक्ति भी नहीं डूबेगा। किन्तु उस व्यक्ति ने तो अपने पीपे में पहले से ही धन भर लिया था, वह जैसे ही अपने पीपों को लेकर नदी में कूदा तो पीपे भी डूब गये और वह भी डूब गया।

महानुभाव! जब हम अपनी छोटी बुद्धि से, अपने जीवन में अनावश्यक चीज भर लेते हैं तो अनावश्यक चीज भी डूबती है उसके साथ हम भी डूब जाते हैं। जब हम अपने जीवन को सफल और सार्थक करने वाला द्रव्य अपने पास रख लेते हैं तो वह द्रव्य दु:ख का कारण नहीं होता, वह द्रव्य भी संसार में नहीं डूबता है और हम भी संसार में नहीं डूबते हैं। जैसे घी या तेल जल की नीचे वाली सतह पर नहीं ऊपर वाली सतह पर रहते हैं ऐसे ही जब हमारी शुद्धि हो जाती है तब हम संसार की नीचे वाली सतह पर नहीं ऊपर वाली सतह पर लोक के अग्र भाग पर पहुँच जाते हैं।

गुरुता के मायने है जिसने लेने योग्य ज्ञान ले लिया। जो देने

योग्य पदार्थ है सब दान में दे दिया और छोड़ने योग्य अहंकारादि दुर्गुणों को छोड़ दिया, भाने योग्य वैराग्य भावना-बारह भावनादि को भा लिया, ध्याने योग्य आत्मा-परमात्मा का ध्यान किया है, करने योग्य जितने सुकृत थे सब कर लिये वही गुरु है। गुरु वह नहीं जो लेने योग्य को ले नहीं पाय, देने योग्य को दे नहीं पाये, छोड़ने योग्य को छोड़ नहीं पाये, ध्याने योग्य को ध्या नही पाये, भाने योग्य को भा न पाये, ज्ञेय को जान न पाये तो वह गुरु नहीं हो सकता। जिसका काम अधूरा है उसे अभी गुरु नहीं कहते हैं। वे करने योग्य कार्य कर रहे हैं, न करने योग्य नहीं कर रहे हैं। गुरु वह होता है जो कभी प्रभाव में बहता नहीं है। जो भारी होता है तो बहता नहीं है। हवा के प्रवाह में न बहे, सुमेरु पर्वत की तरह से अडिग बना रहे वह गुरु है। बाढ़ के प्रवाह में जो अड़ा रहे, खड़ा रहे पत्थर की तरह से, वह है गुरु। जो किसी की बातों के प्रवाह में न बहे, बातों का रुख मोड़ दे वह है गुरु। जो वातावरण के प्रवाह में न बहे वातावरण का मुख मोड़ दे वह है गुरु।

गुरु युग पुरुष होता है, वह स्वयं नहीं बदलता सबको बदल देता है। पर्वत की तरह से है हवा के रुख को बदल देगा, बाँध की तरह से है पानी के रुख को बदल देगा। उसका प्रवचन ऐसा जो सभी की बातों का रुख बदल देगा। जहाँ पहुँच गया, उसके पहुँचते ही वातावरण बदल जायेगा जैसे पुष्पों की महक पहुँचते ही दुर्गंध युक्त स्थान भी सुगंधित हो जाता है। आज भी आप देखते हैं सभा में समाज के कोई भारी भरकम व्यक्ति पहुँच जायें तो लोग सम्मान में खड़े हो जाते हैं सोचते हैं सभा में जीवंतता आ गयी। अगर वे ना पहुँचें तो लोग कहते हैं कैसी सभा, सभा में कोई योग्य व्यक्ति तो है नहीं। तो गुरु वह कहलाते हैं जिनके माध्यम से सम्पूर्ण सभा में प्राण आ जायें।

गुरु वे कहलाते हैं जो गुणों को धारण करते हैं और गुणों को दूसरों में प्रकट करते हैं, गुरु वे हैं जो कभी भी मान मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते हैं, अपनी सीमा रेखा का कभी उल्लंघन नहीं करते, अपने द्वारा बनाये गये उस कवच को तोड़कर कभी बाहर नहीं जाते। जो दूसरों के लिये भी वैसे ही प्रेरक निमित्त बनते हैं। दूसरों को वचन से नहीं जीवन से ज्यादा उपदेश देते हैं। गुरु वे कहलाते हैं जो वस्तु नहीं जीवन जीने की शैली देते हैं। गुरु वे कहलाते हैं जो पुद्गल नहीं चेतना के शुद्ध भावों को प्रकट करने में समर्थ होते हैं। गुरु वे होते हैं जो दक्षिणा नहीं भक्तों की खोटों को ले लेते हैं, भक्त से वोट या नोट नहीं उनकी खोट ले लेते हैं। उनकी शक्ति ऐसी होती है जो भक्तों के खोटों को खींच लेती है और उनके अंदर गुणों का आविर्भाव कर देती है।

गुरु का अर्थ होता है जिसने जीवन की संपूर्ण अच्छाई और सच्चाई को प्राप्त कर लिया है। जब तक हम जीवन की संपूर्ण सच्चाई स्वीकार नहीं करते, अच्छाईयों को प्राप्त नहीं करते तब तक गुरुता नहीं आती है। हमारे जीवन में उस अच्छाई व सच्चाई को प्राप्त करने की सामर्थ्य भी गुरु के माध्यम से प्राप्त होती है। जैसे अग्नि लोहे के दोषों को, स्वर्णादि के दोषों को जला देती है ऐसे ही गुरु अग्नि की तरह हमारे दोषों को जला देते हैं। जैसे सूर्य पदार्थों को प्रकाशित करता है वैसे ही गुरु वह है जो हमारे गुणों को प्रकाशित करे। जैसे माली बीज को वृक्ष बना देता है, वैसे ही गुरु वो हैं जो हमारी आत्मा रूपी बीज को जो अभी बहिरात्मावस्था में है उसे परमात्मा बना दे। गुरु उस नाविक की तरह से है जो संसारी प्राणियों को इस भव सिंधु से ऊबारकर दूसरे किनारे पर पहुँचा दे। गुरु वह है जो पथ-पाथेय और आलम्बन भी देता है। इसीलिये गुरु की महिमा तो अगम्य है। आचार्य अजितसेनसूरि जी ने गुरु के संबंध में

लिखा है–

रत्नत्रयविशुद्धः सन्पात्रस्नेही परार्थकृत्।
परिपालितधर्मोहि, भवाब्धेस्तारको गुरुः॥

"जो रत्नत्रय से विशुद्ध हैं, जो धर्म व धर्मात्माओं के प्रति स्नेह वान् हैं, जो दूसरों का उपकार करने में समर्थ हैं, भव्यों का परिपालन करने वाले हैं और जो संसार से पार करने वाले होते हैं वो गुरु होते हैं।"

इस प्रकार की विशेषता जिनमें होती हैं वे गुरु होते हैं, यदि ये विशेषता नहीं हैं तो गुरुता नहीं आती। उस गुरुता के प्रति आकृष्ट होना है। गुरु का आकर्षण उनका आभामण्डल (ओरा) होता है। जो उस प्रकार की जाति-गुणों से युक्त होते हैं वे गुरु के पास खिंच करके चले आते हैं। और विरोधी शक्ति जिसके पास होती है तो रास्ता बचाकर के चला जायेगा। जो जिसका ग्राहक होता है वह उसकी दुकान पर जायेगा और जिसे जो वस्तु नहीं चाहिये वह उस दुकान पर क्यों जायेगा। जिसे अपने अंदर में गुरुता प्रकट करनी है, गुण प्रकट करने हैं तो वह क्या करेगा? उसे जहाँ गुण मिलेंगे, वह वहाँ जायेगा।

अच्छाईयाँ देख ले तू सारे जहान की।
बुराईयों का कहीं कोई अंत नहीं है॥

अच्छाईयों के ग्राहक जहाँ से भी अच्छाई मिलती हैं वहाँ से ले लेते हैं। जिस व्यक्ति को घी चाहिये और बाजार में 50 दुकानें घी की हैं तो वह सब जगह से जितना घी मिलेगा उतना लेता चला जायेगा। किसी को अनाज चाहिये तो जितना मण्डी में अनाज है वह सब अनाज इकट्ठा कर लेगा, जिसको जो चीज चाहिये उसे इकट्ठा करने के लिये कहीं भी जाना पड़े वहाँ से इकट्ठा करता है। ऐसे

ही जिसे गुण चाहिये वह इकट्ठा करने के लिये वहाँ पहुँचता है जहाँ गुणों का समूह विद्यमान है जहाँ गुणों का समूह विद्यमान नहीं है वहाँ वह भूलकर भी नहीं जायेगा।

महानुभाव! आन-बान-शान अर्थात् जो स्वयं की आन में रहते हैं, स्वयं के मान में रहते हैं मान माने प्रमाण और स्वयं की शान में रहते हैं जो अपनी आन-बान-शान-मान का उल्लंघन कर देते हैं वही जीवन में परेशान होते हैं। इसलिये जिसने मान का त्याग किया वो बेईमान कहलाता, मान में रहे ईमान कहलाता। जो अपने गुणों से प्रभावित है, दूसरों को प्रभावित करता है, जिसकी अपनी स्वयं की शान है, वह सुखी है किंतु जो दूसरों से अपनी शान बढ़ाना चाहता है वह परेशान है। जो अपनी मर्यादा में रहता है तो सभी उसकी मर्यादा में रहते हैं। मुसलमान के ग्रंथ का नाम "कुरान" अपनी आन करो, मर्यादा करो, इसे जैन शासन में कहते हैं परिमाण व्रत। अपने आने-जाने का परिमाण कर लो, वस्त्र-आभूषण-वाहन-धन-जमीन आदि भोग-परिभोग का परिमाण कर लो। उन आन वाले व्यक्तियों की चर्चा सैकड़ों हजारों वर्षों तक रहती है, शास्त्रों में लिखी जाती है इसीलिये कहते हैं पुराण। पूर्वकाल में जिन्होंने मर्यादा का पालन किया, आन में रहे, तो उनके जीवन चरित्र को पुराण कहते हैं।

जो भी आपका एक व्यवस्थित मार्ग है आप उस पर चलोगे तो मंजिल तक पहुँचोगे। Railway track होता है जिस पर ट्रेन चलती है, यदि उस आन का उल्लंघन किया तो वह मंजिल तक न पहुँचेगी। सबका एक ट्रेक है चाहे वायुमार्ग हो, जलमार्ग हो। उनका उल्लंघन किया तो संभव है खतरे-ही खतरे आयें। इसलिये हमें गुरु तो बनना है, बड़ा तो बनना है पर गुणों से बनना है। हम उठें, ऊँचे उठें, और ऊँचे उठें किन्तु इतने ऊँचे न उठ जायें कि इससे हमारे अपने छूट जायें, हम अपनों को ही न देख पायें, अपनों को ही न

जान पायें। हम ऊँचे तो उठें पर इतने ऊँचे न हों कि हम पर कोई फल ही न हो। बड़े तो बन गये पर ताड़ वृक्ष की तरह बन गये तो क्या अर्थ।

बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर।
पंछी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर॥

तो ऐसा बड़ा नहीं, बड़ा बनना है तो रसाल के वृक्ष की तरह से। आम का वृक्ष बड़ा होता है, शाखायें फैलती हैं वह इतने आमों से लद जाता है कि उसकी एक शाखा ऊपर आकाश को छू रही है तो एक टहनी नीचे जमीन को भी छू रही है फल जमीन तक को छू रहे हैं। ऐसे ही हमारी लघुता हो हमारा सिर आकाश तक बहुत ऊँचा पहुँच जाये पर उसके उपरांत भी हमारे पैर जमीन को न छोड़े। हमारे पैर जब जमीन पर रहेंगे तब हम कितने भी ऊपर पहुँच जायेंगे तब भी हम स्थिर हैं। जिस दिन पैर ने जमीन छोड़ दी उस दिन हम अधर में टंगे हैं कभी भी धराशाही हो सकते हैं। जो वृक्ष जमीन में जितनी गहरी जड़ों को लिये होते हैं वे उतने ऊपर उठते चले जाते हैं, जो वृक्ष जमीन से अपनी जगह छोड़े देते हैं, जड़ें निकल जाती हैं यदि जड़ों के मन में भाव आ जाये मैं प्रकट कर दूँ, बाहर दिखा दूँ तो वे वृक्ष धराशाही हो जाते हैं। तुम्हारी और हमारी स्थिति तब तक है, जब तक हमारे और तुम्हारे पास कुछ गुप्त है, कुछ गुप्त पुण्य है, कुछ गुप्त साधना है, कुछ गुप्त सत् क्रियायें हैं, कुछ गुप्त उपकार हैं, कुछ गुप्त दान करते हैं, कुछ गुप्त पूजा-पाठ करते हैं, कुछ गुप्त में जापादि जितने भी सद्कार्य कर रहे हैं तब तक आपकी और हमारी स्थिति उन्नति की ओर दिखाई दे रही है। जिस दिन हम गुप्त पुण्य का कार्य बंद कर देंगे, हमारा और आपका जीवन भी धराशाही हो जायेगा। जो गुप्त कार्य हैं, पुण्य है यदि उन्हें दिखाने का भाव आ गया तो बस वृक्ष की तरह से कभी भी पाप रूपी हवा का

झोंका आया और हम धराशाही दिखाई देंगे। और हमारे पास गुप्त पुण्य रूपी जड़ें मजबूत हैं तो जीवन में कैसे भी पाप का उदय आ जाये हम धराशाही न हो सकेंगे।

महानुभाव! जीवन में जो कुछ भी ग्रहण करने योग्य है, उसे हमें समय के अनुसार ग्रहण कर लेना चाहिये। क्योंकि समय हमारे जीवन में फिर बार-बार नहीं आता है। एक बार अनुकूलता मिली तो जरूरी नहीं है वह बार-बार बने। जो व्यक्ति समय का सदुपयोग करना जानता है, जो व्यक्ति अपने उपकारी के प्रति कृतज्ञता से स्वयं को भरना जानता है वह व्यक्ति अपने जीवन को सफल और सार्थक करना जानता है। जो व्यक्ति समय का उपयोग करना नहीं जानता, जो व्यक्ति उपकारी के प्रति कृतज्ञता का भाव व्यक्त करना नहीं जानता वह व्यक्ति अपने जीवन को सफल व सार्थक भी नहीं कर सकता। इसलिये जीवन को सफल और सार्थक करना है तो सबसे बड़ी विशेषता यही है कि हम अपनी शक्तियों का सदुपयोग तो करें किन्तु अहंकार नहीं। शक्तियों का सदुपयोग, गुणों का सदुपयोग हमारे जीवन को महान् बनाने वाला होता है, शक्तियों का अहंकार हमारे जीवन का पतन करने वाला होता है।

हमारी आन, हमारी शान, हमारा मान यदि सौ टंच के सोने की तरह से है तब फिर शत्रु भी हमारी प्रशंसा करता है और जब हमारी आन-मान-शान में खोट होती है तो हमारे अपने ही विरोधी बन जाते हैं। जीवन में तूफान आना भी बहुत जरूरी है, उससे एहसास हो जाता है, ज्ञान हो जाता है कि उस तूफान में कौन हमारा साथ छोड़कर के चले जाते हैं और कौन हमारे हाथ को थामे रहते हैं। अपने पराये की पहचान उस तूफान से हो जाती है। जीवन में कुछ प्रतिकूलता भी आनी चाहिये। हो सकता है जिसे आप अपना मान रहे थे वे वास्तव में तुम्हारे न हों, तूफान का नाम लेने मात्र से ही

भाग जायें, और तो और उनका बस चले तो धक्का देकर चले जायें। और दूसरे कोई ऐसे भी हो सकते हैं जो तुमसे दूर खड़े थे, जिन्हें तुम अपना नहीं मान रहे थे, उस तूफान में आकर के तुम्हें गिरे से उठा लें और तुम्हें संभाल लें। उस तूफान में जो आकर के तुम्हारा हाथ थाम ले वही गुरु है। जो तुम्हें धक्का देकर के गिरा दे, वह तो शत्रु है। उसके माध्यम से अनंतकाल में भी गुरुता नहीं आ सकती। और जो तुम्हारा हाथ थामने में और तुम्हें गिरे से उठाने में समर्थ है वही तुम्हारे जीवन में गुरुता का आविर्भाव करने में समर्थ हो सकता है।

महानुभाव! आन-मान-शान की रक्षा कैसे करनी है? वर्षा बहुत दिनों से नहीं हो रही थी, चातक पक्षी के बारे में नियम सुनने में आता है कि चातक पक्षी या तो वर्षा का पानी पीता है नहीं तो प्यासा मर जाता है। उसने अपने पिता से कहा-पिता जी मुझे बहुत तेज प्यास लग रही है, अब मैं बिना जल के रह नहीं सकता। पिता ने समझाया देखो हम लोगों ने कभी अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया। सर्प यदि आन लगा दे तो उसे काटकर बाहर नहीं निकलता, हंस भूखा-प्यासा मर जायेगा किन्तु दूध ही पीयेगा, मोती ही चुगेगा माँस नहीं खायेगा। अन्य और-और जन्तु जानवरों के सबके कुछ न कुछ नियम हैं जिनका वे पालन करते हैं, हमें भी अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना है। उसने कहा-पिता जी आप तो पुराने जमाने के हैं, पुरानी बातें कर रहे हो, बूढ़े हो गये हो। पहले मर्यादायें थी अब मैं इसको नहीं मानता मैं मरूँगा नहीं मैं तो पानी पीने जा रहा हूँ।

चातक पक्षी के पिता ने पूछा-बेटा! कहाँ का पानी पीयेगा? तालाब का? कुयें का? झील का या नदी का? वह बोला मैं ये पानी नहीं पीऊँगा मैं मानसरोवर के समुद्र का पानी पीऊँगा, उस पानी में कोई गंदगी-कीचड़ नहीं, जैसे बरसता हुआ पानी मैं शुद्ध मानता हूँ

वैसा ही वह शुद्ध है। पिता ने पुनः समझाया कहा—एक बार विचार और कर लो, किन्तु वह नहीं माना और कहने लगा पिता जी! आपके विचारों पर विचार करते-करते मेरी ये दशा हो गयी अब प्राणकंठ में आ गये, अब मैं नहीं रुकूँगा, पानी पीने अवश्य ही जाऊँगा। और वह उड़कर के गया पानी पीने के लिये, उड़ता चला गया और उड़ते-उड़ते थक गया तो एक वृक्ष पर जाकर बैठ गया। संध्या होने को आयी और वह एक पेड़ पर बैठा है। पेड़ के नीचे एक व्यक्ति बहुत देर से बैठा अपने पिताजी की इंतजारी कर रहा है। सूर्यास्त हो गया उसके पिता जी लौटकर आ गये। वह बोला पिता जी आज आप कुछ खाने के लिये नहीं लाये, कुछ कमाया नहीं। पिता जी ने कहा—बेटा! आज मेरा दिन ऐसे ही निकल गया, मैं कुछ कमा नहीं पाया।

बेटा बोला-पिता जी ऐसा क्या हो गया। वे बोले-मुझे रास्ते में एक थैली मिली थी उसमें स्वर्ण के सिक्के थे। बेटा बोला—अरे वाह! उस थैली को आप ले आते, उससे तो हमारा पूरा जीवन ही पार हो जाता। नहीं बेटा-ऐसा हमें नहीं करना, हमें अपनी ईमानदारी नहीं खोनी। पिता जी! तो फिर आपने क्या किया? मैं उस थैली को लेकर के जो व्यक्ति वहाँ से गया था उसके कदमों के पीछे-पीछे गया और अखिरकार मैं उसके पास पहुँच ही गया जिसकी वह थैली गिरी थी। मुझे विश्वास था कि इस थैली के बिना वह बड़ा आकुल-व्याकुल होगा उसका इतना सारा धन गुम गया था, जब मैं पहुँचा तो मैंने देखा वह बहुत व्याकुल था, वह अपना धन ढूंढने आ ही रहा था। मैं उसे उसकी थैली देकर के आया, उसने मुझे ईनाम में एक सोने का सिक्का भी दिया किंतु मैंने उसे मना कर दिया, कि मैं इनाम का पात्र नहीं, मैंने तो अपने कर्तव्य का पालन किया है। कर्तव्य पालन करने में इनाम का कोई प्रसंग नहीं। मैनें कोई

अतिरिक्त काम नहीं किया इसलिये मैंने नहीं लिया। आज मैं कुछ कमा-कर नहीं लाया आज हम दोनों ऐसे ही पानी पीकर भूखे पेट सो जायेंगे।

बेटा बोला—पिता जी! आज ये आपने ठीक नहीं किया। पिता बोले—बेटा! हम इंसान हैं जब एक चातक पक्षी अपनी मर्यादा भंग नहीं करता वह मात्र वर्षा का ही जल पीता है। वह अपने प्राण त्याग सकता है किंतु किसी गड्ढे, झील या समुद्र का पानी नहीं पीता, वह अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता तो मैं इंसान होकर के अपनी मर्यादा का उल्लंघन कैसे कर सकता था। यह बात उस चातक पक्षी के बच्चे ने सुनी, सुनकर के उसकी आँखों में आँसू आये और वहाँ से वह तुरंत वापस अपने पिता के पास लौट जाता है। अपने पिता से कहता है—पिता जी आप ठीक कहते थे, पिता ने पूछा क्या पानी पीकर आ गये? नहीं पिता जी पानी तो नहीं पीया किंतु जो पीया वह पानी से कई गुना अच्छा था, वह अमृत ही था उससे मुझे इतनी तृप्ति मिली है कि शायद मैं अब आपसे कभी गड्ढे, समुद्रादि के जल को पीने की बात नहीं करूँगा। पिता ने कारण पूछा तो वह कहने लगा आज भी मनुष्यों में हमारा उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है, कि हम अपनी मर्यादा का पालन करने वाले हैं चाहे प्राण त्याग देंगे पर मर्यादा का उल्लंघन नहीं करेंगे। इंसान हमें अपना आदर्श मानता है। वह इंसान जो देवताओं के द्वारा भी पूजा जाता है, ऐसा इंसान भी हमें अपना आदर्श मानता है, सम्मान से हमारा नाम लेता है। यदि आज तक हमारी ऐसी मर्यादा बनी हुयी है तो मैं अन्य पानी पीकर के अपनी मर्यादा को खण्डित नहीं करूँगा।

महानुभाव! गुरु वही होते हैं जो मर्यादा का पालन करना सिखाते हैं। मर्यादा के बाहर आकर्षण तो है किन्तु सत्यता नहीं। गुरु तो सच्चाई और अच्छाई के पिण्ड होते हैं। मर्यादा के बाहर लगता है

कि कुछ लुभावना पदार्थ है, मन दौड़ के चला जाता है किन्तु प्रतिज्ञा से बँधे व्यक्ति का तन तो जाता ही नहीं, मन भी लौट के आ जाता है। मर्यादा के अंदर रहने वाला व्यक्ति सदा शोभा को प्राप्त होता है। मर्यादा के बाहर गया तो पतित हो गया। संसार में कुछ प्राणी ऐसे होते हैं जो अच्छी पेकिंग को देखकर के रीझ जाते हैं, कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो सामान को देखते हैं पेकिंग को नहीं। जो वस्तु को अंतरंग से देखता है, उसी दृष्टि को रखने की बात बताता है व दूसरों को प्रेरणा देता है कि बाहर की पेकिंग पर मत रीझो, अंतरंग के सत्व तक पहुँचो, गुणवत्ता तक पहुँचो, गुरुता को प्राप्त करो वह गुरु होता है। और जो बाहर के आकर्षण व सौन्दर्य में भ्रमित कर देता है वह गुरु नहीं होता है।

इसीलिये गुरु का आशय है जो मान-मर्यादा का पालन करना सिखाता है। गुरु का आशय होता है जो अपने साथ-साथ दूसरों को भी गुरु बना देता है। सदैव पारसमणि बनकर नहीं रहता, वह लोहे को सोना भी बनाता है। जल स्वयं में अकेला शुद्ध नहीं है वह गंदगी को साफ करके निर्दोष व निर्मल बनाता है। पुष्प स्वयं ही सुगंधित नहीं है वह अपनी सुगंधी बाहर देकर के दूसरों को भी सुगंधित करता है, सूर्य स्वयं प्रकाशमान नहीं है अन्य वस्तुओं को भी प्रकाशमान कर देता है। वृक्ष स्वयं ही छाया नहीं लेता अन्यों को भी छाया देता है। नदी स्वयं ही जल से युक्त नहीं है वह दूसरों को भी जल सोंपती है उनकी भी तपन को दूर करने वाली होती है। ऐसे ही जीवन में गुरु का महत्त्व होता है।

महानुभाव! आज हमने गुरुता के संबंध में जाना कि हमारे जीवन में भी गुरुता आये, गुणवत्ता आये तो निःसंदेह हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे। कई बार व्यक्ति छोटी-छोटी बातों से विचलित हो जाता है, छोटी बातों से विचलित होने वाला गुरु नहीं बन पाता, गुरु

के लिये बहुत गुरुता चाहिये।

''मैं अपनी खिलाफत की बातें भी सुनता हूँ तो बड़े इत्मिनान से। सोचता हूँ, इनकी बातों की जबाब की जबाबदारी वक्त पर है॥''

गुरु वास्तव में वही होता है जो जवाब जुबान से नहीं देता जीवन से देता है या समय आकर के दे जाता है। जो जुबान से जवाब देता है समझो अभी वह गुरु नहीं है। गुरु का जीवन बोलता है और लघु की जीभ बोलती है। जो चीज जीवन में बड़ी कठिनाई से अर्जित की जाती है, उसे आसानी से खोया नहीं जाता। वह प्राप्त रहेगी, तुम्हारे पास रहेगी, उसे कोई छीन नहीं सकता। और जो चीज सहजता में तुम्हारे पास आ गयी है वह ज्यादा समय तक टिक नहीं सकती। तुम विनम्र बनो, लघु बनो, लघु बनोगे तो ज्यादा समय तक लघु रह नहीं पाओगे गुरु बन जाओगे। जिसने बड़ी कठिनता से गुरुता प्राप्त की है उसकी गुरुता को कोई छीन नहीं सकता। एक लघु है तो लघु है अपने आपको गुरु दिखाने का प्रयास करे तो कभी जीवन में गुरु बन नहीं सकता। यदि वह लघु अपने से दुगुना लघु हो जाये, दोगुनी लघुता आ जाये तो वह गुरु हो जाता है दो ह्रस्व अक्षर मिलकर के दीर्घ हो जाते हैं।

या फिर गुरु बनने का एक और उपाय है, वह ये कि जो गुरुता से संयुक्त हैं उनके समीप में जाकर बैठ जाओ तो गुरु माने जाते हैं। जैसे सु अक्षर लिखा, यह अक्षर लघु है या गुरु? लघु है क्योंकि छोटे की मात्रा लगी है और उसको गुरु करना चाहते हैं तो एक उपाय तो ये है कि इसके साथ छोटा उ और जोड़ दो सु+उ=सू हो जायेगा अथवा दूसरा उपाय ये है कि इसे संयुक्त अक्षर के पहले रख दो। जैसे प्रभात है इसके आगे सु लगा दो सु+प्रभात=सुप्रभात तो सु की दो मात्रा हो गयी, प्र की एक मात्रा रहेगी। तो ऐसे ही जिसके अंदर गुरुता है उसके समीप में, चरणों में जाकर के बैठ जाओगे तो तुम्हारे

अंदर गुरुता का आविर्भाव हो जायेगा। और स्वयं लघु होते हुये अन्य कोई उपाय नहीं है कि हम गुरु बन जायें। या तो दुगुनी लघुता जीवन में आ जाये, तो गुरु बन सकते हैं, या लघु होते हुये संयुक्त गुरु चरणों में पहुँच जायें तो वह उदारता के साथ अपनी गुरुता हमें दे देगा और स्वयं लघु बन जायेगा।

सुप्रभात में 'प्र' अक्षर संयुक्त अक्षर था उसने अपने आगे वाले को बड़ा बना दिया, उसकी दो मात्रायें हो गयी। महानुभाव! जीवन में गुरुता ऐसे ही नहीं आ जाती, उसको प्राप्त करने के लिये तीन-चार बाते हैं। थोड़ा सा अपनापन, थोड़ा सा आदर, थोड़ी सी परवाह, थोड़ा सा समय और थोड़ी सी समझ। ये 5 चीज जो तुम्हारे हैं वे तुमसे चाहते हैं। ये 5 चीज तुम जिनको दे सकते हो तो पूरा संसार तुम्हारा है। पहली बात हर एक के प्रति अपनत्व की भावना–जो तुम्हारे हैं वे तुमसे धन-दौलत नहीं चाहते, जो तुम्हारा है वह तुमसे चाहता है कि तुम उसे अपना मानो। दूसरी बात जो तुम्हारा है वह तुमसे आदर चाहता है, अनादर व तिरस्कार नहीं चाहता। चाहे तुम शब्दों से आदर करो, चाहे आँखों से देखकर के आदर करो, चाहे मन के भावों से आदर करो यदि तुम सबका आदर कर सकते हो तो तुम्हारे अंदर गुरुता आ जायेगी।

सबके प्रति मैत्री भावना रख सकते हो, आदर व अपनापन रख सकते हो तो गुरु बन सकते हो। सबके हाथ जोड़ सकते हो तो पूरी दुनिया को जोड़ सकते हो। तीसरी बात-थोड़ी सी परवाह। अपनी परवाह जो करता है वह कभी गुरु नहीं बन सकता, जो दूसरों की परवाह करते हैं वह वास्तव में गुरु होते हैं। दूसरों के अंदर खोट को निकालने के लिये उसे डाँटना भी पड़े तब भी डाँटता है। डॉक्टर घाव को ठीक करने के लिये चीर-फाड़ भी करता है यदि वह रोगी की परवाह न करे तो चीर-फाड़ नहीं करेगा। चीर-फाड़ करने वाला

गुरु है वास्तव में उसके अंदर अपनत्व भावना है। अगली बात थोड़ा सा समय–अपनों को अपनों से अपेक्षा होती है। बरसों हो गये, अपने तो हमारे लिये सपने हो गये। मुद्दतें निकल गयी जिनको हम अपना कहते हैं क्या वो भी हमें अपना कहते हैं। कहते भी हों किन्तु मिले तो नहीं। ऐसा लगता है एक दिन भी न मिलें तो जैसे युग निकल गये हों। तो जो अपना है उसके प्रति समय देना भी जरूरी होता है।

यदि आत्मा के गुण हैं तुम उन्हें अपना मानते हो तो अपनी आत्मा को समय दो, आत्मा की अच्छाई की समीक्षा करो देखते रहो यदि अपनी आत्मा के गुणों को भी ढांक करके ताला बंद करके रख दोगे तो हो सकता है कुछ समय में वे गुण अवगुणों में बदल जायें। इसलिये उनको समय देना भी जरूरी है। अगली बात है समझ। अपनों को समझना बड़ा कठिन है। पराये को समझना तो सरल है। वास्तव में अपना कौन है, यथार्थ में अपना कौन है? पराया तो वह है जो सामने से ललकार करके बात करता है, पराया वह भी हो सकता है जो ड्रेस अपनत्व की पहनकर के आ जाये किंतु अंदर में घुस करके वार करे। तो अपना कौन है? जो अंतरंग व बहिरंग से अपना ही है उसे पहचान पाना बड़ा कठिन है। अपना वह नहीं जो केवल हमारी हाँ में हाँ मिला दे, अपना सच्चा वह है जो हमारी हाँ को भी ना में बदल दे और ना को भी हाँ में बदल दे।

अपना वह है जो हमारे हित को देखे हमारे मन के अनुसार न चले। क्योंकि हाँ में हाँ मिलाने वाले व्यक्ति तो बहुत होते हैं किन्तु जब अवसर आ जाता है, परीक्षा की घड़ी आ जाती है तो वे दूर खड़े दिखाई देते हैं।

हमारे मन के अनुसार काम कर रहे हैं तब तो हम आपके, आप हमारे हैं। जैसे कोई शिष्य कहे आप तो आज्ञा दो और आज्ञा दी तो हम पालन नहीं करेंगे, तो इसका आशय ये है कि वह अपने मन के

अनुकूल कार्य करना चाहते हैं, उस मनोनुकूल कार्य पर गुरु की मोहर ठुकवाना चाहते हैं। तो अपनापन वहाँ होता है जहाँ पर कोई प्रश्न चिह्न खड़ा नहीं होता, जहाँ पर केवल समर्पण होता है तो सब कुछ अच्छा-अच्छा दिखाई देता है और जहाँ पर हमारी दृष्टि में समीक्षा करने की सामर्थ्य आ जाती है तो समझ लेना चाहिये अभी हमारा समर्पण अधूरा है और बिना समर्पण के गुरुता का प्रादुर्भाव नहीं होता। गुरुता का प्रारंभ भी नहीं होता।

इसलिये जहाँ हमने गुरुता की शुरूआत की है वहाँ हमारा निःस्वार्थ, बिना शर्त का समर्पण हो। और ये पाँच चीज हम लेने की कामना करते हैं तो देने की भी कामना करें तभी गुरुता आती है। हम अपनत्व चाहते हैं तो अपनत्व दें, आदर चाहते हैं तो आदर दें, परवाह चाहते हैं तो परवाह करना सीखें, हम समय चाहते हैं तो समय देना भी सीखें, हम समझ दूसरों से अपेक्षित रखते हैं कि वह समझ से काम ले तो हम भी समझ से काम लेना सीखें। तभी हमारे जीवन में गुरुता आ सकती है।

महानुभाव! इस गुरुता के संबंध में संभव है कुछ बातें अच्छी लगी होंगी, उन्हें जीवन में जीवंत रूप देने का भी सम्यक् पुरुषार्थ करें तभी जीवन को सफल व सार्थक बना पायेंगे। आप सभी का मंगल हो, शुभ हो इन्हीं सद्भावनाओं के साथ....।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।
।।जैनं जयतु शासनं-विश्वकल्याणकारकं।।

सद्गृहस्थ के सद्कर्तव्य

महानुभाव! महापुरुषों की प्रवृत्ति होती है वे कभी निपट स्वार्थी नहीं बनते। जिसकी सोच संकीर्ण होती है, जिसकी क्रियाशीलता सिर्फ अपने शरीर को सुख देने की होती है, जिसके वचन सिर्फ स्वयं की प्रशंसा दूसरों की निंदा युक्त होते हैं ऐसे व्यक्तियों से इतिहास नहीं रचा जाता। इतिहास रचने वाले पुरुष वे होते हैं जो सिर्फ और सिर्फ अपने लिये नहीं जीते, पूरी मानव जाति के लिये या प्राणी मात्र के लिये जीते हैं। जिनके जीवन में संकीर्णता की कोई दीवार नहीं होती, जिनका जीवन बंधा नहीं वरन् सूर्य की तरह से होता है जो वसुधा के सभी पादपों को, सभी जन्तुओं को दिव्य प्रकाश देता है। महापुरुष का जीवन तो चंद्रमा की तरह से होता है जिसकी धवल शीतल ज्योत्सना दिनभर में तपे ताप से शरीर को शान्ति प्रदान करने में समर्थ होती है।

महापुरुष प्रतिकूलताओं में भी घबराते नहीं हैं। और सही बात कहें तो प्रतिकूलतायें महापुरुषों के जीवन में ही आती हैं। लघु पुरुषों के जीवन में कोई बहुत बड़ी प्रतिकूलतायें नहीं आती।

सम्पदां महता मेव, महता मेव चापदा।
वर्धते क्षीयते चन्द्रो न तारागण क्वचित्।।

सम्पत्ति भी महापुरुषों को प्राप्त होती है, ऐसी सम्पत्ति ऐसा वैभव जिसे देखकर के सुनकर के जगत चमत्कृत हो जाये, ऐसा वैभव

भोगने वाला महापुरुष भी पुण्यात्मा ही होता है। पुण्य के बिना उत्कृष्ट वस्तु का भोग संसार का कोई भी प्राणी कर नहीं सकता। यदि कहीं कदाचित् किसी जघन्य व्यक्ति को उत्कृष्ट वस्तु मिल जाये तो वह उसे भोग नहीं पायेगा। सौ-दो सौ रुपये का काम करने वाले मजदूर को यदि तुम शुद्ध हीरे की अंगूठी दे दो तो पहन नहीं पायेगा, छिपा कर के घर में रख लेगा। अच्छे कपड़े किसी गरीब को दे दो तो वह पहनेगा नहीं, कहेगा कभी किसी विशेष कार्यक्रम में पहनूँगा आज तो इन फटे कपड़ों से काम चल जायेगा। वह वर्तमान काल के लिये उसे नहीं रख सकेगा। वह भी सोच रहा है कि वर्तमान काल में मैं इतना पुण्यात्मा नहीं कि इसका भोग कर सकूँ। और तो और यदि पुण्य का उदय नहीं है, पाप का उदय चल रहा है तो खाद्य सामग्री फल और मिठाई भी जब तक स्वाद उसमें आ रहा है तब तक उसे न खायेगा, उसे बासी करके खायेगा। हीन पुण्यात्मा व्यक्ति उत्कृष्ट चीज का भोग भी नहीं कर सकता और उत्कृष्ट कार्य भी नहीं कर सकता। उत्कृष्ट पुण्यात्मा व्यक्ति के द्वारा कभी जघन्य कार्य होते नहीं है, और जघन्य का फल वह भोगता नहीं। उसके जघन्य कर्म उत्कृष्ट बन जाते हैं, पाप प्रकृतियाँ पुण्य में संक्रमित हो जाती हैं। कदाचित् कोई निधत्ति और निकाचित कर्म शेष रहें जो उदयावली में आयें और अपना फल दें तो वह महापुरुष-पुण्यात्मा पुरुष उसे भोगने से कतराता नहीं है। वह कहता है कि यह प्रतिकूलता भी मेरे उत्थान के लिये मेरे सामने उपस्थित हुयी है। इस प्रतिकूलता के बिना मेरा उत्थान संभव नहीं था इसलिये ये प्रतिकूलता मेरे सामने आयी।

बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ महापुरुष झेल जाते हैं, विपत्तियों को भी खेल जाते हैं, खेल की तरह से निकाल देते हैं। अधम पुरुष तो बड़ी विपत्ति का नाम सुनते ही मर जाते हैं और वे महापुरुष जिन्होंने

विपत्ति झेली उनका प्रसंग भी सुना दो तो लघुजन तो उसे सुनते-सुनते ही डर जाते हैं, काँप जाते हैं। कहीं भयानक युद्ध चल रहा है, जघन्य व्यक्ति तो वर्णन सुनकर ही काँप जायेगा, हो सकता है किसी की प्रतिकूलता का वर्णन कर दिया जाये तो उसकी आँखों से अश्रुधारा ही बहने लग जाये, किन्तु जो उत्कृष्ट पुरुष होता है, उसकी आँखों में से अश्रुधारा नहीं कर्मों की धारा बहती है, निकृष्ट पाप कर्म ऐसे भाग जाते हैं जैसे चोर चोरी करके ऐसे भागते हैं कि कहीं पैरों की आवाज भी न आ जाये। उदाहरण दिया है "वर्धते-क्षीयते चन्द्रो' चन्द्रमा ही कृष्ण पक्ष में घटता हुआ दिखाई देता है और चन्द्रमा ही शुक्ल पक्ष में बढ़ता हुआ दिखाई देता है। तारे सदा ही टिम-टिम करते रहते हैं न कभी बढ़ते दिखाई देते न कभी घटते हुये दिखाई देते।

समुद्र के पानी में ही वृद्धि होती है। चन्द्रमा ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है समुद्र का जल भी बढ़ता चला जाता है। नालों या गड्ढों के पानी में वृद्धि नहीं हो सकती है, पानी यदि ज्यादा हो जाये तो बहकर बाहर ही निकल जायेगा, सीमा का उल्लंघन कर जायेगा और थोड़ी सी धूप पड़ गयी तो शुष्क हो जायेंगे। किन्तु समुद्र को तो न कभी सूखते हुये देखा है और न कभी समुद्र को अपनी मर्यादा का उल्लंघन करते देखा वह सदैव मर्यादा में रहता है। ऐसे ही महापुरुषों के कृत्य होते हैं।

गृहस्थ वह कहलाता है जो घर में स्थित है, ऐसा आप लोग कहते हैं किन्तु हम मानते हैं जिसके हृदय में गृह स्थित है वह गृहस्थ है। रहने को तो हम भी आपके इस मकान में रह रहे हैं (यहाँ भवन/ धर्मशाला बनी है इसमें रह रहे हैं) तो हमको आप गृहस्थ थोड़े ही न कह दोगे। जिसके हृदय में गृह आदि परिग्रह विद्यमान है वह गृहस्थ है। गृहपना किसे कहते हैं? गृह अर्थात्

गृहणी, जब आप कहीं जाते हो तो सामने वाला आपसे पूछता है क्या आप अकेले आये हो? आप कहते हैं नहीं पूरा घर सहित आये हैं। पत्नी अगर साथ आयी है तो पूरा घर आ गया, बाल-बच्चे आ गये तो पूरा घर आ गया। तो वह घर है। हो सकता है आपका किराये का मकान है उससे तो आपका उतना राग नहीं है किन्तु घर में रहने वाले जो सदस्य हैं उनसे तो राग है। जीवन साथी-बच्चे आदि तो आपके अंदर बैठे हैं और आपने उनके लिये जो कुछ भी जोड़ा है उससे भी राग है, और जो कुछ भी छोड़ा है उसका प्रतिफल जो मिलने वाला है, उसके प्रति भी राग है।

तो गृहस्थ वह है जो घर में ही व्यस्त है, घर में ही रहकर के अपने जीवन को अस्त-व्यस्त कर रहा है। जो गृहस्थ अपने जीवन को व्यवस्थित कर लेता है वह सद्‌गृहस्थ हो जाता है, श्रावक हो जाता है, साधक हो जाता है। वह गृहस्थ अपने जीवन को व्यवस्थित कैसे करे, अपने जीवन को कैसे सम्हाले? कोई भी तरल पदार्थ है, उसको आपको किसी भी साँचे में ढालना है तो उस साँचे में डाल दो तो मनचाहा आकार निकलकर आ जाता है। माना कि शक्कर की चाशनी आपने बनायी, साँचे में डाला, यदि सुन्दर साँचे में डाला तो जमकर आकृति सुंदर आयेगी। चाहे मोम पिघलाकर कोई खिलौना बनाया, तो सुन्दर सा बनाया तो देखने में भी सुंदर लगेगा, उपयोग करने में भी अच्छा लगेगा किन्तु असुन्दर है तो अच्छे नहीं लगेंगे।

अपने जीवन को कैसे ढालना है, जीवन आपका जब तरल हो जाये तब आपको एक साँचे की आवश्यकता पड़ती है उस साँचे में ढाले बिना आपका जीवन व्यवस्थित बन नहीं सकता। आप जब चढ़ते हैं तो सीढ़ियों पर साइड से रेलिंग लगाते हैं वह क्यों लगाते हैं? दस सीढ़ी भी चढ़ती उतरती है तो रेलिंग लगायी कि दीवार से न टकरा जायें और नीचे न गिर जायें, इतना ही नहीं वह रेलिंग तुम्हें

सहारा भी देती है, आप अपना वजन उस पर रखकर के जाते हो। वह रेलिंग तुम्हारी व्यवस्था बना रही है, तो आपका जीवन भी व्यवस्थित हो सकता है, किन्तु कब जब अपने जीवन का एक व्यवस्थित सांचा या नक्शा आपके पास होना चाहिये।

मकान बनाने के पहले नक्शा बनाकर प्लेनिंग करते हैं या डायरेक्ट बना देते हैं? नक्शा बनाते हैं, किन्तु नक्शा बनाया प्लेनिंग भी कर ली तब भी मकान नहीं बनायेंगे कि कहीं हमारा नक्शा गलत तो नहीं है, इसलिये नक्शा पास कराते हैं। पास नहीं कराओगे तो वे (विकास प्राधिकरण) (Development authority) बनने नहीं देंगे, वे अधिकारी जानते हैं कि तुम्हारा मकान कैसे बनना चाहिये। कितने प्रतिशत जगह तुम्हें खाली छोड़नी ही पड़ेगी, कितनी ऊँची बिल्डिंग बना सकते हो? कितनी गहरी नींव खोदनी है? आर्केटेक्ट खोजना पड़ेगा, पिलर कितना मोटा खरीदना है ''9x9 का या 12x12 या इससे भी अधिक इंच वाला, कितना मोटा बीम होना चाहिये, कितना मोटा लेण्टर होना चाहिये आदि-आदि सब कुछ लिखित में होना चाहिये, इसके बिना भवन बना नहीं सकते।

मैं आपसे एक बात पूछूँ? जब छोटा सा मकान बनाने के पहले नक्शा पास कराते हो तो अपने जीवन का नक्शा पास कराने किसी गुरु के पास क्यों नहीं जाते हो। इतना बड़ा जीवन जीना होता है तो उसका नक्शा बनाकर के किसी गुरु से पास क्यों नहीं कराते? कि महाराज! हमने अपने जीवन का नक्शा ऐसा बनाया है और हम अपने जीवन को इसके अनुसार ढालना चाहते हैं कृपया आप इस नक्शे का संशोधन करें। यदि वह नक्शा संशोधित नहीं है तो फिर अभी आपका जीवन अंधकार में है। किसी गुरु ने मोहर ठोंक दी कि चिंता न करो, बस अपना कार्य करो तो तुम्हारा जीवन सुखी हो जायेगा। आपको कहीं जाना हो, रास्ता यदि संदिग्ध हो तो आप चार लोगों से

पूछते हो कि भैया! ये रास्ता अमुक जगह ही जा रहा है, कहीं अन्य तो नहीं! भले ही 100 मी. पर कोई दूसरा रास्ता जाता हो तो आप 100 मीटर का चक्कर नहीं बनाना चाहते अरे रास्ता भटक गया। व्यर्थ में जब चार कदम भी नहीं चलना चाहते तो जीवन में यह अंधी दौड़ क्यों? क्या तुम्हें अपने ऊपर इतना नाज आ गया है कि जीवन का नक्शा पास कराये बिना तुम इतना बड़ा जीवन जी लोगे? अनंत जीवन भी व्यतीत कर दिये और नक्शा पास नहीं कराया, सदा स्व मनोनुसार जीवन का मार्ग या महल बनाते रहे तो कभी तो जल्दबाजी में नींव नहीं खोदी, तो कभी पिलर खड़े नहीं किये, तो कभी दीवारें तो कमजोर और छत बहुत मजबूत डाल दी। और कभी तो भवन बन ही नहीं पाया बनने के पहले ही धराशाही हो गया, कभी कुछ हुआ कभी कुछ। आप स्वयं सोचो क्या नक्शा पास कराना जरूरी नहीं है।

नक्शा भी किसी विश्वस्त इंजीनियर से पास कराओ तो ठीक है क्योंकि तुम्हें जिस डॉक्टर पर विश्वास होता है, तुम उसी के पास बार-बार क्यों जाते हो? डॉक्टर तो सब हैं तुम सबके पास क्यों नहीं जाते? जिससे तुम्हारा परिचय है, विश्वास है उसी के पास जाते हो तो जीवन का नक्शा भी किसी अच्छे इंजीनियर से पास करालो। यदि तुम्हारा जीवन, अस्वस्थ हो रहा हो तो किसी अच्छे डॉक्टर के पेशेंट बन जाओ। यदि जीवन में कोई केस चल रहा हो, द्वन्द चल रहा हो बाहर का केस नहीं, शरीर संबधी केस नहीं वरन् जीवन में, आत्मा में कोई द्वन्द चल रहा हो तो अपना केस किसी अच्छे वकील से हल कराओ और जजमेन्ट भी लेना हो तो किसी ऐसे जज से लेना जो निष्पक्ष तुम्हें निर्णय दे सके।

महानुभाव! उस जीवन की कुछ आउट लाईन भी तो होना चाहिये। जो अपने जीवन का कोई लक्ष्य निश्चित नहीं करता, चला

जा रहा है, चला जा रहा है रथ्या पुरुष की तरह से, पागल व्यक्ति की तरह से, महापापी की तरह विक्षिप्त व उन्मत्त की तरह से। पूछा कहाँ जा रहे हो? कहीं नहीं, क्या कर रहे हो? कुछ नहीं, क्या लाये? कुछ नहीं। तो जब कुछ पता ही नहीं तो शून्य बटा शून्य ही रहा। व्यक्ति चार कदम भी जा रहा है पूछा कहाँ जा रहे हो तो बता दो वहाँ जा रहा हूँ, क्या कर रहे हो मैं अमुक कार्य कर रहा हूँ। आप कोई भी क्रिया निष्प्रयोजन नहीं करना चाहते तो फिर इतना बड़ा जीवन किस प्रयोजन से जी रहे हो? क्या है आपके जीवन का लक्ष्य! क्या है आपकी जिंदगी का मार्ग? और क्या-क्या जिंदगी में आने वाला है क्या कभी इसकी समीक्षा की है? इतनी बड़ी जिंदगी है इसमें न जाने कौन-कौन से व्यवधान आ सकते हैं। जिंदगी के मार्ग में कौन सी पुलिया संकीर्ण है, कहाँ से मार्ग टूटा हुआ है जिंदगी के रास्ते में कहाँ पर घनघोर अंधकार मिलेगा, कहाँ पर जंगल ही जंगल मिलेगा, कहाँ पर तीक्ष्ण धूप मिलेगी और कहाँ पर कड़कड़ाती सर्दी मिलेगी और कहाँ पर मूसलाधार वर्षा मिलेगी, वहाँ पर कौन सी आपत्ति-विपत्ति संकट आ सकते हैं क्या इन सबका कभी आपने ख्याल किया है?

ख्याल तो तब करें, जब हमने कोई लक्ष्य बनाया हो। आप किसी से पूछ भी लें, कि भाई! रास्ते में कौन-कौन से व्यवधान आयेंगे, तो वह पूछेगा पहले यह बताओ कि आप कहाँ जा रहे हो रास्ता कैसा है, अरे कहाँ का। मंजिल पता नहीं और रास्ता बता दें। ऐसा कैसे हो सकता है। वह जिससे पूछा है वह यही कहेगा या तो आपका माइन्ड डिस्टर्ब है या फिर ज्यादा पीकर के आ गये। और यदि तुमसे ज्यादा मैंने बात की तो हो सकता है फिर मैं भी तुम जैसा ही हो जाऊँ। एक व्यक्ति ने कहा मुझे यहाँ से सैक्टर 27 के मंदिर जाना है मैं कितनी देर में पहुँच जाऊँगा, सामने वाला (जिससे पूछा था) उसने

कहा आगे बढ़ो.....। उसने दुबारा पूछा यह सोचकर कि शायद इसने मेरा प्रश्न अच्छे से सुना नहीं। भाई साहब! मैं ये पूछ रहा हूँ। कि यहाँ से सेक्टर 27 का मंदिर कितनी दूर है, और मैं कितनी देर में पहुँच जाऊँगा, उसने फिर कहा–आगे बढ़ो।

अब अन्य दूसरा व्यक्ति वहाँ कोई दिखा नहीं जिससे वह पूछ सके, तो तीसरी बार हिम्मत करके पुनः पूछ ही लिया, कि भाई! मुझे सेक्टर 27 के मंदिर जाना है। मैं कितनी देर में पहुँच जाऊँगा, तीसरी बार भी उसने यही उत्तर दिया कि आगे बढ़ो। वह क्रोध के साथ अपने कदम आगे बढ़ाता है। उस व्यक्ति ने कहा–ठहरो! तुम्हें लगभग 35-40 मिनट लगेंगे। वह आश्चर्य करता है मैंने तीन बार पूछा तब तो तुमने उत्तर दिया नहीं, अब जब मैं चलने लगा तब तुम कहने लगे। 35-40 मिनट में वह बोला-दरअसल में बात ये है कि आपने अपना टारगेट (target) तो बता दिया पर आपने अपनी चाल नहीं बताई। जब आपने अपनी चाल दिखा दी (बता दी, तो इस चाल से चलोगे तो 35-40 मिनट में पहुँच जाओगे और तेज कर दोगे तो 30 मिनट में भी पहुँच सकते हो, और धीमे चलोगे तो 50 मिनट भी लग सकते हैं।

तो आपके जीवन का टारगेट होने के साथ-साथ फिर आपकी स्पीड भी तो होना चाहिये, फिर आपको बतायेंगे कि व्यवधान कैसे-कैसे आयेंगे। एक-एक व्यवधान को निपटाने में पूरी जिंदगी भी लग सकती है, अनेक जिंदगी भी लग सकती हैं और एक अन्तर्मुहूर्त भी लग सकता है। अनेक व्यवधान एक अन्तर्मुहूर्त में भी अलग किये जा सकते हैं और एक व्यवधान को दूर करने में अनेक अन्तर्मुहूर्त नहीं अनेक जिंदगी भी लग सकती हैं। तो सबसे पहली बात तो यही है कि हम एक निश्चित लक्ष्य बनाकर चलना प्रारंभ करें। लक्ष्य विहीन यात्रा निष्फल होती है, निरर्थक होती है और

कभी-कभी तो अनर्थकारी भी होती है इसलिये लक्ष्यविहीन यात्रा न करें।

हम आपकी सीधी-सीधी बात करते हैं कि आप गृहस्थ हैं, गृहस्थ जीवन को कैसे जीयें जिससे जीवन में कुछ तो सुख शांति की अनुभूति हो सके। जीवन में कुछ तो ऐसा हो जिसे अभी तक प्राप्त नहीं किया। हमारा जीवन हमें वरदान स्वरूप प्रतिभासित हो अभिशाप न लगे। गृहस्थ अवस्था को छोड़ नहीं सकते, कर्तव्यों से मुख मोड़ नहीं सकते, रिश्ते-नाते संबंध तोड़ नहीं सकते और आपके शिष्यों की तरह से नाता जोड़ नहीं सकते अब बताईये हम क्या करें, इस गृहस्थ जीवन में रहते हुये, कैसे क्षणभर के लिये सुख शांति का अनुभव कर सकते हैं। ऐसा ही है ना तब दिगंबर जैनाचार्य तिरुवल्लुवर स्वामी तमिलनाडु में जन्मे एक महान् आचार्य हुये। बहुत ही निस्पृह, अत्यंत संतोषी, भद्र परिणामी, सदाचारी, सरलता सहजता की प्रतिमूर्ति, न्याय और ईमानदारी उनकी रग-रग में भरी थी, संभव है ऐसी ईमानदारी और न्याय प्रियता, और इतनी निष्ठा व सत्यवादिता, निर्भीकता शायद किसी साधक में भी न मिले किन्तु उस समय जब वे गृहस्थ थे, तब की बात बता रहे हैं।

वे स्वयं परिश्रम करते और परिश्रम से जो कपास आती थी, उसको अन्य लोग चरखे से चलाकर के धागा बनाते, उसके माध्यम से वे कपड़ा बनाते थे। आवश्यकतानुसार छोटे-बड़े वस्त्र, ओढ़ने-बिछाने लायक वस्त्र बनाते और उस कपड़े का मूल्य उतना ही लेते जितना उसका मूल्य है, उसमें उतना परिश्रम जोड़ते जितना है। यदि मैंने आज चार घंटे मेहनत की तो मुझे दिन में एक बार भोजन करना है, जिस दिन 8 घंटे मेहनत करूँगा उस दिन मैं दो बार भोजन ग्रहण करूँगा। ऐसा परिश्रम वह अपने मूल्य में जोड़ते थे। और जब बेचने के लिये जाते, किसी दुकानदार के पास भी जाते तो कहते मेरा एक

दाम है इतने में दूँगा इससे कम में नहीं दूँगा। फिर सामने वाला कहता था कि कम में तो नहीं देगा और यदि मैं इससे ज्यादा दूँगा तो। तो वे हाथ जोड़कर यही कहते कि मैं एक पैसा भी ज्यादा नहीं लूँगा। एक बार परीक्षा के लिये किसी बालक को उसके यहाँ भेज दिया कि देखें मूल्य कम लेता है या अधिक कभी किसी अंजान व्यक्ति को भेज दिया, कभी कोई सयाना व्यक्ति आ गया कि भाई कुछ मूल्य कम में दे दे, पर वे तो एक दाम पर ही अड़े रहे। लोगों में उनकी बड़ी छाप थी।

वे कम्बल भी बनाते थे, एक श्रेष्ठी जो दुकानदार था, उसको उन्होंने कम्बल दिये, श्रेष्ठी ने कहा—पैसा आज नहीं है तुम तो यहाँ आते रहते हो, मैं फिर दे दूँगा। वे बोले इस ग्राम में मैं अगले सप्ताह आऊँगा मैं छः दिन अलग-अलग गाँवों में जाता हूँ। ठीक है अगले सप्ताह दे दूँगा। सात दिन बाद वे पहुँचे, श्रेष्ठी ने कहा—भाई! आज तो नहीं अगले सप्ताह दे दूँगा। उन्हें कष्ट हुआ क्योंकि वे ज्यादा अमीर तो थे नहीं, पर सहन कर लिया कोई बात नहीं जब वे तीसरे सप्ताह पहुँचे, तो उस श्रेष्ठी व्यापारी ने कहा—अरे! क्या बात है, तुम बार-बार आ जाते हो। वे बोले मैंने आपको कम्बल दिये थे ना? उसके पैसे दे दीजिये मैं नहीं आऊँगा। श्रेष्ठी बोला-पैसे-कैसे पैसे? कैसा कम्बल? मैं तुमसे कम्बल क्यों लूँगा, और लिया भी होगा तो मैंने पैसा दे दिया होगा, मैं किसी के साथ उधारी नहीं रखता हूँ, मेरे पास क्या कमी है पैसे की। अब तो बड़ा मुश्किल हो गया।

उन्होंने कहा—सेठ जी! आप यह ठीक नहीं कर रहे, ठीक है, मैं संतोष कर लूँगा मेरे भाग्य में नहीं है, फिर भी न्याय-न्याय है, मैं अन्याय करता भी नहीं और अन्याय सहन भी नही करूँगा, मुझे न्यायपूर्वक मेरा पैसा चाहिये। वे अपनी फरियाद लेकर राजा के दरबार में पहुँच गये, राजा ने सारी बात सुनी, और सेठ को भी

बुलाया, सबने यही कहा—कि राजन् इस व्यक्ति के बारे में हमने सुना है कि ये बहुत ईमानदार है, यह झूठ नहीं बोल सकता। इसने कम्बल अवश्य ही दिये होंगे। सेठ भी वहाँ आया, उसकी भी अच्छी ख्याति थी, पूछा—सेठ जी! क्या बात है? सेठ बोला महाराज! जहाँ तक मुझे ख्याल है मैंने इससे कम्बल लिये नहीं, यदि कहता है तो मुझे क्या फर्क पड़ता है, मैं इसके पैसे दे देता। दे देता मतलब? किन्तु बात ये है कि लिये या नहीं लिये, और लिये भी होंगे तो मुझे लगता है कि मेरी दुकान में आग लग गयी, मेरा सारा माल जल गया, इसलिये आप बताएँ मैं पैसा कहाँ से दूँ?

उस व्यक्ति ने हाथ जोड़ लिये, महाराज! यदि मेरे कम्बल जल गये, तो मुझे पैसा नहीं चाहिये, किन्तु मेरे कम्बल नहीं जले हैं। उस सेठ ने कहा—जल गये। चार व्यक्ति गवाह के रूप में सेठ ने खड़े कर दिये कि कम्बल जल गये। उस व्यक्ति ने कहा—आपकी पूरी दुकान जल गयी हो मैं मान सकता हूँ किन्तु मेरा कम्बल नहीं जल सकता मैं आपकी इस बात का विश्वास नहीं करूँगा कि मेरा कम्बल जल गया। अब राजा को भी लगा कि कपड़ा तो कपड़ा है जल सकता है, भाई ऐसे तुम कैसे कह सकते हो? वह बोला- मुझे विश्वास है, मेरे धन में किंचित् भी बेईमानी नहीं है 100% ईमानदारी है और ईमानदारी कभी किसी की जल नहीं सकती। सेठ ने कहा—महाराज! ये लंबी-लंबी बातें करता है, इसके वस्त्रों को अभी आग लगाकर देखो, अभी जलता है इसके सामने। वह भी बोला-ठीक है महाराज! लगाओ आग।

दरबार जो खचाखच भरा था, सारा दृश्य देख-सुन रहा था, उसके वस्त्र लिये और कुछ पेट्रोल डालकर आग लगा दी, और धूँ-धूँ अग्नि जलने लगी। सब लोग देखने लगे, वह व्यक्ति शांत खड़ा हुआ था, जब अग्नि जलकर के शांत हो गयी तो वह उस

स्थान पर जाता है और वस्त्रों को झटकार कर उन्हें उठा लेता है, कहता है, महाराज अग्नि से केवल पेट्रोल जला था मेरे वस्त्र ज्यों के त्यों सुरक्षित हैं। ऐसे थे वे तिरुवल्लुवर आचार्य। राजा ने कहा धन्य है इनकी सत्यवादिता, ईमानदारी। पुनः उन्होंने राज्य का त्याग करके संन्यास को स्वीकार किया, जैनेश्वरी दीक्षा को स्वीकार किया और साधना की। साधना के साथ उन्होंने तिरुक्कुरल काव्य ग्रंथ लिखा वह तमिल भाषा में ही लिखा, जिसे वैदिक परम्परा के लोग पाँचवां वेद कहते हैं। जैनों ने तो उसे बाद में स्वीकार किया, उनके उस ग्रंथ का जो मुख्य मंगलाचरण है उसमें ऋषभ देव को नमस्कार किया।

उस ग्रंथ का अनेक भाषाओं में अन्वयार्थ हुआ। उसी तिरुक्कुरल काव्य का एक काव्य जिसमें उन्होंने सद्गृहस्थ के लिये क्या कर्तव्य कहे उन्हें यहाँ बताते हैं।

गृहीणां पंचकर्माणि, स्वोन्नतिर्देव पूजनम्।
बंधुसहाय्य-मातिथ्यं पूर्वेषां कीर्तिरक्षणम्॥

जो गृहस्थ हैं उन्हें पाँच कर्म करने चाहिये, हमेशा पाँच बातों का ध्यान रखना चाहिये। सभी आचार्यों की सद्गृहस्थों के लिये अलग-अलग अपेक्षा है। किसी आचार्य ने श्रावकों के लिये षट् आवश्यक कर्तव्य कहे, किसी ने चार कहे, किसी ने दो कर्तव्य कहे, किन्तु उन्होंने पाँच कर्तव्य कहे। प्रथम कर्म कहा–सोन्नति-प्रत्येक सद्गृहस्थ को अपनी उन्नति का विचार करते रहना चाहिये। उन्नति का आशय ऐसा नहीं लेना कि मेरे पास धन की वृद्धि होती चली जाये। सोन्नति का आशय होता है कि मेरे परिणामों में उत्तरोत्तर निर्मलता होती चली जाये,। जैसे बालक का शरीर क्रमशः बढ़ता जाता है आयु, बुद्धि बढ़ती जाती है, वैसे ही परिणामों में निर्मलता भी बढ़े। वैसे-वैसे सम्यक्त्व निर्मल हो, ज्ञान की वृद्धि हो, संयम की वृद्धि हो, जीवन में आनंद की वृद्धि हो, उन्नति हो। न केवल धन की उन्नति सबसे

पहले आपका पुरुषार्थ है–धर्म, उस धर्म की उन्नति हो।

जब धर्म का अंकुश अर्थ पर लग जायेगा तो अन्याय न हो पायेगा, धर्म का अंकुश लग जायेगा तो काम सेवन भी करोगे तो अवैध रूप से न करोगे। धर्म का अंकुश लगेगा तो आपका मोक्षमार्ग प्रशस्त हो जायेगा और धर्म का अंकुश नहीं लगा, धर्म की छलनी में छानकर आपने अर्थ व कामसेवन नहीं किया तो समझ लेना वह आपके अशुद्ध हैं। और धर्म की छलनी में से निकलकर के आये हैं तो जो शेष बचेगा तो वह मोक्ष की पात्रता से युक्त ही शेष बचेगा। तो प्रथम कर्म कहा–अपनी उन्नति करो, अपनी जाति की उन्नति करो, अपने कुल की वृद्धि करो। कुल-जाति-धन सब की वृद्धि करो किन्तु मन की निर्मलता की वृद्धि भी करना चाहिये। अपनी आत्मा में ज्ञान, श्रद्धा, संयम की वृद्धि भी करना चाहिये। ये भी आवश्यक है तभी पूर्ण उन्नति है, केवल उन्नति शब्द को पकड़ लिया और धन-वैभव की उन्नति में ही लगे रहे। एक से दो मकान हो गये, एक से चार दुकान हो गयीं, ये केवल उन्नति नहीं। सबसे पहले स्वात्मोन्नति अपनी आत्मा की उन्नति होना चाहिये, बाद में बाहर की उन्नति हो तो होने दो, न हो तो भी इतनी चिंता की बात नहीं है।

द्वितीय कर्म- उस उन्नति के लिये कारण है–देवपूजनम् जो वीतरागी-सर्वज्ञ-हितोपदेशी, जिनमें दिव्यता है, अर्थात् जिनकी आत्मा में दिव्यता आ गयी है, केवल शरीर में ही दिव्यता नहीं है, जिनकी आत्मा में अलौकिक-असाधारण-स्वाभाविक गुण उत्पन्न हो गये हैं जिनसे आत्मा दीप्तिमान हो गयी है। ऐसी दैदीप्यमान आत्मा उस देव की पूजन करनी चाहिये। उनकी पूजन करने से आत्मा को शक्ति मिलती है, आत्मा को बल मिलता है, शरीर को भी बल मिलता है, पुण्य मिलता है, तभी स्वोन्नति संभव है। देवपूजन के बिना कोई भी

व्यक्ति आत्मोन्नति नहीं कर सकता, न किसी ने की है, न कर सकता है न भविष्य में कोई कर सकेगा। वह देवपूजन कब करना है? जब उस दिव्यता के प्रति श्रद्धा तुम्हारे मन में गहरी हो जाये उस समय ही अपनी श्रद्धा का अर्घ्य चढ़ा देना चाहिये। चाहे दिन हो या रात, सुबह हो या शाम उस ही समय उस दिव्य देवता के चरणों में, जो देवता तुम्हारे हृदय में विराजमान है अर्घ्य के रूप में अश्रु की दो बूंद से उनके चरणों का प्रक्षालन कर दे। जब तक श्रद्धा अंदर गहराती नहीं है, अंदर पश्चाताप की अग्नि से आपका हृदय शुद्ध नहीं होता है, जब तक मिथ्यात्व रूपी मल, कषायें आपके मन से निकलती नहीं हैं तब तक सर्व पूजन-स्तुति अधूरी ही हैं।

देवपूजन करना श्रावक का प्रमुख कर्तव्य है। जिसका जैसे मन लग रहा हो, अभिषेक करके, पूजा करके, स्तुति करके, परिक्रमा लगा के लग रहा है, जाप लगा के लग रहा है जैसे भी मन लगे विशुद्धि बढ़े जिससे शक्ति मिल रही है वह करो। जरूरी नहीं है कि सभी व्यक्ति जवाहरात की दुकान ही खोलें जिसकी जो क्षमता है वह खोले। कोई पान की दुकान भी खोल सकता है, कोई गल्ले की या भूसे की या परचून आदि किसी की भी दुकान खोल सकता है। सबकी अलग-अलग पात्रता है, उससे वह कमा रहे हैं और संतुष्ट हो रहे हैं। तो जिस काम से संतुष्ट है वह ठीक है। तुम्हें किससे संतुष्टि हो रही है, तुम्हारी आत्मा में दिव्यता का आविर्भाव कैसे हो रहा है वह तुम जानो।

तीन लोक के नाथ का स्पर्श करके तुम्हारी विशुद्धि ज्यादा बढ़ रही है तो अभिषेक कर लो, पूजन करके बढ़ रही है तो पूजन कर लो, उनका ध्यान लगाकर बढ़ रही है तो ध्यान लगा लो, गुणोत्कीर्तन करो चालीसा पढ़ो, स्तुति करो, वंदना करो जितनी भी करो, आपकी आत्मा में दिव्यता का आविर्भाव जैसे हो रहा है वैसे करो।

आगे कहा जब तुमने स्वोन्नति का संकल्प लिया कि उन्नति करना ही करना है, उसके लिये शक्ति देवपूजन करके प्राप्त करना है। अब तुम्हें शक्ति भी प्राप्त हो गयी, तो अब क्या करना है। बंधुसहाय–अपने भाई बंधुओं के प्रति कर्तव्य का पालन करो। उनकी सहायता करो। अपना बंधु कोई गरीब है तो उसकी धन से सहायता करो, मन से टूटा हुआ है तो उसे मन से सहयोग प्रदान करो, आपके वचनों के संबोधन की आवश्यकता है तो अपने वचनों से संबोधन दो। और उसे अन्य प्रकार की समाज में आवश्यकता है तो वैसा सहयोग करो।

महाराज अग्रसेन के बारे में एक प्रसंग सुनने में आता है। महाराज अग्रसेन ने एक घोषणा करायी थी, कोई भी व्यक्ति अपने नगर में आता है, सभी व्यक्ति उसे एक-एक ईट देंगे और 1-1 पैसा देंगे। यह आदेश था। क्यों? क्योंकि एक-एक ईंट देने से और 1-1 पैसा देने से कोई व्यक्ति गरीब नहीं हो जायेगा किन्तु आने वाला व्यक्ति निराकुलता के साथ रह सकेगा। बाद में वह व्यक्ति भी जब कोई नया आयेगा तो उसे एक ईट व एक पैसा देगा। तो यह सहयोग की भावना होना चाहिये।

कुछ व्यक्ति नित्य मंदिर में शाम को सामूहिक स्वाध्याय करते थे प्रातःकाल अभिषेक करते थे। 20-30 व्यक्तियों का वह समूह था। उनमें से एक व्यक्ति बड़ा निर्धन था, अपनी गरीबी को छिपाता था, एक दिन तो बड़ा मुश्किल हो गया उसके घर में खाने के लिये कुछ भी नहीं। सुबह से भूखा-प्यासा, व्यापार सब चौपट हो गया। जिन पर पैसा उधार था, उनसे पैसा आ नहीं रहा, जिनका देना है वे परेशान कर रहे हैं। दिनभर भूखा रहा, घर में चूल्हा भी नहीं जला। किन्तु सुबह अभिषेक करने भी आया और शाम को स्वाध्याय में भी आया। स्वाध्याय में आया, सोच रहा था मैंने सब जगह पैसा माँगा पर

कहीं से मुझे पैसा नहीं मिला, मैंने उन्हें वचन भी दिया था कि मैं उनका पैसा लौटा दूँगा। आज मेरे पापकर्म का उदय है, कल पुण्य का भी उदय आयेगा, मैं मेहनत करूँगा। किन्तु किसी ने मेरी सहायता नहीं की।

जो व्यक्ति मेरे साथ स्वाध्याय में भी आते हैं उनसे भी मैंने अकेले-अकेले में बात की उन्होंने भी मेरी सहायता नहीं की, यही कहा कि वे भी अपनी परेशानी में चल रहे हैं। सुबह अभिषेक का समय था उनके समूह में एक सेठ जी भी थे, वे भी आते थे, सुबह जब वे आये तो उन्होंने अभिषेक के वस्त्र पहनने से पूर्व अपना कुर्ता उतारा और खूँटी पर टांग दिया। और उसी की जेब में अपनी घड़ी व चेन भी रख दी। अभिषेक के बाद जब वे जाने लगे तब उन सेठ जी ने देखा कि कुर्ते में घड़ी तो है पर चेन नहीं है। वे कहने लगे यहाँ बस हम ही थे, अन्य कोई आया नहीं तो चेन कहाँ गयी। शंका किस पर की जाये, कोई बात नहीं चेन गयी तो जाने दो।

वह व्यक्ति घर गया और पत्नी से कहा मैं ये चेन ले आया हूँ। पत्नी ने कहा ये तुमने ठीक नहीं किया। मेरा मन इसके लिये गवाही नहीं दे रहा पति ने कहा–मैं संकल्प लेकर के आया हूँ जब मेरा व्यापार ठीक हो जायेगा तब मैं अपना अपराध कबूल करूँगा और चेन वापिस लौटा दूँगा। अभी उस चेन को गिरवी रख कर धन प्राप्त कर मुझे काम करना है। पत्नी ने कहा–फिर भी ये उचित नहीं है। मेरा मन इसके लिये गवाही नहीं देता वह बोला- मैं भगवान् के समक्ष संकल्प लेता हूँ, मेरे मन में बिल्कुल भी पाप नहीं है मुझे कुछ भी रास्ता नहीं सूझा मैंने चोरी के भाव से चोरी नहीं की, किन्तु जब आज मेरा जीवन इस कगार पर आ गया कि या तो हम सब जहर खाकर के मर जायें अन्यथा आगे यदि जीना है तो मुझे कार्य करना ही पड़ेगा। पत्नी शांत हो गयी।

व्यक्ति चेन लेकर गिरवी रखने के लिये चला और धन लाकर व्यापार प्रारंभ किया, मेहनत की। धर्म-ध्यान भी नहीं छोड़ा प्रतिदिन अभिषेक व स्वाध्याय में जाता। किन्तु उसने भोजन तो एक बार करना प्रारंभ कर दिया किन्तु उत्साह के साथ व्यापार प्रारंभ कर दिया। दो-चार छः माह में वह इस स्थिति में पहुँच गया कि चेन को गिरवी से उठा सके। वह चेन ले आया और उन्हीं सेठ जी के पास पहुँचा साथ में पत्नी भी गयी। आँखों में आँसू भी भरे थे, दोनों अपराधी की तरह से सेठ के चरणों में हाथ जोड़कर बैठे थे। कहने लगे सेठ जी! आप हमें माफ तो शायद नहीं करेंगे किन्तु हम तो सजा पाने के लिये आये हैं, आपकी चेन मैंने चुरायी थी। आपके साथ प्रतिदिन पूजा-स्वाध्याय करने वाला किन्तु मेरे पास अन्य कोई चारा नहीं था। अब मैं यह चेन आपको वापस करने आया हूँ। इस चेन के माध्यम से धन अर्जित कर हम चार प्राणियों का जीवन बच गया। आप जो सजा देना चाहें सो दे सकते हैं।

सेठ-जी ने कहा–इसमें भूल तुम्हारी नहीं है, भूल मेरी है क्योंकि मेरे पास भी तुम आये थे यदि मैं उस समय तुम्हारी सहायता कर देता तो शायद तुम्हें यह काम न करना पड़ता मेरी चेन तुमने चोरी की, और मैं समझ भी गया था किन्तु मैंने इसलिये नहीं कहा कि यदि हम ही आपस में संदेह करेंगे तो उचित नहीं। निःसंदेह मुझे अपने अपराध का बोध हुआ, तुम्हें अपने अपराध का बोध हुआ। तुम्हें तो दुनिया कह सकती है चोर किन्तु मुझे कोई नहीं कहेगा जब कि मैं सबसे बड़ा चोर हूँ तुम्हारी सहायता करने के योग्य होता हुआ भी हम में से किसी ने तुम्हारी सहायता नहीं की।

महानुभाव! आचार्य भगवन् कह रहे है–बंधु सहाय-बंधुजनों की सहायता करना भी एक सद्गृहस्थ का कर्तव्य है। कई जगह ऐसा देखा जाता है कि एक भाई तो अरबपति है और दूसरा भाई बेचारा

दर-दर भटक रहा है। थोड़ी सी भी सहायता कर दे तो बेचारे की नैया पार हो जायेगी। ठीक है उसके पापकर्म का उदय है किन्तु वह कहता है चाहे मैं अपने धन को कुयें में डाल दूँगा पर इसको नहीं दूँगा। इतना बैर बाँधकर रखते हैं। अरे! अपने बंधुओं से इतना बैर क्यों? वह भी तो मानव है, तुम्हारा भाई है, तुम्हारे समाज का व्यक्ति है इतनी कषाय क्यों, उसके प्रति इतनी प्रतिस्पर्धा क्यों? सहायता करने की भावना रखो यदि तुम समर्थ होने पर दूसरों की सहायता करने की भावना रखोगे तो निश्चित मानिये आपको जीवन में कभी दूसरों की सहायता लेने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। जो दूसरों की सहायता नहीं करते हैं अवसर पर उन्हीं के जीवन में कभी ऐसा दिन आ जाता है कि उन्हें अपनी सहायता के लिये दूसरों के दर पर जाकर खड़ा होना पड़ता है।

चौथा कर्तव्य उन्होंने कहा–'आतिथ्यं' जो भी द्वार पर अतिथि आ जाये, बस ये सोच लेना कि मेरे यहाँ कोई अतिथि नहीं भगवान् आये हैं। 'अतिथि देवो भव' इनसे बड़ा मेरे लिये कोई नहीं है। जिनकी मैं मंदिर में पूजा करता हूँ वे खड़े होकर आ नहीं सकते, उन्होंने अपने प्रतिबिम्ब को मेरे यहाँ भेजा है और जब आये हैं तो चाहे मैं भले ही भूखा रहूँ किंतु अपने द्वार से इन्हें भूखा नहीं लौटा सकता। इनके लिये यथायोग्य मुझे पहले भोजन देना है, अपनी थाली में से पहले इन्हें देना है उसके बाद बचेगा तब मुझे प्रसाद ग्रहण करना है। तो अतिथि सेवा के लिये सदा मन तैयार रहना चाहिये। ये नहीं सोचो कि मैं समर्थ कहाँ हूँ। अरे जब चना बेचने वाला व्यक्ति चौका लगा सकता है, एक फेरी लगाने वाला व्यक्ति आहार दे सकता है, दो हजार रु. माह की नौकरी करने वाला व्यक्ति चौका लगाकर आहार दे सकता है तो आप क्यों नहीं। अरे तुम जो कुछ भी खाते हो बस यही सोच लें कि गर मेरे द्वार पर अतिथि आ गये तो

मैं चार रोटी न खाकर के दो खाकर पानी पीकर रह जाऊँगा। दो तो उनको खिलाऊँगा ही खिलाऊँगा। कुछ भी न दे सकूँगा तो पानी तो पिला ही सकूँगा। अतिथि सेवा करना भी आचार्यवर ने अनिवार्य कर्तव्य कहा है।

अंतिम कर्तव्य कहा–'पूर्वेषां कीर्तिरक्षणम्' अपने पूर्वजों की कीर्ति की रक्षा करो। आपके पूर्वजों ने जो भी प्रतिष्ठा बनायी है उसे कर सको तो वृद्धिंगत करो अन्यथा कम से कम उतनी तो बनाए ही रखो। जो मर्यादा है उसका पालन करो। यदि कुल में कोई दोष है तो तुम निर्दोषता को स्थापित करो, कभी भी लीक से बाहर जाने की कोशिश मत करो। ये न कहो कि जमाना बदल गया। कुछ नहीं बदला अपने मन को तुम बदल रहे हो, पूरी तरह से अपने मन की इच्छाओं को पूरी करने के लिये। इसलिये मर्यादाओं का उल्लंघन करने के लिये कुछ भी करने लगते हो। हमारे शास्त्रों में हर चीज की मर्यादा पूर्वजों ने बतायी है किन्तु हम कोई न कोई बहाना सोचकर के हर मर्यादा का उल्लंघन करने के लिये पहुँच जाते हैं।

मर्यादा का उल्लंघन चाहे बालक करे या बालिका, युवक करे या युवती कोई भी करे कहीं न कहीं बहाना खोजता है जब मन बगावत करता है, तब फिर वह बहाने खोजता है, कैसे भी हो मैं मर्यादा के बाहर जाऊँ। किन्तु आचार्य महाराज कह रहे हैं हमें मर्यादा में रहना है और अपने पूर्वजों की कीर्ति की रक्षा करना है। हमारे पूर्वज हैं ऋषभदेव आदि 24 तीर्थंकर, हमारे पूर्वज हैं वृषभसेन आदि सभी गणधर परमेष्ठी, हमारे पूर्वज हैं असंख्यात श्रुत केवली, हमारे पूर्वज हैं अंग-अंगाश, पूर्व-पूर्वांश के ज्ञाता, तपस्वी जो मोक्षमार्गी रहे। हमें भी अपने पूर्वजों की कीर्ति की रक्षा करना है। और आपको भी अपने पूर्वजों की रक्षा करना है।

जिन्होंने बड़े-बड़े जिनालय बनवाये, बड़े-बड़े शास्त्र लिखवाये,

साधुओं की तीर्थयात्रा करायी, भक्ति सेवा की, जंगल में जाकर चार-चार माह चौका लगाया, साधुओं की तपस्या में सहयोगी बने। जिन्होंने देश पर आये संकट से बचाने के लिये हर भरसक प्रयास किया, अपनी समाज परिवार-जाति आदि सभी के लिये किस प्रकार त्याग की मिसाल तैयार की। वे हमारे महान् पूर्वज रहे उनकी कीर्ति की हमें रक्षा करना है। उनकी शान में दाग नहीं लगाना है। तो आपके माध्यम से उनकी कीर्ति में कुछ द्युति व चमक ही आना चाहिये। आपको कहने में आये मैं उस कुल परम्परा से हूँ जिस परम्परा में ऐसा आदर्श प्रस्तुत किया जाता रहा है रहा था और रहेगा।

महानुभाव! आपने अपने जीवन का जो भी लक्ष्य बनाया है, उस लक्ष्य के तहत यदि अपने गृहस्थ जीवन को सुखपूर्वक जीना चाहते हो तो तिरुवल्लुवर स्वामी के द्वारा कहे पाँच कर्तव्य पालन करने के योग्य हैं। आप सभी पंचपरमेष्ठी का नाम लेते हुये उसके साथ इन पाँच कर्तव्यों के नाम भी ले लेना। हो सकता है ये 5 कर्तव्य आपको पाँच पापों से विमुख कर दें, आपको पंचम ज्ञान व पंचमगति को देने में समर्थ हो जायें। ये पाँच कर्तव्य आपकी कषायों का क्षय करके 5 महाव्रत, पंच समिति, पंच इंद्रिय निरोध तप में पहुँचा करके आपका पूर्ण कल्याण करने में समर्थ हों। इसलिये इनका चिंतन करना चाहिये। स्वोन्नति, देवपूजन, बंधुवर्ग की सहायता, अतिथि सेवा व पूर्वजों की कीर्ति की रक्षा करना ये 5 कर्तव्य आप सभी के द्वारा परिपालित हों, इन्हीं सद्भावनाओं के साथ शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

।।जैनं जयतु शासनं-विश्वकल्याणकारकं।।

धर्म का प्रभाव

महानुभाव! जिनशासन की निर्मल और अक्षुण्ण परम्परा में समय-समय पर अनेक तीर्थंकर, सामान्य केवली, श्रुतकेवली, चार ज्ञान के धारक गणधर परमेष्ठी एवं कुछ अंगों के ज्ञाता एवं अंगांश के ज्ञाता अनेक आचार्य हुये। जिन्होंने भव्य प्राणियों को सन्मार्ग दर्शायक सूत्र दिये। भव्य जीवों पर उनकी बड़ी कृपा दृष्टि रही जिस कृपा दृष्टि और करुणा के माध्यम से उन्होंने आत्म साधना के समय में से कुछ समय निकालकर के भव्यों के कल्याणार्थ अपने भावों को, जिनेन्द्र प्रभु द्वारा प्रतिपादित जिनवचनों को शब्दों की पोशाक पहनाकर हमारे सामने प्रस्तुत किया।

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के अनुसार कभी संस्कृत भाषा में, तो कभी प्राकृतभाषा में, कभी हिन्दी भाषा में तो कभी अन्य-अन्य भाषाओं में ग्रंथों का प्रणयन किया 'सर्वभाषासरस्वती' जिनवाणी सभी भाषाओं में होती है 18 महाभाषायें 700 लघु भाषायें किसी भी भाषा के माध्यम से तत्त्व बोध प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा कोई नियामक नहीं है कि हिन्दी के माध्यम से ही तत्त्व बोध की प्राप्ति हो, ऐसा कोई नियामक नहीं है संस्कृत या प्राकृत के माध्यम से ही तत्त्वबोध हो। अंग्रेजी हो, चाहे कन्नड़ या तेलगू, मलयालम, बुंदेली, राजस्थानी आदि-आदि किसी भी भाषा के माध्यम से तत्त्व को प्राप्त कर सकते हैं। प्यासे व्यक्ति को पानी की आवश्यकता होती है। वह प्यासा व्यक्ति उस जल को नीर कहे, तोय कहे, वारि कहे, अम्बु

कहे, वॉटर (water) कहे किन्तु वह तृषा को शांत करने में तो समर्थ होता ही है।

जल से तृषा शांत होती है, भोजन से क्षुधा शांत होती है ऐसे ही जिन वचन किसी भी रूप में ग्रहण किये जायें, वे जिनवचन निःसंदेह आत्मा को सुख-शांति देने वाले ही होते हैं। वे जिनवचन पीयूष की तरह से हैं। औषधि की तरह से हैं। वे वचन कभी भी सुनने में आये, किसी भी भव में सुनने में आए किन्तु वे वचन आत्मा के रोगों के परिहारक होते हैं। जिस रोग की जो औषधि है उस औषधि का चाहे कुछ भी नाम रख दिया जाये। चाहे वृक्षों से पत्ते तोड़कर खाये जायें, तब भी रोग शमित होगा, चाहे उनकी औषधि बना लें तब भी रोग शमित होगा चाहे उसका कैप्सूल बनाया या पाउडर। जिस वनस्पति में जिस रोग को दूर करने आदि का जो गुण है वह ज्यों का त्यों रहता है। इसी तरह जिनवचन भी हमारे चित्त में विराजमान मिथ्यात्व, अज्ञान और असंयम इन तीन प्रकार के अंधकार को दूर करने में समर्थ होते हैं।

आचार्य धरसेन स्वामी, पुष्पदंत-भूतबलि मुनिराज, आचार्य यति वृषभ स्वामी आचार्य जिनसेन स्वामी, आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी, आचार्य माघनंदी जी, आचार्य श्री उमास्वामी, आचार्य पूज्यपाद स्वामी, आचार्य अकलंक स्वामी, आचार्य कुमुदचन्द्र स्वामी, आचार्य अमृतचन्द्र, आचार्य योगीन्द्रदेव, आचार्य सोमदेव, आचार्य शुभचन्द्र आदि अनेक आचार्य हुये जिन्होंने समय-समय पर शास्त्रों की रचना करके भव्य जीवों का कल्याण किया। यदि ये शुद्धवचन हमें न मिलते तो निःसंदेह हम भी अज्ञान के अंधकार में भटक रहे होते। हमारे हाथ में भले ही दीपक था, किन्तु उसमें ज्योति नहीं थी। हमारे हाथ में चाहे भले ही दीयासलाई भी थी, किन्तु जलाने की विधि नहीं थी। उन आचार्यों ने पूर्ववर्ती आचार्य और तीर्थंकरों से सीखकर

अपने दीपक को हमारे सामने प्रज्ज्वलित करके, अपनी दीयासलाई से अपना दीया जलाया, उनसे हमने सीखा कि अपना दीया कैसे जलाया जाता है।

मार्ग भी हमारी आत्मा में अंदर है, मार्ग शाश्वत है, मार्ग को किसी ने बनाया नहीं, शक्ति भी हमारे पास है, प्रकाश भी हमारे पास शक्ति रूप में निहित था, प्रकट रूप में नहीं किन्तु वह प्रकाश दीयासलाई की शलाका में निहित था। जब सलाई को माचिस पर रगड़ा तो प्रज्ज्वलित हो गयी। दीपक में बत्ती भी थी, स्निग्धता भी थी, किन्तु जब वह शलाका वर्त्तिका से स्पर्श की तो वह ज्योतिमान हुयी। हमारी आत्मा भी ज्योतिमान हुयी है जिनकी नहीं हुयी उनकी हो सकती है और जिनकी हो चुकी है उनकी भी पहले ज्योतिमान नहीं थी।

आचार्यों ने कितने सरल शब्दों में धर्म का उपदेश दिया। किन्हीं भी आचार्य द्वारा रचित किसी भी ग्रंथ का स्वाध्याय करना प्रारंभ करते हैं तो ऐसा लगता है उसमें आनंद ही आनंद भरा पड़ा है उसमें रस ही रस आ रहा है चाहे कहीं से भी पढ़ना प्रारंभ करें। मिश्री को चाहे कहीं से भी खाओ उसका स्वाद मीठा ही होता है। मिश्री को कभी भी खाओ, स्वाद मिष्ट ही होता है, मिश्री को कहीं भी खाओ स्वाद मिष्ट ही होता है, चाहे उसे कैसे भी खाओ, खड़े होकर के या बैठकर करके, मिश्री मिष्ट ही होगी, चाहे सोने की चम्मच से खाओ या चाँदी की चम्मच से खाओ, चाहे लकड़ी की चम्मच से खाओ चाहे हाथ से खाओ मिश्री मिष्ट ही होगी। बालक खाये या वृद्ध महिला खाये या पुरुष अथवा तिर्यंच कोई भी खाये वह मिष्ट ही होगी। हाँ एक व्यक्ति को वह मिश्री कड़वी भी लग सकती है, उसे उसका स्वाद मीठा न लगे, वह है वो व्यक्ति जिसे पित्त ज्वर हो रहा हो, उसे वह मीठा भी कड़वा सा लगता है, जब मुँह कड़वा

होता है तो चाहे पित्तज्वर से हुआ हो या अन्य किसी प्रकार से हुआ हो जब मुँह में कड़वाहट है तब फिर मिश्री भी मीठी नहीं लगेगी। जिह्वा में कड़वापन आ गया है जिससे सभी पदार्थ कड़वे-कड़वे ही प्रतिभासित हो रहे हैं, कड़वाहट मुँह में भरी पड़ी है तब फिर मिश्री मीठी नहीं लगेगी।

महानुभाव! तो क्या मिश्री का मीठापन कहीं चला गया? मिश्री का मीठापन तो आज भी मिश्री में है, कल भी था, कल भी रहेगा किन्तु जिस शरीर के अंग से मिश्री का स्वाद लिया जाता है उस अंग में प्रतिकूलता आ गयी, या तो वह स्वाद लेने में असमर्थ है या उसमें इतनी कड़वाहट भरी पड़ी है कि मिश्री का छोटा सा कण उस कड़वाहट को दूर नहीं कर पा रहा है। उसके लिये पहले औषधि सेवन करना जरूरी है। जिनेन्द्र भगवान् की वाणी हर समय सबको अच्छी लगना चाहिये, वह कल्याण दायक है इसमें कहीं कोई शंका नहीं है किंतु फिर भी कभी-कभी भगवान् की वाणी किसी-किसी को अच्छी नहीं लगती संभव है उन्हें चार संज्ञाओं का तीव्रज्वर आ गया है—भय, आहार, मैथुन परिग्रह अथवा संभव है उन्हें चार कषायों का तीव्र आवेग आ गया। संभव है उनका तीव्र मिथ्यात्व का उदय चल रहा है, इसलिये देव-शास्त्र-गुरु भी सुखदायक प्रतीत नहीं हो रहे, उनसे भी आनंद की अनुभूति नहीं हो रही, ये ही कष्ट प्रद लग रहे हैं, मंदिर अच्छा नहीं लग रहा, जिनवाणी अच्छी नहीं लग रही, भगवान् व गुरु अच्छे नहीं लग रहे कोई भी धर्म की क्रिया अच्छी नहीं लग रही। दान, भक्ति, पूजा, उपवास, तीर्थयात्रा, जाप आदि कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा तब समझना चाहिये अभी उनका तीव्र पाप कर्म का उदय चल रहा है।

जब तीव्र पापकर्म का उदय चलता है तब जिनवचन भी अच्छे नहीं लगते, माता-पिता गुरुजन भी अच्छे नहीं लगते, उनकी अच्छी

सीख भी अच्छी नहीं लगती। क्योंकि पापकर्म भी तो अपना असर दिखाता है। जैसे पित्त ज्वर अपना असर दिखा रहा है जीभ की कड़वाहट अपना असर दिखा रही है जिसने मिश्री की मिठास भी तिरोहित कर दी, ऐसे ही वह मिथ्यात्व का ज्वर या चार कषायों व चार, संज्ञाओं का ज्वर, पाप की तीव्रता का ज्वर व्यक्ति की बुद्धि को भ्रष्ट कर देता है। अन्यथा इस बात को कौन नहीं जानता है कि धर्म करने से सुख होता है। आबाल-वृद्ध सभी जानते हैं। कौन नहीं जानता कि पाप करने से दु:ख होता है जानते तो बहुत हैं पर मानने वाले बहुत कम हैं। और जब तक हम मानते नहीं हैं तब तक जानना भी सार्थक नहीं होता। जिस समय से हम मानना प्रारंभ कर देते हैं उस समय से हमारा जानना सार्थक हो जाता है। मानने से ही ज्ञान में सम्यक्पना आता है, अन्यथा बिना मानने से ज्ञान, ज्ञान नहीं जानकारी कहलाती है।

मानना अर्थात् सम्यग्दर्शन, जानना अर्थात् ज्ञान। सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान तो है इन्द्रभूति के पास भी था अग्निभूति-वायुभूति के पास भी था, वे उस समय के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनका बड़ा आश्रम था जहाँ हजारों शिष्य प्रतिदिन शिक्षा प्राप्त करने वाले थे। उन महामण्डित किन्तु मिथ्यादृष्टि ब्राह्मण का वीर वर्धमान स्वामी की सभा में पहुँचते ही, मानस्तंभ को देखते ही मान खण्ड-खण्ड हो गया। क्या ऐसा होता है? हाँ निमित्त का प्रभाव पड़ता है। मानस्तंभ को देखकर के क्या मान गलित हो सकता है? हाँ हो सकता है। सूर्य की किरणों को देखकर के जैसे घी पिघल जाता है, अग्नि का सामीप्य मोम को पिघलाने लगता है, अग्नि स्निग्धता तेल आदि को जलाती है ऐसे ही जिनमुद्रा के देखते ही मिथ्यात्व पिघलने लगता है।

जैसे सूर्य की किरण से हिमगिरी का हिम पिघलने लगता है, जैसे पवन के लगते ही बर्फ पिघलने लगती है ऐसे ही कहीं किसी

अतिशय योगी की आत्मा से निष्पन्न आभामण्डल या विशुद्ध वर्गणाओं के परिवेश में पहुँच जायें तो अपनी भी कषायें स्वत: मंद होने लगती हैं। कषायें गलने लगती हैं, फिर अपनी प्रवृत्ति जहाँ सिंह जैसे दहाड़ने की होती है वहाँ भीगी बिल्ली जैसे बन जाते हैं। स्वत: परिणाम निर्मल होने लगते हैं। जन्मजात बैर को धारण करने वाले वन्य पशु भी सिंह और गाय एक घाट पर पानी पीने लगते हैं, सर्प और नेवला आपस में क्रीड़ा करने लगते हैं। बिलाव और मूषक वात्सल्य से रहने लगते हैं, यह उन वर्गणाओं का प्रभाव होता है। उन अतिशय योगी की विशुद्ध वर्गणायें पवन की तरह से हमारे मिथ्यात्व व कषायों को गलाने वाली होती हैं।

वर्गणायें भी अपना प्रभाव डालती हैं जैसे किसी जलाशय के किनारे झील, समुद्र या बाँध जहाँ जल ही जल दिखाई दे रहा है और आप संध्याकाल में हारे थके पहुँच गये और जल से संस्पर्शित करती वायु आपके शरीर का स्पर्श कर रही है आपका परिमार्जन कर रही है ऐसा लगता है उस वायु ने भी शरीर की पूरी थकान निकाल दी। जल का स्पर्श किये बिना ही शरीर की थकान निकल गयी और मन आनंद से भर गया। किसी पुष्पवाटिका के समीप से निकलते हुये आपने किसी पुष्प को छूआ भी नहीं किन्तु फिर भी पुष्पवाटिका के पुष्पों की गंध वह मारुत लेकर जा रहा था, वह आप से टकराया आपकी नासिका को तृप्त कर दिया जबरदस्ती आपके नासापुटों में उन्होंने सुगंधित पराग वायु भर दी। अंदर तक शांति पड़ गयी। आपने तो पुष्प का स्पर्शन भी नहीं किया। इंद्रभूति गौतम गणधर ने भगवान् का स्पर्शन भी नहीं किया, मानस्तंभ का स्पर्शन नहीं किया बस दूर से दर्शन करने मात्र से वह मिथ्यात्व ऐसे गला की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी।

भगवान् महावीर स्वामी का जीव जब सिंह की पर्याय में था तब

चारणऋद्धिधारी दो मुनिराज आकाश मार्ग से जा रहे थे। वह शेर शिकार कर रहा था, दोनों मुनिराज ने अपने-अपने अवधिज्ञान से उसके अग्रिम भवों को जाना और छोटे मुनिराज ने कहा ये जीव शिकार कर रहा है। दूसरे मुनिराज बोले हाँ ठहरो इसको संबोधन देना चाहिये क्योंकि ये 10वें भव में भरत क्षेत्र का 24वाँ तीर्थंकर बनेगा। संबोधन देना आवश्यक है अन्यथा मिथ्यात्व के साथ कब तक संसार में भटकेगा। वे दोनों मुनिराज नीचे आये और संबोधन दिया रे जीव! तू अनादिकाल से भटकता हुआ यहाँ तक आ गया। मारीचि की पर्याय में कल्याण करने के अभिमुख हुआ, वहाँ से लौट गया और संसार में फँस गया। अब और कितनी पर्याय धारण करेगा, तुझे अहिंसा का जयघोष करना है, धर्म का प्रवर्तन करना है और आज तू हिंसा करने पर उतारू है। धिक्कार तेरे कृत्य के लिये, तू क्यों जागृत नहीं होता। मुनियों के वचन सुन जैसे शेर का सोया हुआ पराक्रम जाग गया हो। यदि बाहर का पराक्रम जागता तो दहाड़ता हुआ मुनिराज पर उपसर्ग कर देता किंतु अंदर का पराक्रम जागते ही उसे तुरंत जाति स्मरण हो गया। आँखों से आँसू बहने लगे। उस शेर के दोनों पंजे खून से सने हुये थे, उनसे खून टपक रहा था किन्तु आँखों से आँसू बह रहे थे। दोनों हाथ जोड़कर मुनिराज के चरणों में, पीछे वाले दोनों पैरों पर खड़ा हो गया और अपनी भाषा में निवेदन किया कि आपने अपने दर्शन देकर मुझे कृत्य-कृत्य किया। मेरा मिथ्यात्व का मल धुल गया। वह सिंह जो माँसाहारी था उसके आँखों से आँसू बह रहे थे, उसने माँस का त्यागकर अणुव्रतों को स्वीकार कर लिया। वही जीव वर्धमान महावीर बने।

महानुभाव! धर्म का प्रभाव अचिंत्य है। धर्म को किसी भी पर्याय में धारण करो, वह सुख ही देगा। ऐसा नहीं है कि धर्म को कोई गरीब व्यक्ति धारण नहीं कर सकता, अमीर धारण नहीं कर सकता।

उच्च-नीच कुलीन सब धारण कर सकते हैं। देव हो या नारकी, मनुष्य हों या पशु-पक्षी सभी धारण कर सकते हैं धारण कर लिया तो उसका प्रभाव तो आयेगा ही आयेगा। बर्फ को हाथ में कोई भी रखेगा तो हाथ ठंडा ही होगा ऐसे ही धर्म को जो कोई भी धारण करेगा उस धर्म रत्न के दिव्य प्रकाश में मिथ्यात्व, अज्ञान व असंयम का अंधकार भाग जायेगा और कषायों से जो आत्मा सन्तप्त थी उसे शीतलता का अनुभव होने लग जायेगा। अब तक जीवन में क्लान्ति, क्रांति, संक्लेशता, कुभाव, वैमनस्यता, तृष्णा आदि भावों का रेला का रेला चल रहा था धर्म रत्न के पास पहुँचते ही ऐसी चेतना की परिणति में परिवर्तन आया जैसे किसी पुलिस की गाड़ी को देखते ही चोर भाग जाते हैं। और धर्म का प्रभाव ऐसा हुआ ही सुभावों का प्रादुर्भाव होने लगा।

वह धर्म अचिंत्य है। उसकी महिमा को कोई नहीं कह सकता है। उस धर्म को प्राप्त करने का प्रत्येक समय सही मुहूर्त है। जिस समय धारण कर लो वही सबसे उत्तम मुहूर्त है। जब जाग जाओ तभी सेवरा और न जागो तो ये काल रात्रि अंधकारमय अनादि अनंत है। अतः जाग जाओ। उस धर्म के फल के बारे में आचार्य भगवन् समंतभद्र स्वामी जी जो बड़े ही उच्चकोटि के नैय्यायिक, वाग्मीक, तार्किक, मनीषी, महातपस्वी, सिद्धान्त विद् आध्यात्मिक रसिक ऐसे महान् गुणों से परिपूरित जिनके विषय में यह कहा जाता है कि वे भविष्य के तीर्थंकर बनेंगे उन्होंने रत्नकरंड श्रावकाचार नामक ग्रंथ लिखा। उन्होंने मानो श्रावकों के लिये एक रत्नों की पोटली दी यदि उस पोटली में से एक रत्न भी निकाल लिया तो बस जीवन निहाल हो जायेगा। एक रत्न को धारण करने वाला व्यक्ति भी कंगाल से मालामाल हो जाता है। उन आचार्य भगवन् ने कहा–

पूजार्थाज्ञैश्वर्यै-बल परिजनकामभोगभूयिष्ठैः।
अतिशयित-भुवनमद्भुत-मभ्युदयं फलति सद्धर्मः॥135॥

फलति सद्धर्मः-समीचीन धर्म फलता है। धर्म एक वृक्ष है वह चेतना की भूमि पर यदि उत्पन्न होता है तो उसमें फल अवश्य ही लगते हैं। वह वृक्ष कभी बांझ नहीं होता है। धर्म का वृक्ष कभी नपुंसक नहीं होता वह तो निःसंदेह फल देने वाला होता है। जिस वृक्ष पर फल न लगें लोग उसे अशुभ, बांझ व नपुंसक कहते हैं। किन्तु जो वृक्ष फलवान् होता है वह सौभाग्यशाली स्त्री, पुत्रवती स्त्री की तरह से मंगलकारी होता है। अथवा नर पुंगव की तरह से श्रेष्ठ गुणों का भोक्ता होता है। वह धर्म चेतना की भूमि पर पहले तो अंकुरित हो। वह धर्म क्या है, उसके संबध में आचार्य महोदय ने स्वयं ही प्रथम तो प्रतिज्ञा की पुनः धर्म का स्वरूप कहा–

देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिवर्हणम्।
संसारदुःखतः सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे॥

देशयामि-मैं कहता हूँ, समीचीनं-समीचीन धर्मं-धर्म को कर्म-निवर्हणम्-वह धर्म कैसा होता है? कर्म का निवारण करने वाला होता है। कर्मों को ऐसे जला देता है कि वे कर्म दुबारा उत्पन्न न हो सकें। आत्मा की भूमि का ऐसा परिशोधन कर देता है जिसमें और भी कोई कार्माणवर्गणा आकर बंध न सके। संसारदुःखतः सत्वान्-जो प्राणियों को संसार के दुःखों से निकाल करके–यो धरत्युत्तमे सुखे-उत्तम सुख में ले जाता है, वह धर्म है।

इस संसार में वह धर्म ही ऐसा वाहन है जिस वाहन पर आत्मा सवार होकर के उत्तम सुखों को प्राप्त करती है सिद्धालय तक ले जाती है। धर्म वह है जो अरिहंत अवस्था के वैभव को देने वाला है। धर्म वह है जो इस आत्मा को श्रावक, साधु, उपाध्याय व आचार्य बनाता है। धर्म वह है जो आत्मा को धर्मात्मा बनाता है। व्यवहार धर्म वह है जो आत्मा को पुण्यात्मा बनाता है, महान् आत्मा या महात्मा बनाता है।

अब धर्म का स्वरूप बताते हुये आचार्यवर्य कहते हैं–

सद्‌दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदु:।
यदीय प्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धति:॥3॥

सम्यग्दृष्टि अर्थात् समीचीन दृष्टि आपका जो देखना है वह सम्यक् हो, देखना झूठा है मिथ्यारूप है तो आपके जीवन में अभी धर्म नहीं। जब अभी देखना ही मिथ्या है, श्रद्धा यदि मिथ्या है तो आप धर्म को भी मिथ्या समझोगे। मिथ्या धर्म को ही सम्यक् समझकर ग्रहण कर लोगे। उस सम्यक्त्व का अविनाभावी जो ज्ञान होता है वह सम्यग्ज्ञान है। एवं सम्यग्दर्शन व ज्ञान के उपरांत तृतीय स्थान पर आता है वह है चारित्र।

जिससे अशुभ से निवृत्ति, पापों का त्याग, शुभ में प्रवृत्ति हो वह चारित्र कहलाता है। ये तीन ही धर्म हैं। इन तीन को व्यवहार में अलग-अलग कहते हैं निश्चय में रत्नत्रयरूप आत्मा ही धर्म है। वहाँ जब निश्चय में लीन हो गये तो आत्मा में आत्मा का स्वभाव धर्म है। सम्यक्त्व की निर्मलता और दृढ़ता जिनेन्द्र भक्ति से प्राप्त होती है। ज्ञान की वृद्धि शास्त्र की विनय व स्वाध्याय आदि करने से होती है, ज्ञानी पुरुषों की विनय, उनका मान-सम्मान करने से होती है, ज्ञान के उपकरणों की विनय, मुहुर-मुहुर स्वाध्याय, तत्त्वचिंतन करने से, ज्ञान की तीव्र पिपासा से होती है। चारित्र की प्राप्ति संतों की पद रज माथे पर लगाने से, परिचर्या, सेवा करने से, वैय्यावृत्ति करने से, दानादि देने से संयम की प्राप्ति होती है।

जो जीव पंचपरमेष्ठी की भक्ति जितनी अधिक करता है वह अपने सम्यक्त्व को उतना ही अधिक निर्मल बनाता है। जो जीव पंचपरमेष्ठी की या देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति नहीं करते उनका सम्यक्त्व निर्मल नहीं हो सकता। जिनभक्ति सम्यक्त्व का अंग है, कारण है और सम्यक्त्व की पोषक है। वह जिनभक्ति क्या देने वाली है–

देवेन्द्रचक्र-महिमान-ममेयमानं।
राजेन्द्रचक्र-मवनीन्द्र-शिरोऽर्चनीयं॥
धर्मेन्द्रचक्र-मधरीकृत-सर्वलोकं।
लब्धवा शिवं च जिनभक्ति रुपैति भव्य:॥4॥

जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति करने वाला वह भव्य क्या प्राप्त करता है–देवेन्द्र, देव और इन्द्रों की विभूति, अणिमा-महिमा आदि ऋद्धियाँ, अचिन्त्य सामर्थ्य, द्वादशांग का ज्ञान, क्षायिक सम्यग्दर्शन, अहमिन्द्र की अवस्था आदि जिनभक्ति से प्राप्त होती है। सौधर्म इन्द्र वही बन सकता है जिसके रग-रग में जिनभक्ति भरी पड़ी है। जिनभक्ति से जो तृप्त नहीं हो रहा है अभिषेक-पूजन करते-करते भी जिसका मन अघा नहीं रहा तो प्रकृति उसे सौधर्म इन्द्र बना देती है। जो यहाँ तृप्त नहीं हो पाया अब एक कलश से नहीं 1008 कलशों से अभिषेक करता है। एक बार नहीं प्रत्येक बार भगवान् के पंचकल्याणक में करता है मूर्ति का नहीं मानो साक्षात् मूर्तिमान का ही करता है उनकी पंचकल्याणक क्रियाओं को सम्पन्न कराता है तो ऐसे जिनभक्त को श्रेष्ठ विभूति जिनभक्ति से प्राप्त होती है।

''राजेन्द्रचक्रमवनीन्द्र शिरोऽर्चनीयं'' जिनभक्ति से चक्रवर्ती की विभूति प्राप्त होती है। चौदह रत्न, नवनिधि प्राप्त होती हैं, सभी बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा-महाराजा उनके चरणों में प्रणाम करते हैं। ऐसी चक्रवर्ती की विभूति तो प्राप्त होती ही है इतना ही नहीं 'धर्मेन्द्रचक्र-मधरीकृत-सर्वलोकं'–धर्म के इन्द्र अर्थात् तीर्थंकर पदवी तीनों लोको को जानने वाले ऐसे सम्मानजनक पद प्राप्त करते हैं तो जिनभक्ति से करते हैं। पंचपरमेष्ठी की भक्ति से तीर्थंकरादि बनते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की साधना से बनते हैं। उसके बिना नहीं बनते। जो जीव कभी भी, कैसे भी धर्म मर्यादा पालन करते हैं, वे फल अवश्य प्राप्त करते हैं।

जितना ज्यादा धर्म आपके अंदर आता चला जायेगा, उतना ही आपके अंदर से पाप और पाप का फल दुःख निकलता चला जायेगा। जब तक धर्म आत्मा में नहीं समाया है तब तक पाप समाया है और धर्म आ गया तो पाप टिक नहीं पायेगा, वह भागता हुआ दिखाई देगा। आचार्य महाराज कह रहे हैं- कि समीचीन धर्म के माध्यम से क्या फल प्राप्त होते हैं—**पूजा**—संसार में जो कोई भी पूज्यपद को प्राप्त हुये हैं जिनकी आज पूजा हो रही है निःसंदेह उन्होंने पूर्वभव में या वर्तमान भव में धर्म का सहारा लिया है, धर्म की साधना की है, भक्ति की है, ज्ञान का उपार्जन किया है, त्याग किया है, कषायों को मंद किया है अन्यथा बिना धर्म के कोई पूजा को प्राप्त नहीं करते। पुण्यक्रिया भी व्यवहार धर्म है उसके माध्यम से ही पुण्य का संचय होता है पुण्यफल की प्राप्ति होती है शाश्वत पूजा की प्राप्ति धर्म का फल है।

शाश्वत पूज्य कौन है? वे है पंचपरमेष्ठी। प्रत्येक काल में पाँचों परमेष्ठी पूज्यनीय हैं, थे और रहेंगे। आत्मा की शाश्वत पूज्य अवस्था सिद्ध अवस्था है, अरिहंत अवस्था शाश्वत पूज्य अवस्था है। आचार्य, उपाध्याय, साधु बनकर स्वर्ग में देव-इन्द्र आदि बन गये तो वह आत्मा शाश्वत पूज्य अवस्था को प्राप्त नहीं हुयी किन्तु अरिहंत व सिद्धात्मा शाश्वत पूज्य अवस्था को प्राप्त होती हैं। जो उसी भव से मोक्ष जाने वाले हैं ऐसे साधुपरमेष्ठी भी शाश्वत पूज्यात्मा हैं। तो शाश्वत पूजा भी धर्म के फल से प्राप्त होती है। यदि आप क्षणिक पूजा प्राप्त करना चाहते हैं राजा-महाराज बनके आप कहते हैं उनकी तो बड़ी जय-जयकार हो रही है, उनके चरणों में कितने लोग आते हैं मुझे भी ऐसी पूज्यता की प्राप्ति हो, तो कैसे प्राप्त होगी? धर्म के फल से।

अर्थ-अर्थ अर्थात् धन वैभव उसकी प्राप्ति यदि करना चाहते हैं

तो उसकी प्राप्ति भी बिना धर्म के नहीं होती। बिना पुण्य के धन नहीं आता जिनको ज्ञान नहीं है वे सुबह से शाम तक पसीना बहाते रहें, चाहे सुबह 4 बजे से दुकान खोलकर रात के 12 बजे बंद करें तब भी रोटी के लाले पड़ जाते हैं और जिनका पुण्य का उदय है अपनी एक क्रिया नहीं छोड़ते, अपने सभी कर्तव्य पूरे करते हैं। सामायिक, स्वाध्याय, अभिषेक, पूजन-भक्ति, आहारादिदान, सेवा, वैय्यावृत्ति और जो समय मिला दो-चार घंटे के लिये गये प्रतिष्ठान पर, उतने में ही इतना कमा लेते हैं कि कोई एक साल में न कमा पाये। उनके पहुँचने से पहले ही लंबी लाइन लगी है। एक जैसी दोनों दुकानें, एक पर कोई ग्राहक आ नहीं रहा और दूसरा दुकानदार ग्राहकों की लंबी लाइन देखकर कहता है भैया कल आना। एक दुकानदार व्यक्ति को बुला रहा है, अरे मेरे पास आ जा मैं तुझे वस्तु 1% कम दाम में दे दूँगा पर नहीं मुझे तो अमुक दुकान से ही चाहिये।

व्यक्ति के बुलाने से व्यक्ति नहीं आता है पुण्य खींच के ले आता है। कागज के पुष्पों पर भ्रमर नहीं मंडराते असली पुष्प होते हैं तो भ्रमर भगाने से भगते भी नहीं हैं। किसी डिब्बे पर आपने लिख दिया शक्कर और उसमें नमक भरा तो उस पर चींटियाँ नहीं आयेंगी। चींटियाँ तुम जैसी पढ़ी-लिखी मूर्ख नहीं हैं। पढ़े-लिखे तो मूर्ख हो सकते हैं, चींटियाँ तो अपनी घ्राण इन्द्रिय का प्रयोग करके जान लेती हैं ये मुझे धोखा देना चाहता है। मनुष्य मनुष्यों को धोखा दे सकता है मुझे धोखा नहीं दे सकता, मेरी घ्राण इन्द्रिय तीव्र है। शक्कर के डिब्बे पर नमक की चिट लगा दे तब भी वह लिखे को नहीं देखेगी अपनी घ्राण इन्द्रिय का विश्वास करेगी।

तो यदि अपना असली पुण्य है तो तीन लोक का कोई भी व्यक्ति हमारे पुण्य को छीन नहीं सकता और हमारा पाप है तो हमें

कोई पुण्य दे नहीं सकता। जीव को स्वयं ही अपने पाप-पुण्य के कर्मों का फल भोगना पड़ता है।

स्वयं कृतं कर्म यदात्मनापुरा फलं त्वदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयंकृतं कर्म निरर्थकं तदा।।

स्वयंकृतं कर्म यदात्मनापुरा-आत्मा के द्वारा पूर्वकाल में जो कर्म किये गये फलं त्वदीयं लभते शुभाशुभं-उसी का शुभ-अशुभ फल ये आत्मा भोगती है। परेणदत्तं यदि लभ्यते स्फुटं-यदि दूसरे के द्वारा दिया गया फल आत्मा प्राप्त करती है तो स्वयंकृतं कर्म निरर्थकं तदा-स्वयं के लिये कर्म तो निरर्थक हो जायेंगे, किन्तु ऐसा कभी होता नहीं। अपने कर्मों का फल आत्मा को भोगना पड़ता है।

अपने ही पुण्य से कभी बिना परिश्रम के भी फल मिल जाता है जब परिश्रम का फल नहीं मिला तो कभी बिना परिश्रम के भी फल मिल गया। आज व्यक्ति खूब परिश्रम कर रहा है फिर भी लाभ नहीं मिल रहा चिंता न करो अगले भव में बिना परिश्रम के ही फल मिल जायेगा, गुप्त खजाने मिल जायेंगे। आज तुम्हारा धन गुम गया कोई बात नहीं, कहीं नहीं जायेगा अगले भव में मिलेगा, आज तुम किसी का छीन कर ले आये हो, ठहर जाओ अगले भव वह छीन कर ले जायेगा। एक कण भी हम किसी के भाग्य का भोग नहीं सकते और एक कण भी अन्य कोई हमारे भाग्य का भोग नहीं सकता। जो हमारे भाग्य का है हम वहीं भोगेंगे और जो दूसरे के भाग्य का है, वह वही भोगेगा।

तो अर्थोपार्जन किस से होता है धर्म से, पुण्य से। लोग कहते हैं पता नहीं पूरे दिन मंदिर में बैठा रहता है, क्या भगवान् रोटी खाने को दे देंगे क्या? दुकान पर जाता नहीं, 12 बजे जाता है, फिर क्या मिलेगा दुकान पर उन कहने वालों को ये नहीं मालूम कि भैया! यहाँ से ही सब कुछ है। सत्ता में पुण्य है तो सब कुछ है और पुण्य नहीं

कमाया चाहे देश जाओ या विदेश जाओ, चाहे जंगल-पर्वतों को छान मारो चाहे नदी-पाताल कहीं चले जाओ भाग्य बिना कुछ हाथ न आएगा। भाग्य में नहीं है तो कहीं कुछ नहीं मिलने वाला। पाप का उदय है तो रत्न भी अंगारे बन जायेंगे, स्वर्ण भी पत्थर बन जायेगा, और पुण्य का उदय है तो मिट्टी भी सोना बन जाती है। पुण्य में वह शक्ति है कि पुण्यात्मा व्यक्ति कहीं किसी की दुकान पर जाकर बैठ जाये तो ठप्प दुकान भी चलने लगती है पापी व्यक्ति आ जाये तो ग्राहक ही नहीं आता। पुण्यात्मा जहाँ-जहाँ जाता है वहीं पुण्य की वृष्टि होती चली जाती है।

पुण्य का फल कैसे दृष्टिगोचर होता है? जैसे जिस रोड से कोई पुष्पों से भरा ट्रक निकल जाये, तो जहाँ-जहाँ वह ट्रक जायेगा वहाँ-वहाँ उन पुष्पों की सुगंधि फैलती चली जायेगी और यदि वही ट्रक गंदगी से भरा हुआ है तो सर्वत्र बदबू फैलाता जायेगा। पुष्प का ट्रक निकल कर गया, एक पुष्प भी गिरा नहीं किन्तु फिर भी सुगंधि बिखेर गया, गंदगी का ट्रक निकलकर गया, गंदगी गिरी नहीं फिर भी दुर्गंध फैलाकर गया। ऐसे ही पुण्यात्मा जहाँ से निकल जाता है, सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति भी आनंद से सराबोर हो जाते हैं और पापी व्यक्ति जहाँ से जाता है तो व्यक्ति के मन में बुरे परिणाम होने लगते हैं। पुण्य पाप का महत्व तो है। महानुभाव! पूजा व अर्थ धर्म का फल है। आगे कहा-

आज्ञा-अर्थात् आज्ञा देने का सामर्थ्य। किसी की आज्ञा में कोई रह रहा है तो जिसकी आज्ञा में सब व्यक्ति रह रहे हैं। उस व्यक्ति ने पूर्व में धर्म किया था इसलिये आज उसके शासन में, अनुशासन में, उसके आश्रय से लोग रहना चाहते हैं। पहले पुण्य नहीं किया होता तो कौन चाहता। पुण्य नहीं है तो एक बेटा भी अपने पिता की बात नहीं मानता वह भी शत्रु बन जाता है। पुण्य नहीं है तो हितैषी

ही विद्वेषी बन जाते हैं, मित्र ही शत्रु बन जाते हैं। पुण्य होता है तो मारने वाले ही बचाने वाले हो जाते हैं। तो धर्म के फल से आज्ञा देने की सामर्थ्य प्राप्त होती है। आगे कहा **ऐश्वर्य**–चाहे सौधर्म स्वर्ग में रहने वाले सौधर्म इन्द्र का ऐश्वर्य है, चाहे मध्यलोक में रहने वाले चक्रवर्ती का ऐश्वर्य है वह ऐश्वर्य भी धर्म का फल है। उत्कृष्ट से उत्कृष्ट कोई भी विभूति है वह धर्म के माध्यम से प्राप्त होती है, शाश्वत पुण्योदय से प्राप्त होती है।

बल–चाहे तन बल है, धन बल है, मन बल है, वचन बल है या सैन्यबल है वह बल भी धर्म के फल से प्राप्त होता है। बिना धर्म के बल की प्राप्ति नहीं होती। तीर्थंकरों का अमिटबल होता है, इन्द्रों की शक्ति से भी अधिक होता है। सौधर्म इन्द्र चाहे तो जम्बूद्वीप को गेंद की तरह उठाकर कहीं से कहीं फेंक दे ऐसे सौधर्म इन्द्र से भी ज्यादा बलशाली तीर्थंकर होते हैं। वह बल उन्हें पूर्व में की गयी धर्म साधना के माध्यम से प्राप्त हुआ। तो तन-वचन-मन व धन बल के साथ-साथ आत्मबल भी धर्म के माध्यम से प्राप्त होता है। आगे कहा–

परिजन–धर्म के माध्यम से ही स्वजन व परिजन की प्राप्ति होती है। यदि पाप कर्म का उदय चल रहा है तो कोई अनाथ है, उसके आस-पास कोई भी हितैषी नहीं, पुण्यात्मा है तो भरे-पूरे परिवार में जन्म लेता है। पुण्यात्मा है तो सब उसे चाहने वाले होते हैं। काम-भोग भूयिष्ठैः- समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाले पुण्य की प्राप्ति भी धर्म से होती है। यथेष्ठ भोगों को भोगने के लिये भी पुण्य चाहिये। अतिशययुतभुवनं अद्भुतं-और तीर्थंकरों को जो अतिशय प्राप्त होते हैं, जन्म के 10 अतिशय केवलज्ञान के 10 अतिशय और देवकृत 14 अतिशय और महान् अभ्युदय समवशरण आदि ये सब धर्म के माध्यम से प्राप्त होते हैं।

महानुभाव! आचार्यों ने उस धर्म का फल अचिंत्य कहा है। वह धर्म अपने पास है तो सब कुछ है। जिसके पास चाबी है तो संपूर्ण राज्य उसका है। चाबी नहीं तो उसका कुछ भी नहीं। एक व्यक्ति धर्म की साधना करने वाला बड़े निराकुल चित्त के साथ, निष्ठा के साथ धर्म की साधना करता है, धर्म के प्रति बहुत समर्पित है। उसकी परीक्षा लेने के लिये स्वर्ग के देव आते हैं–स्वर्ग में सुधर्मा सभा में चर्चा चल रही होती है कि वर्तमान काल में अमुक राजा धर्म की बड़ी साधना कर रहा है बड़ी निष्ठुरता से साधना कर रहा है ऐसा कैसे हो सकता कि एक मनुष्य धर्म के प्रति इतना समर्पित हो ? सौधर्म इन्द्र ने कहा–नहीं एक राजा मध्यलोक में ऐसा है जो अपने धर्म में अडिग है। उसकी परीक्षा लेने के लिये देव आये।

राजा अपने महल में सो रहा था, उसे स्वप्न दिखाई दिया कि स्वप्न में तू एक दम निर्धन हो गया है और जंगल में भटक रहा है। उसकी आँख खुली, उसे लगा स्वप्न आया है, फिर से सो जाऊँ ये अच्छा स्वप्न नहीं है। वह फिर सो गया। पुनः वही स्वप्न आया कि कंगाल हो गया पुनः घबराकर के नींद खुली, सोचा सपना अच्छा नहीं है पुनः सो गया। तीसरी बार भी वही सपना आया किन्तु एक बात साथ में और देखी कि वह जंगल में भी आनंद का अनुभव कर रहा है। इसलिये कि उसने जंगल में रहकर भी अपने धर्म को नहीं छोड़ा। वह धर्म को नहीं छोड़ता यह उसे सपने में मालूम चला। वह भूखा-प्यासा होते हुए भी धर्म का पालन कर रहा है। कोई अभक्ष्य सेवन उसने नहीं किया, किसी प्रकार की चोरी-बेईमानी नहीं की, उसे ऐसा लगा कि उसके धर्म से प्रभावित होकर स्वप्न में ही कोई देव उसे वरदान दे रहे हैं। उसने कहा तीन बार एक ही स्वप्न आया है देखते हैं इसका फल क्या होता है? जो होगा सो होगा किंतु मैं अपने धर्म को तो नहीं छोड़ूँगा।

संध्याकाल में अपने महल के विश्रामगृह में बैठा हुआ था, तभी उसे खट-खट की आवाज सुनाई दी, पूछा कौन? उसने सुना एक ध्वनि आयी-मैं लक्ष्मी हूँ। राजा ने कहा—इस समय रात्रि में कैसे? अरे! बस मेरा समय पूरा हो गया मैं तुम्हें छोड़कर जा रही हूँ। राजा ने कहा जाती हो तो चली जाओ मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। न तो राजा ने ये कहा क्यों जाती हो? मुझसे कोई गलती हुई आदि कुछ भी नहीं पूछा। ठीक है तुम्हारा समय पूरा हो गया तो जाना चाहती हो तो चली जाओ। थोड़ी देर बाद फिर-खट-खट की आवाज आयी-पूछा कौन? उत्तर में आवाज आती है—मैं कीर्ति। हाँ क्या कहना चाहती हो? मेरा समय पूरा हो गया, अब मैं तुम्हें छोड़कर के जाती हूँ। जाती हो तो चली जाओ, कोई बात नहीं। थोड़ी देर बाद पुनः तीसरी आवाज आयी-मैं शक्ति। मैं आपकी शक्ति हूँ। क्या कहना चाहती हो? मेरा समय पूरा हो गया मैं आपको छोड़कर जाती हूँ। ठीक है। पुनः अगली आवाज आयी-मैं बुद्धि-क्या कहना चाहती हो? मेरा भी समय पूरा हो गया, मैं भी जाना चाहती हूँ, ठीक है। एक-एक करके और आवाज आयी उसका पराक्रम, उसका धैर्य, साहस ये सब क्रम-क्रम से चले जाते हैं।

बाद में पुनः एक और आवाज आती है, कौन? मैं धर्म क्या कहना चाहते हो? बोला-सब चले गये मैं अकेला रह कर क्या करूँगा मैं भी जा रहा हूँ। राजा ने कहा—खबरदार जो घर के बाहर एक कदम भी रखा, सबको जाने दो, मैं तुम्हें यहाँ से हिलने भी नहीं दूँगा। धर्म ने कहा ठीक, देख लो तुम लक्ष्मी से रहित, कीर्ति से रहित, बुद्धि आदि सभी से रहित हो कुछ भी तुम्हारे पास नहीं बचा अब मैं तुम्हारे पास रहकर क्या करूँगा। राजा ने कहा—क्या करूँगा, क्या नहीं ये सब छोड़ तुझे मेरे साथ रहना है, तेरे लिये मैं अपने प्राण दे सकता हूँ पर तुझे नहीं छोड़ सकता। वह धर्म ठहर गया। जैसे

ही धर्म ठहरा तो पुनः खट-खट की आवाज आयी-पूछा कौन एक-एक करके साहस-धैर्य, पराक्रम, बुद्धि, लक्ष्मी आदि सभी लौट आये। उन सभी से राजा ने कहा—तुम सभी तो चले गये थे, लौट कैसे आये? वे बोले-हाँ हम चले तो गये थे किन्तु आपने धर्म को रोक लिया था, जहाँ धर्म होता है वहीं हम सब वास करते हैं उसे छोड़कर जा नहीं सकते।

महानुभाव! कहने का अभिप्राय ये है कि जहाँ धर्म होता है वहाँ पर सब कुछ होता है, और जहाँ धर्म नहीं होता है वहाँ सब कुछ होते हुये भी कुछ नहीं होता है। इसलिये उस धर्म को अपने आत्मा के प्रदेशों में स्थापित करो, अपने शरीर की क्रिया में धर्म को स्थापित करो। अपने वचनों में धर्म को स्थापित करो, अपने मन में धर्म को स्थापित करो। आपके प्रत्येक कृत्य से धर्म ही निःसृत हो, प्रत्येक वचन में धर्म झलके, प्रत्येक मनोविचार में धर्म दिखाई दे, आत्मा की प्रत्येक परिणति में धर्म हो। फिर आप निर्भीक होकर तीन लोक में कहीं भी विचरण करो आपका कोई बाल बाँका भी नहीं कर सकता। वही धर्म शाश्वत सुख-शांति को देने वाला है, आत्मा का कल्याण करने वाला है।

आप सभी लोग उसी धर्म की छत्र छाया को प्राप्त करें आपके प्रति ऐसी मंगल व शुभ भावना रखते हैं, आप सभी का कल्याण हो, इन्हीं सद् भावना के साथ.......।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।
।।जैनं जयतु शासनं–विश्वकल्याणकारकं।।

जो ऊबे सो डूबे

महानुभाव! आज थोड़ी सी चर्चा कर लेते हैं उस विषय पर जो हमारे लिये अत्यन्त आवश्यक है 'जो ऊबे सो डूबे' संसार में जितने भी जीव दिखाई देते हैं प्राय:कर के वे सभी जीव किसी न किसी कार्य में संलग्न हैं। ऐसा कोई भी जीव खोजना मुश्किल है जो कहीं संलग्न न हो। जो संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं वे मन से विचार करके जो उन्हें उचित लगता है उसमें लगे हैं। जो असंज्ञी पंचेन्द्रिय हैं, विकलत्रय व स्थावर जीव हैं वे अपने इन्द्रिय ज्ञान के माध्यम से जो कुछ हित की प्रवृत्ति कर पाते हैं, उसमें लीन हैं। जो संज्ञी और असंज्ञी दोनों से रहित हैं ऐसे सिद्ध परमेष्ठी वह भी अपनी आत्मा में लीन हैं, डूबे हुये हैं। सभी कहीं न कहीं संलग्न हैं।

कोऊ काहू में मगन, कोऊ काहू में मगन।
जी की जामें लागी लगन, वो भयो वाही में मगन॥

कोई व्यक्ति गाँव में रहता है खेती के काम में मस्त है, उसी में आनंद ले रहा है, कोई व्यापारी व्यापार में मस्त है, उसी में आनंद ले रहा है, सर्विस करने वाला सर्विस में मस्त है, विद्यार्थी जीवन जीने वाला विद्याध्ययन में मस्त है, साधना करने वाला साधक अपनी साधना में मस्त है। सभी अपने-अपने कार्य में मस्त हैं। जो बाहर की दुनिया में घूम रहे हैं वे बाहर की दुनिया में मस्त हैं, जो अंतरंग की दुनिया में प्रवेश कर गये वे अपनी अंतरंग की दुनिया में लीन हो गये। डूबे सभी हैं, कोई डूबा है सुरा में, तो कोई डूबा है सुंदरी में।

सुरा में डूबा हुआ व्यक्ति कहता है मुझसे बड़ा सुखी व्यक्ति इस पूरे संसार में कोई नहीं। सुरा का नशा जब चढ़ता है तब वह सब विकल्प भूल जाता है मस्त हो जाता है, वह अपने आप को सम्राटों का सम्राट शहंशाह मानता है। एक बार एक राजा हाथी पर सवार होकर निकला एक व्यक्ति शराब में डूबा हुआ सामने आया और राजा से बोला-ऐ! अपने महल को बेचेगा? बता राज्य के कितने पैसे लेगा? जब राजा लौटकर अपने महल पहुँचे, दरबार में उस व्यक्ति को बुलाया, वह बोला-महाराज! आपने मुझे याद किया। हाँ तुम कल कुछ कह रहे थे, मेरे महल को खरीदना चाह रहे थे? वह बोला-राजन्! मैं कहाँ और आप कहाँ आप कैसी बात कह रहे हो? राजा ने कहा-कल तो तुम सभी के सामने कह रहे थे। महाराज! क्षमा करो, दण्ड देना है तो वैसे ही दे दो, कल मैं नहीं बोला। राजा ने कहा, "अरे! इतने लोग वहाँ थे, किसी से भी पूछ लो, क्या वे सभी झूठ बोल रहे हैं?" महाराज! सच बताऊँ कल मैं नहीं बोल रहा था। फिर? जो मैंने पी रखी थी ना, वो बोल रही थी।

तो सुरा का नशा भी भयंकर होता है, आपने देखे होंगे वे लोग, जो शराब पीकर ऐसे झूमते हैं जैसे उन्हें दुनिया की कोई फिकर ही नहीं।

जो डूबे बोतलों के पानी में, न उभर सके वे कभी जिन्दगानी में।
बोतलों में डूबने वाले ऐसे अनेक लोग हुये जो पूरी जिंदगी भी पनप नहीं पाये।

एक गलत कदम उठाया था राहे शौक में
ता उम्र मंजिलें हमें खोजती रहीं॥

मंजिलें हमें न पा सकीं और हम मंजिलों को न पा सके। एक बार गलत कदम उठ गया था चाहे पीने का, चाहे गंदी वस्तु खाने

का, चाहे अन्य कहीं डूब जाने का, वह एक उठा हुआ कदम अनेक व्यसनों को साथ में लेकर आया। व्यसन ऐसे होते हैं जो कभी अकेले नहीं आते हैं, इनकी आपस में बड़ी गहरी मित्रता है। आप अपने मित्र को भले ही छोड़कर चले जाओ किन्तु यदि एक भी व्यसन जीवन में घुस जाता है, तो एक-दूसरे को बुला लेते हैं। जैसे काक यदि माँस का टुकड़ा मिल जाये तो काँव-काँव करके सभी कौवों को बुला लेता है। यदि एक कुत्ता भौंके तो वह सभी कुत्तों को बुला लेता है। ऐसे ही व्यसन भी अन्य व्यसनों को बुला लेते हैं। जीवन में एक बुराई का सम्मान करना तुम प्रारंभ कर दो फिर देखना कि तुम्हारे जीवन में बुराईयों का कैसा अम्बार लग जायेगा।

कोई डूबा बाल्य अवस्था से, कोई युवा व प्रौढ़ अवस्था से तो कोई वृद्धावस्था तक भी सुरा में ही डूबा रहा। सुरा में डूबे को दुनिया में कुछ न चाहिये, जो चाहिये सो मिल गया, अब इससे बड़ी चीज क्या चाहिये। अरे सुर तो सुर हैं किन्तु मैं तो सुरा से युक्त हूँ। सुर अर्थात् देव वह होगा अपने घर का किंतु मैं तो सुरापान कर चुका हूँ। तो कोई सुरा में डूबा है तो कोई सुरों में भी डूबा है।

माना देवगति के देवों की पूजार्चना में लगा है। कोई व्यंतर देवों की पूजा कर रहा है, कोई ज्योतिषी देवों की पूजा कर रहा है, तो कोई भवनवासी देवों की पूजा कर रहा है, तो कोई वैमानिक देवों की पूजा कर रहा है। कोई अदेवों की पूजा में लगा है और ऐसा डूबा हुआ है उसे दुनिया के लोग समझा रहे हैं किंतु नहीं मेरी देवी मेरी देवी है वही सबसे अधिक शक्तिशाली है, उससे बढ़कर कोई नहीं। वह उसमें डूबा हुआ है।

कोई 'सुंदरी' में डूबा हुआ है। नगरनारि में आसक्त है। वह सुबह से शाम तक जितना भी कमाता है, उसके चरणों में जाकर

भेंट चढ़ा देता है। वह उसके चरणों का सेवक बन जाता है। वहाँ जाकर डूब गया अब उसे अपनी स्त्री अच्छी नहीं लगती, अपने बच्चे-मित्र कुछ अच्छे नहीं लगते, न अपना कोई काम अच्छा लगता, न धर्म की बात अच्छी लगती वह तो बस सुंदरी में डूबा है ऐसा डूबा है, कि वहाँ से निकलना नहीं चाहता। जैसे यथेच्छ जल प्राप्त करके बालक टब के पानी में डूबता है, निकलता है, जैसे कछुआ कभी पानी में डूबता है कभी बाहर आता है, उसकी पीठ तपती है तो पानी में चला जाता है, पुनः ऊपर आता है, पीठ तपती है तो पुनः पानी में डूब जाता है, जैसे भैंस आदि पानी में जाती हैं और क्वार के महीने में उनकी पीठ तपती है तो वे उसमें डूब जाती हैं, फिर ऊपर आ जाती हैं। तो ये तो कभी ऊपर आते भी हैं किन्तु सुरा और सुंदरी में डूबा हुआ व्यक्ति ऊपर आने की कोशिश भी नहीं करता, कोई निकालने की कोशिश करे तब भी निकलना नहीं चाहता। जैसे विष्ठा का कीड़ा विष्ठा में घुस जाता है वह उससे बाहर नहीं निकलना चाहता, नाली का कीड़ा ज्यों नाली से बाहर नहीं निकलना चाहता, उसे उसमें ही आनंद आता है। जैसे कोई चेनस्मोकर (chain smoker) हो, एक बुझती है, दूसरी जलाता है ऐसे ही सुंदरी में डूबा हुआ व्यक्ति भी बाहर निकल कर नहीं आता।

आपको ज्ञात है चारुदत्त के विषय में जिसने अपने पिता के धन को व्यसन में लुटा दिया। कहाँ तो वह चारुदत्त बचपन से ही वैरागी था, धर्म के मार्ग पर चलने वाला। उसकी शादी भी हो गयी किन्तु पत्नी क्या है यह जानता ही नहीं। एक दिन उस चारुदत्त की सास आयी उसने अपनी पुत्री से पूछा–बेटी क्या तुझे यहाँ सुख है। वह बोली–माँ, क्या सुख? मेरे पति ने तो मुझे देखा भी नहीं, छूआ भी नहीं। सास ने चारुदत्त के पिता को उलाहना दिया-जब

तुम्हारा बेटा भोगों में लीन होना ही नहीं चाहता था, तो मेरी बेटी से शादी ही क्यों की?

फिर चारुदत्त का चाचा रुद्रदत्त चारुदत्त को एक वेश्या के यहाँ ले गया। रुद्रदत्त ने वेश्या व वेश्या की माँ से पहले ही सब तय कर लिया। रुद्रदत्त चारुदत्त को किसी काम का बहाना लेकर ले गया, सामने से हाथी आया और वे उस वेश्या के घर में घुस गये। चारुदत्त वहाँ पानी माँगता है तो वह पानी में मादक पदार्थ मिलाकर दे देती है जिससे उसे नशा आने लगता है। वह उस वेश्या में ऐसा आसक्त हुआ कि बारह वर्ष में 32 लाख दीनार उस वेश्या के चरणों में भेंट चढ़ा दी। मकान आदि सब गिरवी रख दिया किन्तु वह वहाँ से लौटकर नहीं आ पा रहा।

पिता ने कई समाचार भेजे बेटा! अब तो तू आ जा किंतु वह नहीं आया। यहाँ तक कि पिता ने समाचार भेजा बेटा! मैं अस्वस्थ हूँ, तेरा मुख देखना चाहता हूँ। चारुदत्त ने उल्टा समाचार भेज दिया–मैं डॉक्टर, वैद्य, हकीम नहीं हूँ पिता जी बीमार हैं कहीं इलाज करा दो, मैं नहीं आ सकता। जब ये समाचार भेजा कि ''चारुदत्त! अब तो तुम्हारे पिता जी मृत्यु को प्राप्त हो गये अब तो चलो।'' उसने नौकरों से समाचार भेजा- जब मृत्यु को प्राप्त हो ही गये तब मैं जाकर क्या करूँगा, उनका जैसा संस्कार करना है कर दो, मैं नहीं आ पाऊँगा। नित्य घर से धन उसके पास आता था। जब एक दिन पत्नी का मंगलसूत्र आया तब वेश्या को लगा–अब लगता है इसके पास कुछ नहीं बचा, इसकी पत्नी का मंगलसूत्र तक आ गया। इसे देख वेश्या की माँ ने अपनी पुत्री से कहा–बेटी! अब ये कंगाल हो गया, इसे छोड़कर किसी दूसरे से प्यार कर। बेटी ने कहाँ–माँ मैं तो इसी से प्यार करती हूँ इसे छोड़ नहीं सकती, तो वेश्या की माँ ने चारुदत्त को बोरे में डलवाकर गटर (विष्ठा गर्त) में फिंकवा

दिया। प्रातः काल सूअर उसे चाट रहे थे, वह कहता है–बसन्त तिलके! छोड़ क्या करती है? वहाँ खड़े चौकीदार आवाज सुनते हैं कि कहाँ से ये आवाज आ रही है, वे देखते हैं कि कोई मनुष्य यहाँ पड़ा है।

चारुदत्त उठता है, अपनी ऐसी दशा देखता है, उठकर के अपने घर आता है। अपनी पत्नी और माँ को देखता है। पिता तो मृत्यु को प्राप्त हो ही चुके थे। पिता का मोह भी इतना तीव्र था कि जब वे दीक्षा लेने के लिये जा रहे थे तब जाते-जाते देहरी से लौटकर आये व बोले–यदि बेटा धन मँगाये तो मना नहीं करना, भेज देना।

ये कहलाता है मोह, वैरागी हो गये थे, दीक्षा के लिये जा रहे थे तब भी पुत्र मोह ऐसा था। पुत्र मोह बड़ा खतरनाक होता है। जिन्होंने शादी की है वे यदि पुत्र मोह-स्त्री मोह को छोड़कर मोक्षपथ पर आ गये तो मुझे लगता है पंचमकाल में सबसे बड़ा आश्चर्य है।

व्यक्ति शादी करने के उपरांत जब तक पुत्र नहीं होता है तब तक अपने प्राणों की स्थापना पत्नी में करता है, कहता है हम दोनों दो नहीं एक ही हैं। एक ही आत्मा से दोनों जीते हैं। पुत्र होते ही अपने प्राणों की स्थापना पुत्र में करता है चाहे सौ कष्ट सहन कर लेगा पर पुत्र को कष्ट नहीं देगा। वह इतना मोही हो जाता है। बाल ब्रह्मचारी ने तो स्त्री-पुत्र का संबंध बनाया ही नहीं किन्तु आश्चर्य होता है कि जिस व्यक्ति ने गृहस्थ जीवन में रहकर के ताना-बाना बुना, मकड़ी की तरह से जाल बनाया। मकड़ी तो उसी जाल में फँसकर प्राण दे देती है किंतु जो अपने घने जाल को तोड़कर के निकल कर आ गये, समझ लिया कि ये जाल सुखद नहीं है, दुःखरूप ही है। जिन्होंने पिंजरा स्वयं निर्मित किया पिंजरे में रहे पर अब उसकी शलाका को तोड़कर के बाहर आ गये वे धन्य हैं। ये वास्तव

में बहुत बड़े आश्चर्य की बात है। अन्यथा ऐसे व्यक्ति भी देखे हैं जो गृहस्थी के मोह में डूबे हैं चाहे उम्र 60 की हो या 70-75 की, चाहे उम्र 100 की भी हो गयी तब भी पुत्र-पौत्र के प्रति उनका मोह छूटता नहीं है। कहीं भूल से धर्मध्यान करने बैठ भी जायें तब भी सामने बच्चों की किलकारी गूंजने लगती है। उस मोह को तोड़ना वास्तव में बहुत मुश्किल है।

योयत्र निवसन्नास्ते, स तत्र कुरुते रतिं।
यो यत्र रमते तस्मादन्यत्र स न गच्छति।।43।। (इष्टोपदेश)

जो जहाँ पर रहता है वहीं पर रति करने लगता है, और जो जहाँ रति करता है वहाँ से अन्यत्र जाने की इच्छा नहीं करता। स्वर्ग में रहने वाला सुरेन्द्र और विष्ठा में रहने वाला विष्ठा का कीड़ा दोनों अपनी-अपनी जगह रह रहे हैं, दोनों में से कोई अपनी मृत्यु नहीं चाहता। दोनों को अपनी जगह ठीक लगती है। आपको पुराने मकान से इतना लगाव हो जाता है कि नया फ्लैट खरीद लिया फिर भी मन नहीं लगता, क्योंकि पुराने मकान में इतनी भावनायें जुड़ी हैं, वहाँ इतनी वर्गणायें हैं कि मानो आपकी द्वितीय चेतना उसमें वास करती हो, उसे छोड़कर जाने का मन नहीं करता। वहाँ रहकर सैकड़ों परेशानियाँ तो झेल सकते हैं पर उसे छोड़ने का मन नहीं करता। तो कोई डूबा हुआ है अपने परिवार में।

अभी देख रहे थे कि कोई डूबा है सुरा में, कोई सुंदरी में तो कोई डूबा 'संगीत में'। जैसे मृग संगीत की ध्वनि जब होती है तब वह अपनी सुध-बुध खोकर के उसी में मुग्ध हो आँख बंदकर खड़ा रहता है और कोई शिकारी आता है उसको पकड़ कर अपना शिकार बना कर ले जाता है। सर्प जब बीन बजती है तो नाचने लग जाता है, मस्त हो जाता है उसे नहीं मालूम क्या हो रहा है वह सर्प नाचते-नाचते अपनी मणि को भी छोड़कर चला जाता है। वह नागमणि

जिसमें इतनी दिव्यकांति होती है कि रात्रि में कहीं रख दो तो वह स्थान ही प्रकाशित हो जाये ऐसी वह दिव्यमणि को भी संगीत में डूबा सर्प छोड़ देता है।

संगीत में डूबे व्यक्ति भी बहुत हैं सुबह से शाम उसी में डूबे हैं हाँ किन्तु एक बात अवश्य है संगीत में डूबने वाले कभी डिप्रेशन में नहीं आते, उस संगीतमय ध्वनि के साथ शरीर में जो वायब्रेशन (Vibrations) होती हैं उस से कभी डिप्रेशन नहीं होता। डिप्रेशन तब होता है जब व्यक्ति कूटस्थ बैठ जाता है, बोलता नहीं, सुनता नहीं, हँसता-मुस्कुराता नहीं बस ख्यालों में खोया रहता है और डिप्रेशन में चला जाता है।

कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो संगीत की धुन में नहीं बस अपना ही राग आलापते रहते हैं। कभी आला गा रहे हैं कभी कुछ गा रहें। पहले गाँवों में लोग चौपाल पर 4-6 लोग बैठे और ऐसे गीत गा-गा कर पूरी रात बिता देते थे। तो कोई व्यक्ति ऐसे भी हो सकते हैं जो समता में डूबे हैं। जो समता भाव में डूब गये अब उन्हें बाहर की दुनिया में आने की आवश्यकता नहीं है। जो साधु समाधि के साथ समता में डूब गया उस साधु के लिये बाहर की दुनिया गयी, बाहर की दुनिया के लिये वह साधु गया। तो कोई व्यक्ति जो श्रावक है वह ऐसा भी हो सकता है जो संतोष में डूब गया है। पहले वही श्रावक जो दिन-रात धन कमाने में जुटा था अब वह कहता है, मुझे न चाहिये मुझे इसी में संतोष है।

एक व्यक्ति जो तृष्णावान् है वह चंचल रहता है, संतोषी व्यक्ति स्थिर रहता है। तृष्णावान् पतंगे की तरह यहाँ-वहाँ बैठेगा और संतोषी। तो जहाँ है वहीं बैठेगा। तृष्णावान् भ्रमर की तरह से कभी एक पुष्प से पराग लेगा, कभी दूसरे पुष्प से लेगा। ऐसे ही जो व्यक्ति तृष्णावान् है, लोभी है, लालची है वह सौ प्रकार के सुकर्म वा कुकर्म करके

धनार्जन करेगा फिर भी शांति से बैठ नहीं पायेगा, उसी व्यक्ति के जीवन में जब संतोष आ जायेगा तो कहेगा अब तो मुझे शांति से बैठना है।

दो बालक जंगल में मस्ती में घूम रहे थे। उनमें से एक बालक को समाचार मिला नदी में बाढ़ आयी है और उसमें बहुत सारी लकड़ी बहकर आयी है, वह गया और लकड़ी बीन करके गट्ठर बाँध करके ले आया। दूसरा बालक वहीं पेड़ के नीचे बैठकर मस्ती में बाँस की बाँसुरी बनाकर उसकी धुन में झूम रहा था। उसने कहा "मूर्ख! यहाँ बाँसुरी बजा रहा है।" "तो क्या करूँ?" उसने पूछा अरे! बाढ़ में बहुत सारी लकड़ियाँ बहकर आ रही हैं, ले आ दो-चार आने की बिक जायेंगी," उसने उत्तर दिया बोला–लकड़ी लाकर मैं क्या करूँगा? अरे! कैसी बात करता है दो-चार आना पैसे आ जायेंगे। उस पैसे के माध्यम से क्या करूँगा? अरे! उस पैसे से बकरी ले लेना और उसका दूध बेचना। उससे क्या होगा? फिर बहुत सारी बकरी हो जायेंगी। उनका क्या करूँगा! अरे! फिर गाय ले लेना? माना कि मैंने गाय भी ले ली फिर क्या करूँगा। अरे! दूध निकालना व दूध-घी का व्यापार करना। अच्छा व्यापारी बन जायेगा। फिर क्या करूँगा? फिर क्या करेगा तू सेठ बन जाना लोग तुझे नगर सेठ कहेंगे। अच्छा माना कि कहने लगे, फिर क्या करूँगा? अरे तू सेठ बनकर तेरे बहुत से व्यापार चलेंगे फिर तो तेरी राजा से ही मित्रता हो जायेगी। माना वह राजा ही मुझे देश का राजा बना देगा, फिर क्या करूँगा। फिर तेरी संपत्ति रात-दिन बढ़ती जायेगी-बढ़ती जायेगी फिर तू छोटे-छोटे राजाओं को जीतकर बड़ा राजा बन जाना। चल ये भी हो गया, फिर क्या करूँगा? फिर तू चक्रवर्ती बन जाना। माना चक्रवर्ती भी बन गया फिर क्या करूँगा? अरे! फिर क्या, राजाधिराजा बनकर संचालन करना, फिर क्या करूँगा? अरे अब करना क्या है,

आराम से बैठकर-शांति से किसी जंगल में वृक्ष के नीचे चैन की बंसी बजाना, वन बिहार करने के लिये आना। वह बोला–मित्र! वही तो मैं कर रहा हूँ। इतनी धमा चौकड़ी कूदकर तब तू चैन की बंसी बजायेगा, वही चैन की बंसी मैं अभी बजा रहा हूँ।

तो जो जिसमें मस्त है, जिसको पैसा कमाने की धुन लगी है, वह पैसा कमा रहा है, और जिसको धुन लगी है आनंद पाने की वह आनंद पा रहा है। महानुभाव! तो कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं जो समता भाव में लीन हैं तो कुछ श्रावक 'संतोष' भाव में भी लीन हैं। संतोषी श्रावक के पास अल्प धन भी है फिर भी चेहरे पर चमक है। चित्त में सुकून व शांति है। हो सकता है जो गृहस्थ दो बार नहीं एक बार भोजन करता है। वह एक बार भोजन करने वाला गृहस्थ भी शांति से सोता हो। जब बिस्तर पर जाता हो तब एक मिनट भी नींद की इंतजारी नहीं करनी पड़े। उसके सिर पर पैसे का भी किसी का कर्ज नहीं। ऐसा संतोषी व्यक्ति सम्राटों का सम्राट शंहशाह है।

जिस पर संतोष रूपी धन है जो कि अनेक राजाओं महाराजाओं के पास भी नहीं होता। यहाँ तक कि कोई व्यक्ति ऐसा भी होता है जो 'सत्संग' में डूब जाता है जिसको सत्संग का रंग चढ़ जाता है फिर वह व्यक्ति दौड़ा-दौड़ा जाता है। लोग 100-200 कि.मी. तक भी महाराज के चरणों में जाते हैं। यहाँ तक कि वे अगर 1000 या 5000 कि.मी. की दूरी पर हों तब भी सत्संग में डूबे व्यक्ति के लिये वह दूरी दूरी नहीं रहती वह ऐन-केन प्रकारेण दर्शनार्थ पहुँच ही जाता है। कोई कहे भैया ऐसी क्या चीज है वहाँ पर! वहाँ पर जाकर क्यों पागल बन रहे हो? आराम से यहाँ रहो चैन से मौज-मस्ती करो। वह कहेगा–भैया! अपनी सलाह अपने पास रख, मुझे जो यहाँ करोड़ों रुपया खर्च करके भी नहीं मिल रहा

वह मुझे एक बार दर्शन करने मात्र से मिल रहा है, मेरी अंतरात्मा तृप्त हो जाती है।

तो कोई व्यक्ति 'शास्त्रों के स्वाध्याय' में डूब गये, शास्त्र का स्वाध्याय करने बैठे फिर न तो उन्हें भूख की परवाह है न प्यास की, न शरीर के रख-रखाव की परवाह है बस बैठे हैं तो पता ही नहीं चला कब सुबह से दोपहर हो गयी। चार-छः घंटे तक लगातार पढ़ते ही रहते हैं। रात में जब भी नींद खुल गयी तभी से ग्रंथ पढ़ना प्रारंभ कर दिया। तो कोई व्यक्ति त्यागी-व्रती ऐसे भी हैं जो 'सामायिक' में डूबे गये। आँख बंद करके बैठ गये और ध्यान में लीन हो गये। कभी दो-चार माला कभी 20-40 और 100 माला तक भी हो जाती हैं। लोग कहते हैं पागल है क्या होता है मोती गिनने से? वह कहेगा—अरे क्या हो रहा क्या नहीं यह तुम ज्ञात भी न कर पाओगे। मैं मात्र बैठकर मोती नहीं खिसका रहा एक-एक मोती पर णमोकार मंत्र पढ़कर 100-100 पापों को जला रहा हूँ। हजारो-लाखों कर्मों का विसर्जन कर रहा हूँ और जो मुझे आनंद प्राप्त हो रहा है वह मुझे करोड़ों-अरबों रुपया खर्च करके भी नहीं मिल सकता। क्योंकि मैंने अपने राग-द्वेष को शमित किया है और जहाँ रागद्वेष शमित होता है तो व्यक्ति को आनंद की अनुभूति होती है। राग का भी एक आनंद है, द्वेष का भी एक आनंद है किन्तु रागद्वेष से रहित समता रस का भी अपना एक अलग आनंद है।

महानुभाव! तो कोई व्यक्ति फिर ऐसे भी हैं जो 'सावद्य' में लीन हैं। सावद्य अर्थात् पाप क्रियाओं में लीन हैं उन्हें उसी में आनंद आ रहा है, कत्लखाने में पशुओं को मारने में ही आनंद आ रहा है, जो दिन-रात पाप में ही लगे हैं, भीलों की तरह से शिकार कर रहे हैं, माँस भक्षण कर रहे हैं, शराब पी रहे हैं, उन्हें वही

अपनी जिंदगी आनंद की जिंदगी लग रही है। वे उसमें डूबे हुये हैं।

तो कुछ व्यक्ति ऐसे भी हो सकते हैं जो 'प्रभुस्तुति' में लीन हैं। हमने देखा है भगवान् की भक्ति में इतने लीन हो जाते हैं कि उनकी आँखों में से आँसू निकलने लगते हैं। कई बार व्यक्ति की आँखें भीग जाती हैं जब वे तत्त्वचिंतन में लीन हों, सत्संग में लीन हों, भक्ति रस में सराबोर हों तो अंदर ही अंदर अपनी गर्हा व पश्चाताप करने लग जाते हैं। तो कुछ व्यक्ति ऐसे भी हो सकते हैं जो 'प्राकृतिक सौन्दर्य' में लीन हैं। कवि अपने मित्र के साथ पूर्णमासी की रात्रि को सरिता के किनारे पहुँचा। चन्द्रमा की चाँदनी पूरे वातावरण को शांति दे रही थी, वातावरण निस्तब्ध था, पानी भी शांत था जैसे वह भी प्रकृति का ही आनंद ले रहा था।

कवि और उसके मित्र साथ थे, तो मित्र तो नदी किनारे आनंद ले रहा था पर कवि ने अपनी नोटबुक व पेन निकाला और सोचा एक कविता लिख लूँ। उसने प्रकृति के सौन्दर्य को लिखना प्रारंभ किया, उसे लिखते-लिखते कब सवेरा हो गया उसको नहीं मालूम। वह मित्र बोला अरे! पागल यहाँ इतना खर्च कर के क्यों आये, यहाँ आकर भी आनंद नहीं लिया। कविता तो तुम घर बैठकर भी लिख सकते थे यहाँ प्रकृति का आनंद तो ले नहीं पाया। तो प्राकृतिक सौन्दर्य भी एक सौन्दर्य होता है। जो व्यक्ति उसमें डूबे होते हैं वे उस सौन्दर्य को आँखों से पीते हैं और आँखों के माध्यम से सौन्दर्य में प्रवेश कर जाते हैं उसी में लीन हो जाते हैं। सुन्दरता भी बड़ी आकर्षक चीज होती है, व्यक्ति उसमें भी डूब सकता है।

तो कोई व्यक्ति ऐसा भी होता है जो 'सरिता या सागर' में डूब जाता है। सरिता-सागर में डूबा जब तक तैर रहा है तब तक ठीक है यदि श्वांस फूल गयी फिर तो बस शरीर ही बदलना पड़ेगा।

तो कोई व्यक्ति ऐसा भी है जो अपने 'शरीर' में ही आसक्त है। शरीर के ऊपर में कोई कष्ट न आ जाये इसलिये दिनरात शरीर की सेवा-सुश्रुषा व उसी के पोषण में लगे हुये हैं फिर भी पोषण करते-करते वे शायद यह भूल जाते हैं कि इस शरीर का चाहे कितना भी पोषण करो यह शरीर जैसा है वैसा बना रहेगा, सुंदर नहीं बन जायेगा। यह पोषण करने पर भी पुष्ट नहीं होगा शुष्क ही होगा और यह शरीर नष्ट भी होगा, पर वे तो शरीर के पोषण में ही लगे हैं।

तो कुछ लोग ऐसे भी हैं जो 'सेवा' में लगे हैं। चाहे वे गुरु की सेवा में संलग्न हैं, चाहे माता-पिता की सेवा में संलग्न है, चाहे अपने मालिक की सेवा में संलग्न हैं, चाहे समाज की सेवा में संलग्न हैं चाहे किसी और की सेवा में संलग्न हैं। उन्हें सेवा में ही मेवा का आनंद प्राप्त होता है। वे सोचते हैं सेवा से बड़ा धन तो दुनिया में किसी का है ही नहीं, कुबेर का भी नहीं। वे उस सेवा में डूबे हैं। तो कुछ व्यक्ति ऐसे भी हैं जो 'स्वप्न' में डूबे हैं। कोई अपने दिन के स्वप्न में डूबे हैं तो कोई रात के स्वप्नों में डूबे हैं। आँख बंद करके तो जग स्वप्न देखता ही है पर खुली आँखों से भी लोग स्वप्न देखते हैं दिन-रात इसी उधेड़बुन में लगे रहते हैं मैं ये करूँगा, मैं वो करूँगा और तब तक एक झटका लगा और कुछ का कुछ हो जाता है। वे स्वप्न अधूरे रह जाते हैं। यदि सोते समय झटका लगे तो नींद खुल जाती है और स्वप्न टूट जाता है, ऐसे ही जब तक बाहर झटका नहीं लगता तब तक बाहर का सपना भी टूटता नहीं है। तो कुछ व्यक्ति स्वप्न में डूबे होते हैं।

महानुभाव! जो जिसमें डूबा है वह उससे बाहर नहीं निकलना चाहता। एक साधक अपनी आत्मा में डूबना चाहता है सिद्धांगना के लिये डूबना चाहता है, सिद्धत्व में डूबना चाहता है अपनी आत्मा

के माध्यम से।

आत्मा नदी संयम पुण्यतीर्थः, सत्योदका शील दया तटोर्मि।
तत्राभिषेकं कुरु पांडु पुत्रं, न वारिणाशुद्धयति चान्तरात्मा।।

श्री कृष्ण पाण्डु पुत्रों को समझाते हुये कहते हैं—हे कौन्तेय! व माद्री पुत्रों! तुम जो नदी में स्नान करके अपनी शुद्धि मानते हो, उससे आत्मा की शुद्धि कदापि नहीं हो सकती, आत्मा की शुद्धि किस नदी में स्नान करने से होती है? क्या काशी-गंगा में डूबने से मोक्ष मिल जायेगा? वहाँ नहीं डूबना है फिर कहाँ डूबना है? डूबना है तो डूबो आत्मा की नदी में डूबना है और आत्मा की सूखी नदी में नहीं डूबना वह आत्मा की नदी संयम के जल से लबालब भरी हो, उस नदी में संयम का जल तो भरा है पर आनंद तो तब आता है जब नदी का पानी बहता हुआ हो, ठहरा हुआ जल तो गंदा होता है उसमें बदबू आती है। उस नदी में सत्य का प्रवाह होना चाहिये, शील रूपी दो सुदृढ़ किनारे होने चाहिये, दया रूपी तरंगें होना चाहिये तब वह नदी सार्थक है। उस नदी में हे पाण्डु पुत्र अपना अभिषेक करो। केवल जलमात्र में स्नान करने से अंतर आत्मा शुद्धि को प्राप्त नहीं होती।

महानुभाव! व्यक्ति डूबता तो है। क्योंकि आत्मा का एक गुण है डूबना। श्रद्धा और चारित्र ये गुण हैं वैसे ही जैसे ज्ञान आत्मा का गुण है, ऐसी संसार की कोई आत्मा नहीं है और मुक्त अवस्था में भी ऐसी कोई आत्मा नहीं है जो जानती न हो निगोदिया जीव के पास भी अक्षर का अनंतभाग ज्ञान है सिद्धों के पास अनंत ज्ञान है। ज्ञान सबके पास है ज्ञान उसकी नियति है, प्रकृति है, स्वभाव है। ऐसे ही श्रद्धा उसकी प्रकृति है, नियति है, स्वभाव है। वह श्रद्धान भी करता है। ऐसा कोई भी जीव नहीं जो श्रद्धा नहीं करता हो! श्रद्धान तो करता है चाहे वह श्रद्धान सम्यक् हो या मिथ्या। वह

या तो मिथ्यापने की धारणा बना कर बैठेगा या सम्यक्पने को स्वीकार करेगा। किंतु धारणा बनेगी जरूर, ऐसा कोई भी प्राणी नहीं जो धारणा बनाकर न जीता हो, बिना धारणा के तो कोई जी ही नहीं सकता। संज्ञी पंचेन्द्रिय मन से विचार करके धारणा बनाता है, असंज्ञी जीव बिना मन के इंद्रियों के माध्यम से लब्धज्ञान से धारणा बनाता है। दर्शन भी आत्मा का गुण है।

आत्मा की लीनता की बात यहाँ कर रहे थे वह लीनता आत्मा का गुण है चारित्र। चाहे चारित्र मिथ्या हो या सम्यक् हो। ऐसा संसार में कोई जीव नहीं जो क्रिया नहीं करता हो, क्रिया का नाम ही चारित्र है और जो जिस क्रिया को करता है उस क्रिया में डूबता जरूर है। मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व के साथ डूबता है तो सम्यक् दृष्टि सम्यक्त्व के साथ डूबता है पर डूबता जरूर है। कोई जीव न डूबे ऐसा तो हो नहीं सकता। ये बात अवश्य है जो मिथ्यात्व से ऊब गया वह सम्यक्त्व में डूब गया और जो सम्यक्त्व से ऊब गया वह मिथ्यात्व में डूब गया। जो मिथ्या चारित्र से ऊब गया वह सम्यक्चारित्र में डूब गया, जो सम्यक् चारित्र से ऊब गया वह मिथ्या चारित्र में डूब गया। जो राग में डूब गया वह वैराग्य से ऊब गया, जो वैराग्य में डूब गया वह राग से ऊब गया। जो परिग्रह में डूब गया इसका आशय यह है वह निश्चय ही नि:संगता से ऊब गया और जो नि:संगता (सर्व परिग्रह त्याग अवस्था) में डूब गया तो समझो परिग्रह से ऊब गया। एक जगह ऊबता है तो दूसरी जगह डूबता है। दोनों में डूबना एक साथ नहीं होता।

इस संसार की वस्तुओं की कीमत ऐसे ही मत समझो, मैंने इन्हें अपनी स्वतंत्रता बेचकर खरीदा है। जब तक इन संसारी वस्तुओं का गुलाम मैं नहीं था तब तक मैं स्वतन्त्र था और जब मैंने अपनी स्वतन्त्रता बेच दी इन संसारी वस्तुओं को खरीदकर तो मैं इनका

गुलाम हो गया। ऐसे थोड़े ही मिलता है। व्यक्ति जो कुछ भी प्राप्त करता है वह तभी जब वह कुछ देता है, बिना दिये कुछ नहीं मिलता।

"कहाँ से लाओगे वे फुर्सत के चार क्षण, जिम्मेदारी के बाजार में सब कुछ समय तो तुमने गिरवी रखा है।'' जब तक तुम्हारा 1-1 सैकेण्ड गिरवी रखा है तब चार-क्षण कहाँ से निकाल कर लाओगे। इतनी जिम्मेदारियाँ सिर पर रख लीं कि प्रभु का नाम लेने के लिये चार क्षण का समय तो है ही नहीं।

"जब तक है जिंदगी फुर्सत न मिलेगी काम से।
कुछ समय ऐसा निकालो प्रेम करो भगवान् से"।

फुर्सत तो आपको मिलेगी ही नहीं अलग समय कहाँ से लाओगे।

उम्र तगाजे में माँगकर लाये थे चार क्षण।
दो आरजू में निकल गये, दो इंतजार में।।

बचा ही क्या। क्योंकि जो चार क्षण माँगकर लाये थे, उनमें से दो क्षण तो आरजू में अर्थात् माँगने में निकाल दिये कि मुझे मिले-मिले और दो क्षण उसकी इंतजारी में अर्थात् माँग की पूर्ति हो उस इंतजारी में निकल गये।

महानुभाव! ये समय ऐसा है कि अब हमें अपने आप को पहचान लेना चाहिये, अन्यथा संसार के पदार्थों से पहचान करते-करते उनमें डूबे-डूबे तो अनंत भव निकल गये किन्तु हम वहाँ से निकलकर नहीं आ पाये। भव सागर में डूबे-डूबे अनंत भव 'निकल गये' और हमारे देखते-देखते अनंत जीव भव सागर से 'निकल गये'। किन्तु हम भव सागर से नहीं निकले। हमारे भव तो निकले किंतु हम भव सागर से नहीं निकले। हम आपसे इतना कहना चाहते हैं इस भव को मत निकालो, खुद निकलने की कोशिश करो। कोशिशें

कामयाब होती हैं। एक बार ख्याल आ गया कि मुझे यहाँ से निकल कर जाना है तो संसार की कोई भी वस्तु तुम्हें बाँधकर नहीं रख सकती।

किसी पहाड़ी के ऊपर बहुत सुंदर महल बना था, जो व्यक्ति जाता वह महल का दरवाजा बंद देखकर लौटकर आ जाता था। कोई वहाँ जंगल की झाड़ियाँ उखाड़ रहा है, कोई पत्थर तोड़ रहा है, कोई नदी में कंकड़ फेंक रहा है, कोई जमीन खोद रहा है हजारों-हजार लोग मिलकर पत्थर रगड़ कर अग्नि पैदा कर रहे हैं, कोई कुछ खा रहा है। कोई मिट्टी-फल-पुष्प-पत्र जो मिल रहा है वह खा रहा है, कोई रो रहा है, कोई सो रहा है, कोई चिल्ला रहा है। लाखों व्यक्ति वहाँ पर हैं कोई एक व्यक्ति जब बाहर की तपन से, सर्दी से, प्रतिकूलताओं से विरक्त हो जाता है तो महल की ओर जाता है, सीढ़ियाँ चढ़ता है। जो महल की तीन सीढ़ी सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान- सम्यक् चारित्र चढ़ता है तो महल का दरवाजा खुल जाता है। जो अंदर पहुँच जाता है, वह कभी लौटकर बाहर नहीं आता, अंदर ही लीन हो जाता है वह अपने सम्यक्त्व, ज्ञान, चैतन्य, अमूर्तादि गुणों को भोगता जा रहा है—भोगता जा रहा है, अनंत काल हो गया महल के अंदर घुसे व्यक्तियों को बाहर आने की फुर्सत नहीं, लगता है वे कभी बाहर लौट के नहीं आयेंगे। जो बाहर लगे हैं अपने काम बदलते जा रहे हैं कभी पत्थर फोड़ रहा है, कभी मिट्टी खोद रहा है, अब घास काटने लगा, किंतु फुर्सत नहीं है कि पहाड़ी पर बने महल की ओर मैं भी जाऊँ।

महानुभाव! वह पहाड़ी पर बना महल कुछ और नहीं, वह सिद्ध क्षेत्र है, जहाँ पहुँचने की प्रत्येक भव्य की नियति है अब तुम्हारी इच्छा है चाहे आज पहुँचो या कल। चाहे पहुँचने में पल लगाओ या कल, ये आपकी इच्छा है क्योंकि भव्य जीव ऐसे चौराहे पर

सो रहा है जहाँ से निकलने वाले जीव उसकी खाट को ठोकर मारकर जाते हैं उसकी नींद तो खुलेगी ही खुलेगी, आज नहीं तो कल खुलेगी। इतने संत-महात्मा-साधु हर काल में होते रहेंगे उन भव्यों को बार-बार जगाने की कोशिश करेंगे, सोने नहीं देंगे। भव्य को तो मोक्ष जाना ही जाना है, आसन्न भव्य मोक्ष प्राप्त करेगा ही करेगा कब तक सोते रहोगे। आपका यहाँ आना आपकी श्रद्धा का प्रतीक है यही श्रद्धा आपके अंदर ज्ञान को उत्पन्न कराने वाली है, यही श्रद्धा आपको चारित्र दिलाने वाली होगी, यही श्रद्धा आपको स्वाध्याय-संयम, सामायिक के लिये कारण बनेगी और अंततः यही श्रद्धा आपको आत्मा में डुबाने के लिये समाधि की साधना करायेगी और वही श्रद्धा आपको सिद्धत्व का वैभव देने में समर्थ हो जायेगी।

उस श्रद्धा के बल से चलने वाला व्यक्ति निःसंदेह सिद्धत्व तक पहुँच जाता है, श्रद्धा कभी बीच में नहीं छोड़ती। कभी तुम श्रद्धा के विमान में से कूद भी जाओ, वह विमान नीचे उतर कर (लौटकर) तुम्हारे पास आयेगा और तुम्हें बैठाकर ले जायेगा, फिर कूद जाओ तो फिर आ जायेगा। फिर वह विमान तुम्हें क्षायिक सम्यक्त्व से बाँध ही लेगा, तुम्हें गिरने नहीं देगा। जब तक उपशम है तब तक कूद जाओगे पर जब क्षायिक हो जायेगा तो श्रद्धा के विमान से कूद भी नहीं पाओगे। अब तो ज्ञान-चारित्र में लगकर मोक्ष ही पहुँचोगे। क्षायिक सम्यक्त्व वाला व्यक्ति उसी भव से या तृतीय भव से और चौथे भव का तो उल्लंघन करता ही नहीं नियम से मोक्ष को प्राप्त करता ही करता है।

राजा भोज का नाम आपने सुना होगा, वह राजा भोज जिसके बारे में माना जाता है कि वह विद्वानों का आदर करने वाला बहुत आदर्श राजा रहा। श्रुति में आता है कि उन्हीं के समय में आचार्य श्री मानतुंग स्वामी ने भक्तामर स्तोत्र की रचना की थी। माना जाता

है उनके चाचा का नाम मुंज था। उनका नाम मुंज इसलिये पड़ा क्योंकि वो जंगल में मुंज पर सोते हुये मिले थे तो राजा भोज के दादा उन्हें लेकर आये थे। बाद में मुंज के मन में ये भाव आ गया कि भोज को मार दूँ तो राज्य मुझे मिल जायेगा, और मारने के लिये चाण्डालों को भेजा। जब चाण्डाल राजकुमार भोज को मारने ले गये तब भोज ने पूछा–कि आप क्या चाहते हैं? वे बोले हम तो आदेश का पालन कर रहे हैं, आपको मारकर हमें मुँह माँगा इनाम मिलेगा, मुंज राजा बन जायेंगे।

भोज ने कहा मैं तुम्हें वचन देता हूँ, मैं रात को लौटकर नहीं आऊँगा यदि आप मुझे प्राणदान देना चाहो तो दे दो, मैं बहुत दूर चला जाऊँगा। ये एक पत्र है जो मेरे चाचा मुंज को दे देना। वे चाण्डाल पत्र लेकर गये, मुंज ने पूछा–क्या काम हो गया? हाँ हो गया। आप लोग झूठ तो नहीं बोल रहे, नहीं आपके आदेश का पालन किया। तो फिर ये बताओ वह कैसे रोया, कैसे तड़पा, क्या कहा? वे बोले यह सब तो हम बाद में बतायेंगे पर उन्होंने यह पत्र दिया है, पत्र देखा उस पत्र में एक श्लोक लिखा था, जिसका अर्थ ये था–इस धरती पर बड़े-बड़े राजा-महाराजा हुये, उनमें से एक भी राजा महाराजा पृथ्वी का एक कण भी अपने साथ लेकर नहीं गये। चाचा! मुझे तो ऐसा लगता है मरते समय आप तो सारी पृथ्वी को ही समेट कर ले जाओगे। इसलिये अपने भतीजे को मारने की आज्ञा आपने दे दी। आपके चरणों में मेरा नम्र प्रणाम।

इस पत्र को पढ़ते ही मुंज की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी और मूर्च्छा खाकर गिर पड़े। होश में आते ही बोले मेरा भतीजा भोज कहाँ है जल्दी से उसे मेरे पास लाओ, नहीं लाये तो मैं तुम सभी को मार डालूँगा किंतु जब मुंज की हालत देखी तो कहा–वे जीवित हैं पर इस देश की सीमा को छोड़कर चले गये हैं। सेना

भेजी और ढूंढकर उन्हें लाया गया। भोज आये, उन्हें राजा बनाया गया, राजा बनकर उन्होंने भी अपने राज्य का विस्तार किया, वे बहुत पराक्रमी राजा थे।

एक दिन वे अपने महलों में सो रहे थे, यूँ तो वे सभी का सम्मान करते थे कवियों का भी उनके राज्य में बहुत सम्मान होता था, वे स्वयं भी कवि थे। एक बार वे काव्य बना रहे थे। उस काव्य के तीन पद तो बन गये किन्तु चौथा पद नहीं बना, वे बार-बार उन तीन पद को पढ़ रहे थे। संयोग की बात उसी समय एक चोर राजा भोज के महल में चोरी करने घुसा, यहाँ वहाँ गया कुछ भी उसके हाथ नहीं आया। छिपते-छिपाते सैनिकों से बचते-बचाते राजा भोज के कक्ष में उनके पलंग के नीचे जाकर छिप गया। सोच रहा था राजा भोज सोये तब निकलकर जाऊँगा और चोरी करूँगा। किंतु वे तो सो ही नहीं रहे कुछ गुन गुना रहे हैं।

चेतोहराः युवतयः सुहृदानुकूलाः
सद् बान्धवाः प्रणयः गर्व गिरश्च भृत्याः।
गर्जन्ति दन्ति निबहा स्तरला तुरंगा॥

पढ़ते-पढ़ते सवेरा हो गया, सूर्य की पहली किरण खिड़की में से झाँकने लगी पर चौथा पद नहीं बन पाया। चोर सोचता है मुझे मरना तो है ही, सवेरा हो गया मैं पकड़ा जाऊँगा क्योंकि चोरी करने के उद्देश्य से मैं राजा के ही पलंग के नीचे छिपा हूँ। मुझे फाँसी की सजा ही मिलेगी अब जो होगा सो होगा कम से कम मैं राजा की चौथी लाइन तो पूरी कर दूँ। क्योंकि वह चोर भी कवि था, वह नीचे से ही बोलता है

सम्मीलितेन नयनो नहि किंचदस्ति॥

तीन पंक्तियों का अर्थ यह था–मेरे चित्त का हरण करने वाली युवतियाँ (रानियाँ) मेरे पास हैं, जो मेरे हृदय के अनुकूल चलती

हैं, मेरे पास बंधु बाँधव हैं, अहंकार से रहित बंधुजन हैं इसके साथ-साथ सेवा में कुशल बहुत से सेवक भी मेरे पास हैं गर्जना करने वाले जिनसे शेर का भी मान गलित हो जाये ऐसे चिंघाड़ने वाले हाथी मेरे पास हैं। हवा से बातें करने वाले घोड़े मेरे पास हैं और भी रथ, प्यादे, सुभट आदि सब मेरे पास हैं। मेरे पास कोई कमी नहीं है ऐसा भाव वे उन तीन पंक्तियों में भर रहे थे चौथी पंक्ति में वे सोच रहे थे, मैं क्या लिखूँ, मैंने सब महल किला, वैभव लिख लिया अब क्या लिखूँ तो चोर ने लिखा-"सम्मीलितेन नयनो नहि किंच दस्ति।" जब तक आपके नेत्र खुले हैं तब तक ये सब कुछ है नेत्रों के बंद होते ही आपका कुछ भी नहीं है।

राजा भोज ने ये पंक्तियाँ सुनीं तो हड़बड़ाकर उठे, कि कौन है? उन्हें कोई दिखा नहीं। वह चोर पलंग के नीचे से निकलकर आया और कहने लगा-मैं चोर हूँ, चोरी करने आया था, अब चाहे मुझे जो भी सजा दो मुझे स्वीकार है। राजा भोज ने कहा-अब तू चोर नहीं है, वे अपने पलंग से उठे और उसके चरणों को छूकर कहने लगे, तू मेरा गुरु है। तूने मेरी आँखें खोल दीं, वास्तविकता से परिचय करा दिया कि मेरी आँख बंद होते ही मेरा कुछ भी नहीं है। जब राजा की ऐसी प्रवृत्ति चोर ने देखी, वह चोर वहाँ से तुरंत निकल कर सीधा-जंगल की ओर चला गया। राजा ने उसे रोका कहा जो चाहे सो इनाम माँग लो। वह बोला-राजन् मैंने आपकी आँखे नहीं खोलीं, आपने मेरी आँखें खोल दीं। मृत्युदण्ड न देकर वरन् गुरु जैसा सम्मान देकर, आपने मेरी आँखें खोल दीं कि मैं आपको सीख दे रहा हूँ। सीख तो गुरु दे सकता है, मैं गुरु बनकर ही रहूँगा और जाकर के दीक्षा अंगीकार कर ली।

महानुभाव! किसके जीवन में कब बदलाव आ जाये, कौन जानता है। कब आकाश में बदली छा जाये, कब वर्षा हो जाये कौन जानता

है। बरसते पानी में भी कब धूप आ जाये, कौन जानता है, कब बरसते पानी में मकान जल जाये कौन जानता है, कब जलता मकान बुझ जाये कौन जानता है। कभी जल में भी आग लग जाती है तो कभी आग में भी जल पैदा हो जाता है। ये संसार की दशा बड़ी विचित्र है।

अयोध्या नगरी में हमारे तीर्थंकरों ने जन्म लिया। वैसे तो अयोध्या नगरी तीर्थंकरों के जन्म की शाश्वत नगरी है, इस काल में भी कई तीर्थंकरों ने जन्म लिया। तीर्थंकरों की पदरज से वह नगरी पवित्र है। उस समय भगवान् मुनिसुव्रतनाथ स्वामी का शासनकाल चल रहा था, वहाँ पर महाराज विजयबंधु राज्य करते थे व उनकी रानी का नाम था हेमचूला। उन दोनों के सुरेन्द्रमन्यु नामक एक पुत्र था सुरेन्द्रमन्यु का विवाह कीर्तिरमा के साथ हुआ। इन दोनों के माध्यम से दो पुत्रों का जन्म हुआ, एक का नाम था वज्रबाहु, दूसरे का नाम था पुरिन्दर, राज व्यवस्था बहुत अच्छी प्रकार से चल रही थी, सुरेन्द्रमन्यु की अन्य भी रानियाँ थी, उनसे और पुत्र भी थे। इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हुये वे राजा-महाराजा जब अपने कुल का यशगान सुनते थे तो आनंद से भर जाते थे। यह वही इक्ष्वाकुवंश है जिसमें भगवान् ऋषभदेव ने जन्म लिया अनेक असंख्यातों राजाओं ने इस कुल में जन्म लेकर मोक्ष को प्राप्त किया।

उसी समय कुरुजांगल देश, हस्तिनापुर नगरी में महाराजा इभवाहन राज्य करते थे, इभवाहन की रानी का नाम था चूड़ामणि। उनके पुत्र का नाम था उदय सुन्दर व पुत्री का नाम था मनोदया। महाराज इभ वाहन को ज्ञात हुआ कि अयोध्या के राजा सुरेन्द्रमन्यु एक निर्भीक न्यायप्रिय शासक हैं, उनका सुयोग्य पुत्र वज्रबाहु मेरी पुत्री के योग्य है। उन्होंने दोनों के विवाह का प्रस्ताव सुरेन्द्रमन्यु राजा के पास पहुँचाया, वहाँ महलों में भी यही चर्चा हो रही थी कि राजकुमार

वज्रबाहु के योग्य कोई कन्या है तो हस्तिनापुर की राजकुमारी मनोदया। समाचार ज्यों ही पहुँचा तो वहाँ खुशी की लहर छा गयी कि जो हमने चाहा वह हमें मिल गया और संबंध पक्का हुआ शीघ्र ही पाणि ग्रहण संस्कार हुआ। मनोदया अयोध्या आ गयी। शादी के कुछ ही दिन बीत पाये थे कि हस्तिनापुर में राजा इभवाहन, चूड़ामणि, उदय सुंदर तीनों मिलकर मनोदया की चर्चा कर रहे थे। वे कह रहे थे मनोदया गयी है, उसके वियोग को बहुत दिन हो गये हैं, कुछ दिनों के लिये उसे यहाँ ले आओ और उदय सुंदर को लेने को भेज दिया। जब वह लेने पहुँचा तो देखा कि उसकी बहिन मनोदया व जीजाजी बज्रबाहु में इतना गाढ़ स्नेह है कि वह अपने मुँह से अपनी बहिन से कह ही नहीं पा रहा कि आप चली जाओ। उदयसुंदर ने कहा—बहिन! चलो माता-पिता आपको बहुत याद कर रहे हैं। बहिन भी समझती है कि भैया आया किसलिये आया है किंतु वह भी नहीं जा पा रही।

एक समय मौका पाकर उसने कह ही दिया कि बहिन! तुझने मुझसे घर के समाचार नहीं पूछे। वह बोली-हाँ भैया! बताओ क्या समाचार हैं। वह कहने लगा—तेरे बिना माता-पिता भोजन पानी भी नहीं कर रहे, तेरी याद करते हैं, तू चलती तो अच्छा रहता। यह समाचार उसने वज्रबाहु से भी कहा—कि मैं अपनी बहिन को लेने आया हूँ। वज्रबाहु ने कहा—अभी नहीं बाद में ले जाना। उदय सुंदर बोला-आप देख लें, माता-पिता बहुत व्याकुल हो रहे हैं, अच्छे से भोजन-पानी भी नहीं कर रहे हैं, यदि एक दिन के लिये भी चली जाती तो माता-पिता को अच्छा लगता। बहुत विचार करके सुरेन्द्रमन्यु ने भी कहा जाने दो, किन्तु वज्रबाहु ने कहा—नहीं मैं अभी नहीं भेज सकता, यदि आपने जाने की अनुमति दे दी है तो मैं भी इसके साथ जाऊँगा। मनोदया को मैं एक क्षण के लिये भी छोड़ नहीं

सकता। क्योंकि मेरे प्राण तो इसमें बस रहे हैं, इसकी दया ही मेरे मन की रक्षक है। इसका दयालु मन ही मेरे प्राण बचा सकता है मैं इसके बिना जी नहीं सकता।

अब मनोदया, वज्रबाहु अयोध्या के अन्य राजकुमार आदि सभी हस्तिनापुर जाने को तैयार हुये। मार्ग में चलते-चलते मध्य में वसंत पर्वत दिखाई दिया। प्रातः काल सूर्योदय के साथ लाल-लाल किरणें सामने पहाड़ पर पड़ रही थीं। पहाड़ की चोटी पर ऐसा लगा कि कोई व्यक्ति खड़ा है या स्वर्ण का खंभा ही गाड़ दिया है। वहाँ क्या चीज है। वज्रबाहु की दृष्टि सूर्यकिरण से चमकते उस सोने जैसे खंभे पर पड़ी वह बार-बार उसी को देखे जा रहा और न जाने क्या-क्या मन में विचार आ रहे थे। बाद में देखा कि यह खंभा नहीं कोई मानवाकृति है। जब समीपवर्ती मार्ग में पहुँचा तो निश्चय हुआ ये महायोगी निर्ग्रंथ दिगंबर मुनिराज हैं और उस वीतरागी मुद्रा को देखकर वे हतप्रभ रह गये। ये संसार शरीर भोगों से विरक्त होकर इस दशा में खड़े हैं, ये बहुत धन्य हैं, जो अपनी आत्मा में लीन हैं। उन्हें देखकर वज्रबाहु के मन में न जाने क्या ख्याल आया कि राग का बंधन मानो कमजोर पड़ने लगा।

इस प्रकार निश्चल दृष्टि से मुनिराज को देख रहे वज्रबाहु से उदय सुंदर ने कहा—क्या देख रहे हो जीजाजी! क्या दीक्षा लेने का मन है? वह अपने भाव प्रकट न करते हुए बोले—तुम्हारा क्या भाव है, तुम तो कहो। अंतरंग से वज्रबाहु को विरक्त न जान वह परिहास करता हुआ बोला—सोच क्या रहे हो, यदि तुमने दीक्षा ले ली, तो मैं भी दीक्षा ले लूँगा। वज्रबाहु बोले—उदय सुंदर क्या तुम दीक्षा ले लोगे? हाँ जीजा जी! यदि आप ले लेंगे तो मैं भी ले लूँगा। मुझे क्या है, मेरे साथ थोड़े ही कोई है, आपके साथ तो मनोदया है आप उसे छोड़कर दीक्षा ले लें, आप जैसे व्यक्ति ले लें तो फिर

मुझे किस बात की चिंता। वज्रबाहु ने कहा–उदय सुंदर अपनी बात से पीछे मत हट जाना। उदय सुंदर तो मजाक कर रहा था कहने लगा हाँ–हाँ क्यों नहीं। वज्रबाहु तुरंत बोले-ठीक है, मेरा संकल्प है मैं दिगम्बरी दीक्षा अंगीकार करता हूँ और वस्त्राभूषण का वहीं परित्याग कर हाथी से उतरकर दीक्षा को तैयार हुये। उदय सुंदर ने पैर पकड़े और रोने लगा, मुझे क्षमा करो, मैं मजाक कर रहा था। वज्रबाहु ने कहा–नहीं आप मजाक नहीं आप तो मेरे वैराग्य की अनुमोदना कर रहे थे, आप तो मेरे लिये लौकान्तिक देव की तरह हो! मैं तो कुएँ में गिर रहा था, तुमने तो मुझे बचा लिया। अब क्या था गुणसागर मुनिराज के समीप जाकर वज्रबाहु दीक्षा लेकर स्थिर हुए। मनोदया रो रही है–हे प्राणनाथ! हमें छोड़कर आप ऐसा न करो। पूरे में कोहराम सा मच गया।

उदय सुंदर भी सोच में पड़ गया, क्योंकि न तो वह लौटकर अयोध्या जा सकता है, न हस्तिनापुर वज्रबाहु जब दीक्षा ले सकते हैं वे जब इतने बड़े राग को तोड़ सकते हैं, उदय सुंदर ने भी दीक्षा ले ली। मनोदया ने कहा–भैया आप दीक्षा मत लो, पति ने मेरा साथ छोड़ दिया कम से कम आप तो मेरा साथ दो। मुझे माता–पिता के यहाँ तो छोड़ दो। उसने कहा–मैं माता–पिता को अपना मुँह नहीं दिखा सकता, मैं नहीं जा सकता मैं भी दीक्षा लेता हूँ। मनोदया सोचने लगी मैं अपने पति और भाई को यहाँ छोड़कर आखिर कहाँ जाऊँ? ससुराल जाऊँ या माता-पिता के यहाँ? मैं भी कहीं नहीं जा सकती, मैं भी इनके बिना जी नहीं सकती, मैं भी अपना आत्मकल्याण करूँगी वह भी दीक्षा ले लेती है। 26 राजकुमार जो साथ में चल रहे थे वे 26 के 26 राजकुमार भी दीक्षा ले लेते हैं सैनिकों मंत्रियों आदि ने बहुत समझाया किन्तु सभी दीक्षा को स्वीकार कर लेते हैं।

एक सैनिक गया अयोध्या, एक सैनिक गया हस्तिनापुर दोनों जगह समाचार पहुँचा। अयोध्या के राजा विजय स्यन्दन जब समाचार सुनते हैं तो उनकी आँखों से आँसू बहने लगते हैं। देखो यह इक्ष्वाकु वंश जहाँ ऋषभदेव ने जन्म लिया उसी कुल में मैंने जन्म लिया मैं दीक्षा नहीं ले पाया, मेरा पौत्र दीक्षा लेकर निर्वाण पथ पर बढ़ गया धिक्कार मेरे लिये, मैं भोगों में क्यों डूबा रहा, मैं यहाँ से क्यों नहीं ऊबा। वो यहाँ से ऊब गया और वहाँ जाकर अपनी आत्मा में डूब गया। मैं अभी तक यहाँ तक डूबा हुआ हूँ। वज्रबाहु के माता–पिता सुरेन्द्रमन्यु रानी कीर्तिरमा भी व्याकुल चित्त होते हैं। राजा विजय स्यंदन ने छोटे पौत्र पुरंदर के लिए राज्य सौंप दिया व अपने पुत्र सुरेन्द्रमन्यु के साथ निर्वाण घोष मुनिराज के समीप दीक्षा ले ली। पुरन्दर ने राज्यसंचालन किया, भावना तो उसकी भी उसी मार्ग पर बढ़ने की थी, किंतु बाबा ने राज्यभार सौंप दिया था। उसकी भी कई रानियाँ थीं, उसने कहा जिस रानी से भी मेरा प्रथम पुत्र होगा उस पुत्र का मुख देखकर ही मैं दीक्षा ले लूँगा।

उनकी पृथिवीमती रानी ने प्रथम पुत्र कीर्तिधर को जन्म दिया। यौवनावस्था में कीर्तिधर का विवाह कौशल देश की राजकुमारी से कराकर स्वयं विरक्त हो क्षेमंकर मुनिराज के समीप दीक्षा ग्रहण कर ली। कीर्तिधर ने भी बड़े होकर नियम लिया कि जैसे ही पुत्र की उत्पत्ति का समाचार सुनूँगा मैं भी जिन दीक्षा ग्रहण कर लूँगा, तदनंतर रानी सहदेवी ने एक पुत्र को जन्म दिया किन्तु पुत्र जन्म का समाचार राजा के कानों तक न पहुँच जावे इस भय से पुत्र जन्म का उत्सव नहीं किया तथा प्रसव का समय कई दिनों तक गुप्त रखा गया। किन्तु यह कब तक छिपाया जा सकता था। किसी दिन दरिद्र मनुष्य ने पुरस्कार के लोभ में राजा को यह समाचार दे दिया। उसे बहुमूल्य उपहारों से पुरस्कृत कर राजा ने एक पक्ष

के बालक को बुलवाकर उस सुकौशल नामक बालक को ही राज्य सौंप दिया व स्वयं दीक्षा ले ली। निमित्त ज्ञानियों से ज्ञात हुआ पुत्र (सुकौशल) जब पिता को दीक्षा अवस्था (मुनिरूप) में देख लेगा तब वह भी दीक्षा ले लेगा। सुकौशल की माँ इस भविष्य वाणी से अपने पुत्र को पिता के दर्शन (मुनि अवस्था) से रोके रखती थी, किंतु एक दिन सुकौशल ने छत से देख ही लिया, कि रानी के आदेश से सैनिक उन मुनि को राज्य से बाहर निकाल रहे थे। सुकौशल ने अपनी धाय माँ से पूछा–कि आप रोती क्यों हैं? धाय माँ ने कहा–बेटा ये सैनिक जिन्हें निकाल रहे हैं वे पूर्व के (गृहस्थ के) तेरे पिता हैं। तुम्हारी माँ तुम्हारे मोह के वश हो उन्हें यहाँ से भगा रही है।

सुकौशल को जब ज्ञात हुआ कि वे उनके पिता हैं, वे तुरंत ही महल से जाते हैं और जाकर दीक्षा को उद्यत हुये। उनके पीछे-पीछे उनकी सभी रानियाँ व माँ भी आ पहुँची। माँ ने बहुत रोका, किन्तु वे तो वैराग्य में पक्के डूबे हुये थे, मंत्री मण्डल ने कहा आप राज्यभार बिना किसी को सौंपे दीक्षा ग्रहण नहीं कर सकते। सुकौशल ने अपनी रानी विचित्र माला जो गर्भवती थी, उसके उदर पर ही तिलक किया और कहा मेरे राज्य का उत्तराधिकारी ये पुत्र होगा। जन्म के पहले ही उसे राज्य दे दिया और सुकौशल ने भी दीक्षा ले ली।

महानुभाव! ऐसा वंश जो ऊबे सो ऊबे और डूबे सो डूबे। डूबे तो ऐसे डूबे कि विजयबंधु भी दीक्षा न ले पाये और वज्रबाहु ऐसे डूबे जो मनोदया को एक क्षण के लिये भी छोड़ नहीं पा रहे हैं फिर ऊबे तो विषयों से ऐसे ऊबे कि आत्मा में ही डूब गये। महानुभाव! संसार में दो ही दशायें हैं, जो संसार में डूब गए वो धर्म से ऊब गये, और जो संसार से ऊब गये वे धर्म में डूब गये। जो धर्म में डूब गये वे ही वास्तव में अपनी आत्मा को परमात्मा

बनाने में समर्थ हो गये।

आप सभी से बस इतना ही कहना है संसार में ज्यादा मत डूबो, ज्यादा डूब जाओगे तो निकालने वाला निकाल नहीं पायेगा। यहीं सतह पर या किनारे पर डूबोगे तो हो सकता है कोई निकाल भी ले, नीचे जाकर ही डूबोगे तो फिर तो निकलना व निकालना भी मुश्किल है। इसलिये राग में ज्यादा मत सनो, कभी-कभी, तो वैराग्य का चिंतन भी कर लिया करो, वैराग्य ही वास्तव में कल्याणदायी है, बिना वैराग्य के किसी का कल्याण नहीं होता। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी जी ने लिखा–रत्तो बंधदि कम्मं।

राग ही जीव को बाँधता है, वैराग्य जीव को आत्मा के गुणों से सम्पन्न करता है इसलिये राग का त्याग करके वैराग्य की उपासना करना चाहिये। 'वैराग्यसारं भज सर्वकालं' वैराग्य ही तीन लोक में सारभूत है उस वैराग्य को आप प्राप्त करो। निर्वेद के बारे में वैदिक ग्रंथ में भी लिखा है–

वैराग्य ही आशारूपी पाश में बंधे पुरुष के लिए तलवार की तरह से है। जैसे तलवार के माध्यम से रस्सी के बंधन काटे जाते हैं ऐसे ही वैराग्य के माध्यम से कर्मों के बंधन काटे जाते हैं।

वैराग्य किसे कहते हैं–जीवन में जो सत्य और असत्य की पहचान कराता है वह वैराग्य होता है और जहाँ राग ढलने लगता है वहाँ द्वेष भी भागने लगता है। जब तक राग है तब तक द्वेष है, राग चला जाता है तो द्वेष भी चला-जाता है।

कल्लड़ कवि हुये उन्होंने राजतरंगिणी ग्रंथ लिखा उन्होंने लिखा–जहाँ द्वेष निकल गया, किसी के प्रति भी द्वेषभाव नहीं है तो आपका राग भी मंद हो जायेगा, आपके मन में किसी के प्रति द्वेष है तो किसी के प्रति राग भी नियम से रहेगा ही रहेगा। द्वेष का नाश

करने से राग पंगु हो जाता है। ऐसे राग को दूर करना चाहिये। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामायण में लिखा वैराग्य के बारे में-

जानूँ जब ही जीव जग जागा।
जब सम विषम विलास विरागा।।

जब प्राणी के जीवन में चाहे सम स्थिति हो या विषम स्थिति हो, चाहे विलास की स्थिति हो भोगों में लिप्त हो यदि उसके जीवन में वैराग्य जाग गया तो समझो वह ज्ञानी पुरुष हो गया, वह जागा हुआ है। जो प्रतिकूलताओं से जूझ रहा है वह भी सोया हुआ है, जो अनुकूलता का फल भोग रहा है वह भी सोया हुआ है, जो भोग विलास में लीन है वह भी सोया हुआ है। जो सम विषम विलास से ऊब गया जिसके चित्त में वैराग्य आ गया वही चेतना जागी हुयी है अन्यथा संसार की सभी चेतना सोयी हुयी हैं। सभी सोयी चेतना जागें, आत्मा के गुणों में पागें और अपने मोक्षमार्ग में लागें, तब ही यह आत्मा परमात्मा बनेगी। आप सबकी आत्मा परमात्मा बने इन्हीं सद्भावनाओं के साथ शब्द श्रृंखला को विराम देते हैं।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।
।।जैनं जयतु शासनं–विश्वकल्याणकारकं।।

नारी निर्मल बने निर्बल नहीं

महानुभाव! आज इस प्रासंगिक विषय पर चर्चा करते हैं, संभव है इस विषय पर चर्चा करने से अनेक भ्रान्तियों का निराकरण हो। जब तक हम किसी धारणा को अपना कर बैठ जाते हैं तब तक हम सत्य से दूर रहते हैं। धारणाओं का खण्डन तभी हो जाता है जब सत्य हमारे सामने प्रगट हो जाता है। सत्य तक वही पहुँच पाते हैं जो सत्य के खोजी होते हैं, सत्यार्थी होते हैं, सत्य को पाने की ललक जिनमें होती है। जो अपनी धारणाओं पर ही सदैव अडिग रहते हैं, दूसरे की बात सुनते ही नहीं वो अपने जीवन में बहुत कुछ खो देते हैं, जो उन्हें प्राप्त करने के लिये आवश्यक था। आज विषय है नारी के संबंध में। 'नारी निर्मल बने निर्बल नहीं'।

शब्द बड़े सरल हैं इनका अर्थ भी सबकी समझ में सहजता से आ रहा है। नारी शब्द का अर्थ प्राय:कर सभी जानते हैं नारी शब्द स्त्री के लिये प्रयुक्त है, नारी शब्द का अर्थ कोई ऐसे करते हैं कि जिसके समान कोई दूसरा शत्रु न हो, वह नारी है। किंतु इस व्याख्या से हम सहमत नहीं हैं। किसी ने अपने अनुभव को शब्दों में जैसे भी लिखा हो, हम उसके अनुभव को नकारते भी नहीं संसार में अनंतजीव हैं, अनंत दृष्टि हैं किंतु हम ऐसा मानते हैं–"न यस्या अरि कोऽपि सा नारी" जिसका संसार में कोई शत्रु नहीं वह नारी है। अथवा–"या न कस्याप्यरि सा नारी" जो किसी की शत्रु नहीं वह नारी है। ऐसी व्याख्या भी विधेय हो सकती है। नारी शब्द दो अक्षर

का शब्द है जब दृष्टि हीनता के साथ डालते हैं तो लगता है नारी एक निम्न कोटि की वस्तु है। जब हेय दृष्टि से देखते हैं तब लगता है नारी में कोई उपादेय वस्तु नहीं है। जब नारी का अवमूल्यन करते हैं तब लगता है नारी तुच्छ है किन्तु नारी का उचित मूल्यांकन किया जाये, नारी के ऊपर दृष्टिकोण विधेय रूप से रखा जाये, सकारात्मक दृष्टि से देखा जाये तो नारी इस विश्व की जननी है। नारी विश्व की आधारशिला है, नारी सुख और शांति की जड़ है।

जिस नारी का चित्त निर्मल है, वह नारी विश्व में बलवान है। नारी निर्बल होती है तो अपनी ही हीनता के कारण, नारी निर्बल होती है तो अपने ही दोषों के कारण इसे स्त्री कहा जाता है, दोषा कहा जाता है, स्वयं को दोषों से आच्छादित करे, जिसके समीप में रहे उसे दोषों से आच्छादित करे, इसलिये नारी को स्त्री कहा। किन्तु ऐसा सर्वथा नहीं, जब नारी अपने आप को निर्बल मान लेती है, तब नारी को कोई सबल कर नहीं सकता। हमें स्वयं का मूल्यांकन करने की सामर्थ्य होनी चाहिये। संसार का कोई प्राणी हमारा मूल्य बढ़ा नहीं सकता जब तक कि हम अपनी दृष्टि में अपना मूल्य न बढ़ा पायें। इसका आशय ऐसा भी नहीं है कि हम गुणवत्ता के बिना अपना मूल्य बढ़ाने की कोशिश करें। यदि ऐसा करते हैं तो हम अहंकार के शिखर पर पहुँच जाते हैं और अहंकार पतन की सीढ़ी है।

तो नारी का आशय एकान्ततः न तो दोषाप्रद है, न नारी का आशय एकान्ततः गुण की खान है किंतु जब जो जिस दृष्टि से विचार करते हैं तब नारी हमें वैसी ही दृष्टिगोचर होती है। यूँ तो इसमें तो कोई संदेह ही नहीं कि कोई उस नारी के बारे में एकान्ततः कहे कि उसके बिना घर चल सकता है, जीवन चल सकता है, उसके बिना हमारे जीवन का सुखद पक्ष कभी दृष्टिगोचर हो सकता

है। मास में भी दो पक्ष होते हैं कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष, चौबीस घंटे में भी दो समय आते हैं एक दिवस और एक रात्रि, काल की अपेक्षा से देखें तो दो काल हैं अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी। ऐसे ही संसार रूपी रथ के दो चक्र हैं जिसे कहते हैं एक नर पक्ष दूसरा नारी का पक्ष। इस संसार रूपी सरिता के दो किनारे हैं जिनसे संसार बहकर जाता है एक पुरुषत्व का किनारा है दूसरा नारीत्व का किनारा है। इनमें से किसी का मूल्य कम न था, न है, न होगा।

नारी के संबंध में और आगे बढ़ते हैं, अगली हमारी दृष्टि नारी के धवल पक्ष पर है। नारी की विशेषताओं को देखने के लिये है, जब हम किसी की विशेषता देखते हैं तब हमारे जीवन में भी विशेषताओं का आविर्भाव होता है, जब हमारी दृष्टि दोषों पर जाती है तब हम निःसंदेह दोषों से भरे हुये कहलाते हैं। जिसके अंदर जो होता है, वह वही देखता है। यदि हम किसी के दोष देख रहे हैं तो संभव है हमारे अंदर दोष निहित हैं, हमारे अंदर दोष नहीं हों तो हम दोषों को नहीं देख सकेंगे, गुण होंगे तो हम गुणों को देख सकेंगे। नारी के अंदर क्या-क्या गुण हैं, नारी को किस-किस रूप में स्वीकार किया गया है।

प्रकृति ने नारी को जीवन का आधार माना है। प्रकृति शब्द ही स्वयं स्त्रीवाचक है, इतना ही नहीं प्रातःकाल से लेकर संध्याकाल तक, संध्याकाल से लेकर प्रातःकाल तक स्त्री पक्ष के शब्द ही हमारे जीवन में ध्वनित होते हैं। जीवन में मिले जुले हैं। प्रातःकाल ऊषाकाल, उसके आगे संध्याकाल शब्द भी नारी पक्ष का, यदि रात्रि में देखो तो निशा या रजनी, शयन करता है तो निद्रा, उसमें भी आता है नारीपक्ष वह है सपना। यदि गुणों की अपेक्षा से देखें तो नारी लक्ष्मी, सरस्वती व दुर्गा का रूप है। वैदिक परम्परा में मुख्य रूप से शक्ति के रूप में दुर्गा को स्वीकार किया, धन के रूप में लक्ष्मी का

रूप स्वीकार किया और विद्या के रूप में सरस्वती का स्वरूप स्वीकार किया ये सभी शब्द नारी वाचक हैं। इस सत्य को कोई नकार नहीं सकता। विद्या शब्द कहो, सरस्वती कहो, शारदा कहो, वाणी, वीणा, प्रमाणी आदि सरस्वती के जो 16 नाम आप पढ़ते हैं, वे सब स्त्री वाचक हैं।

महानुभाव! यदि गुणों की चर्चा दूसरी तरह से करें तो नारी में क्षमा, दया, शांति, कांति, द्युति, मधुरता, सरलता, सहजता, समता, ममता, सजगता, विनम्रता, कमनीयता आदि सभी शब्द स्त्री वाचक ही हैं। इसके अतिरिक्त आस्थावाची शब्दों को देखें आस्था, निष्ठा, श्रद्धा रुचि। पूजा वाचक देखें तो पूजा, भक्ति, स्तुति, वंदना, अर्चना, आरती, संस्तुति आदि शब्द नारी वाचक शब्द हैं। भावना, प्रभावना, अनुभावना, प्रेक्षा, प्रज्ञा, प्रमेया सुमेधा श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि आदि ये सब भी नारी वाचक शब्द हैं। इसके साथ-साथ जीवन में गति, मति, सन्मति, सुमति शब्द भी नारी वाचक हैं। इसके साथ-साथ हम जीवन के किसी भी क्षेत्र में प्रवेश करें उस क्षेत्र में गुणों का प्रतिनिधित्व करने वाले नारीवाचक शब्द प्राय:कर के अधिक मिलते हैं। पुरुष वाचक शब्द कम होते हैं।

पुरुष वाचक शब्द दोषों के लिये ज्यादा प्रयुक्त हुये हैं चाहे असत्य है, लोभ है, क्रोध, मान, पाप, व्यसन आदि शब्द हैं किंतु नारी वाचक शब्द दोषों के लिये कम प्रयोग में मिलते है अहिंसा शब्द गुण वाचक है, करुणा, दया, नि:संगता शब्द भी गुण के प्रतीक स्त्रीवाचक हैं। स्त्रीवाचक शब्द यही संकेत कर रहे हैं कि स्त्री को तुम एकांतत: अपने जीवन में दु:खद मत मान लेना, स्त्री एकांतत: दु:ख की कारण नहीं है। नारी के नयन कटोरों में करुणा का जल सदा छलकता रहता है, नारी विषय वासना की मूर्ति भी किसी ने मानी है तो नारी सरलता, सहजता, क्षमा की प्रतिमूर्ति भी मानी है।

नारी के जिस रूप को भी देखते हैं वह रूप जीवन में महत्वपूर्ण दिखाई देता है।

नारी यदि बाल्यावस्था में है तो वह उस घर की कली है, उस घर में आनंद की वर्षा करने वाली होती है, जिस घर में बच्चियाँ चहकती रहती हैं उस घर में स्वर्ग का वास होता है। जिस में बच्चियों की किलकारियाँ नहीं होती उस घर के सभी पर्व और त्यौहार फीके होते हैं, सूने होते हैं। वह बाला के रूप में भी सुख देने वाली होती है, कन्या के रूप में भी और रोहिणी के रूप में भी सुखद होती है। चाहे वह किशोरी है या युवती हर रूप में सुखद होती है। नारी जब बाल्य अवस्था में है, घर के सभी सदस्यों के लिये आनंद का केन्द्र बनती है। पिता जब शाम को घर लौटते हैं अपनी गोद में लेकर के जिस आनंद का अनुभव करते हैं वह आनंद स्वर्ग के देवताओं के लिये दुर्लभ ही नहीं असंभव है। पिता की लाडली जब पिता की बाहों में आती है तब पिता को लगता है मुझे स्वर्ग का वैभव ही मिल गया। उसके चित्त में जो आनंद की अनुभूति होती है उस लाड़ली को लेकर शायद वह अनुभूति करोड़ों रुपये खर्च करने के उपरांत भी नहीं मिलती।

नारी जब कन्या होती है तब मंगल रूप में होती है, वह मंगल है, धवला है वह शुभ शकुन होती है। यदि बाला रूप से सामने दिखाई दे जाये तब भी मंगल मानी जाती है, युवती है तब भी मंगल मानी जाती है, वृद्धा नारी है तब भी मंगल मानी जाती है। शायद पुरुष को ऐसा मंगल नहीं माना गया। नारी जब युवती होती है तब मनुष्य को सुख देने वाली होती है, वह मिष्ट स्वादिष्ट, पौष्टिक, स्वास्थ्यवर्धक भोजन बनाकर के अपने परिवार को संचालित करती है। इतना ही नहीं नारी मंगलाचार करने वाली होती है उसके कंठ में ऐसी मधुरिमा होती है, ऐसा कहते हैं कि सरस्वती का वास है।

नारी वृद्धा होती है तब भी अपनी छत्र छाया में अपने परिवार का संचालन सकुशलता के साथ करती है। ऐसा कौन सा परिवार है जो नारी का ऋणी नहीं होगा, जिसका पूरा संसार ऋणी है वह गृहिणी है। क्योंकि उसके बिना घर ही नहीं है। लोग कहते हैं घर में नारी न हो तो चलेगा किंतु नीतिकार कहते हैं जिस घर में नारी नहीं वह घर, घर ही नहीं। घर के बिना आपका भवन हो सकता है, मकान हो सकता है चार दीवारें खड़ी हो सकती हैं पर घर गृहिणी से बनता है। गृहिणी के बिना कोई घर नहीं होता।

वह नारी हमारी बाल्य अवस्था को अपनी छत्रछाया देकर के अपने आँचल की छाया देकर के, अपना अमृतोपमा दुग्धपान करा करके बाल्य अवस्था का संरक्षण व संवर्धन करती है। अपनी छत्रछाया में सुसंस्कारों से संघोषित करती है। नारी इसके पहले भी गर्भ अवस्था में जीव को धारण करके उसका संसार बनाती है। नारी के बिना नर हो या नारी किसी का जन्म लेना संभव नहीं है। प्रथमत: नारी ही उसे उत्तम शिक्षा देकर के सैकड़ों अध्यापकों का कार्य करती है। जो कार्य सैकड़ों अध्यापक न कर पायें, जो संस्कार कई आचार्य न दे पायें वो सुसंस्कार नारी की झोली में रहते हैं, उनके माध्यम से वह अपने शिशु का संवर्धन करती है।

महानुभाव! नारी के बिना पुरुष का यौवन सुखद नहीं हो सकता और नारी के बिना किसी वृद्ध पुरुष का जीवन निराकुल नहीं होता, नारी वृद्धों के लिये एक सहारा होती है। नारी बाल्यावस्था में छत्र छाया देने वाली होती है, यौवन अवस्था में युवा के लिये सुख देने वाली होती है और वृद्धावस्था में नारी जीवन साथी के लिये सहायक की तरह से होती है। जिसका जीवन साथी चला गया वह पुरुष अपनी सहधर्मिणी के बिना अपना जीवन ऐसे बिताता है जैसे गंध से रहित पुष्प, नीर से रहित नदी, घृत से रहित दुग्ध मिठास से रहित

कोई मीठा, ऊष्णता से रहित कोई अग्नि। नारी के बिना नर का जीवन शुष्क हो जाता है उसमें कोई स्वाद नहीं रहता, नीरस हो जाता है। नारी की महिमा गाते हुये नीतिकारों ने लिखा है–

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमंते तत्र देवता:।''

जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवताओं का वास होता है किन्तु नारी शील आदि गुणों से सुशोभित हो। शील नारी का चरम व परम सौन्दर्य है। सरलता सहजता आदि गुण तो नारी की विशेषताएँ हैं जिनके बिना नारी अपने सही मूल्य को प्राप्त करने में असमर्थ होती है। नारी जब इन गुणों से सहित होती है तब नारी नि:संदेह एक मोक्षगामी की जननी बन जाती है।

जब भी पुरुष हारकर के आता है नारी के अंक में आता है। हारे हुये पुरुषों को पुरुषों ने स्थान नहीं दिया, हारे हुये पुरुषों को भी नारी संभालती है। जिस पुरुष के पैर लड़खड़ा रहे हों उन पैरों को संभालने वाली भी नारी ही होती है। यदि कोई पुरुष सर्वोच्च चोटी पर पहुँचा है, उन्नति के सर्वोत्तम शिखर तक पहुँचा है तो आप देख लेना उसके पीछे कहीं न कहीं किसी नारी का हाथ अवश्य होगा। उस नारी की कहीं न कहीं प्रेरणा रही होगी। उस नारी का कहीं न कहीं सहयोग होगा। नारी की प्रेरणा नर से ज्यादा काम करने वाली होती है। जो काम सौ पुरुष न कर पायें उस काम को एक नारी कर सकती है।

"अपमान मत करना नारियों का, इनके बल पर जग चलता है।
पुरुष जन्म लेकर के तो, इन्हीं की गोदी में पलता है।"

ऐसा कौन सा पुरुष है जो नारी की कुक्षि में न आया हो, नारी की गोद में न खेला हो। वह पुरुष ही सर्वोच्च तक पहुँच पाया है जिसके मूल में नारी के संस्कार हों, गर्भ से ही संस्कार लेकर के

चाहे कोई भी महापुरुष हो तीर्थंकर, चक्रवर्ती, कामदेव, बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण, कुलकर आदि कोई भी हो सभी ने नारी के गर्भ से ही जन्म लिया। गर्भ से मात्र जन्म ही नहीं लिया वरन् जन्म के साथ-साथ शरीर का निर्माण कर सुसंस्कारों को वहाँ से लेकर के आये। नारी ने वहाँ से सुसंस्कार देना प्रारंभ किया, वहाँ से शक्ति देना प्रारंभ किया, वहाँ से मुक्ति के संस्कार देना प्रारंभ किया, भक्ति का संस्कार देना प्रारंभ किया, साहस-धैर्य देना प्रारंभ किया, वहाँ से दिव्यज्ञान की ज्योति जलाना प्रारंभ किया तब पुरुष उसका संवर्धन करते-करते वहाँ तक पहुँच गया।

महानुभाव! नारी पुरुष के लिये तब संबल बन सकती है जब स्वयं अपने आप में भी संबल बने। नारी निर्बल नहीं निर्मल बने, अपने चित्त के मल को दूर करे। नारी के चित्त में कौन सा मल होता है? नारी के चित्त में सबसे बड़ा मल होता है ईर्ष्या का मल। नारी की शत्रु नारी है नर नहीं। यदि नारी ने कहीं दु:खों के बादलों को देखा है, विपत्ति या संघर्ष का सामना किया है तब नि:संदेह समझ लेना उस नारी के साथ किसी नारी ने ही अत्याचार किया होगा। नर उस अत्याचार में सहयोगी रहा होगा पर कहीं न कहीं भूमिका नारी की ही रही होगी। यदि नारी जो करुणा-दया-ममता की मूर्ति कही जाती है यह नारी कहीं उल्टी हो जाये तो संभव है इससे बड़ी क्रूर भी कोई नहीं हैं। क्रूरता इसका दुर्गुण हैं इसलिये गर्भपात जैसे दोषों का कहीं नाम सुना जाता है तो नारी की कमजोरी के कारण!

यदि नारी संकल्प कर ले फिर पुरुष कुछ भी कहे वह कहती है मेरे गर्भ में चाहे कोई भी आया है मैं तो स्वयं को मरुदेवी की तरह मानती हूँ वह ऋषभ देव ही आया होगा, मैं उस आने वाले भगवान् का कत्ल नहीं करा सकती। नारी संकल्प कर ले कि मेरे गर्भ में महावीर स्वामी जैसा पुण्यात्मा जीव आया है मैं उसको अलग

नहीं करवा सकती। नारी संकल्प कर ले तो पुरुष में क्या सामर्थ्य कि भ्रूण हत्या जैसे निकृष्ट पाप इस धरती पर हो सकें। कहीं न कहीं इसमें नारी का दोष है, चाहे वह नारी सास बनके, नंद, जेठानी, देवरानी बनकर या मित्र बनकर उसे प्रेरित करती है उस घृणित पाप के लिये। उसे प्रेरित करने वाली कोई न कोई नारी ही होती है और कहीं दुश्मन होती है कि गर्भ में कन्या आयी तो उसका हनन कराने वाली भी नारी ही होती हैं।

पुरुष कहता है कोई बात नहीं मैं तो अपनी बेटी को ही बेटे से बढ़कर मानता हूँ। पुरुष का जितना स्नेह अपनी पुत्री के प्रति होता है शायद उतना स्नेह अपने पुत्र के प्रति नहीं होता है। यह प्रकृति का नियम है कि पिता का स्नेह पुत्री के प्रति ज्यादा होता है और माँ का स्नेह पुत्र के प्रति ज्यादा होता है। इसलिये मैं इस बात को दावे के साथ कह सकता हूँ कि इस भ्रूणहत्या में सबसे ज्यादा दोषी होती है तो नारी होती है।

यह नारी के चित्त की कमजोरी है, वह चाहती है मेरे गर्भ से पुत्र ही पैदा हो। यदि इस बात को तुम्हारी माँ भी सोच लेती तो कहाँ से जन्म होता नारी का। तो यह नारी का मल है क्रूरता व ईर्ष्या। यह उसके चित्त की कमजोरी है इसलिये नारी का चित्त निर्मल नहीं हो सकता। पवित्र नारी जो होती है उसे ईश्वर का रूप कहा जाता है। 'वृद्धानारी ईश्वरी' वृद्धा नारी ईश्वर की तरह होती है उससे ज्यादा सरल सहज कोई बालक भी न हो। इसीलिये वह नारी अपने चित्त के मल को दूर करे।

नारी में असहिष्णुता भी होती है यदि सहनशीलता का गुण उसके अंदर प्रगट हो जाये तो नारी से बढ़कर के कोई अच्छा मित्र नहीं हो सकता किन्तु उसके अंदर कई बार जो असहिष्णुता आती है उसके कारण वह एक ही क्षण में अपने बने बनाये काम को बिगाड़

देती है। इसलिये नारी के लिये मूर्खा शब्द का प्रयोग भी कई बार किया जाता है क्योंकि वह ये नहीं समझती कि वह अपने पैरों पर कुल्हाड़ी पटकती है। वह बाद में पश्चाताप के आँसू भी चाहे जिंदगी भर बहाती रहे, किंतु जब आवेश में आती है तब अपने काम को स्वयं ही बिगाड़ लेती है। क्षण भर का उसका आक्रोश, क्षण भर का उद्वेग ही उसके अच्छे जीवन में चिंगारी की तरह से काम करने वाला होता है। जिससे उसके जीवन का चमन स्वयं ही उजड़ जाता है।

महानुभाव! नारी अपनी सहनशीलता की चरम सीमा तक पहुँच जाये तो दावे के साथ कह सकते हैं कि पुरुष भी उसके चरणों में झुक जाये। अंजना ने शिकायत नहीं की पवनंजय से। 22 वर्ष तक जब उनके पति उनके पास नहीं पहुँचे, वह दूर से ही दर्शन करके संतुष्ट होती थी ऐसी अंजना सती किंतु 22 साल बाद पुरुष को अपनी भूल का अहसास हुआ तो वह पुरुष भी नारी के चरणों में झुक गया। श्री राम चन्द्र जी ने सीता जी का परित्याग किया पर सीता जी ने रामचन्द्र जी को दोष नहीं दिया, सीता जी ने ये कहा कि यह मेरे कर्म का ही दोष है उनका इसमें कोई दोष नहीं किन्तु हाँ मेरा उनके चरणों में निवदेन कहना कि जिस लोकव्यवहार के कारण उन्होंने मेरा परित्याग किया कहीं लोक निंदा के कारण पवित्र जिनधर्म को नहीं छोड़ देना। राजुल को श्री नेमिनाथ ने छोड़ा पशुओं के प्रति करुणा दया का भाव प्रकट हुआ, उन्होंने कहा मेरे ऊपर दया क्यों नहीं की? उन्होंने मौन उत्तर दिया नौ भव से मेरी तुम्हारे साथ प्रीति थी, तो यह प्रीति करुणा में नहीं बदलती अब करुणा मैं तुम पर भी करने जा रहा हूँ यह प्रीति मोह बन जाती है और हम दोनों मोह के बंधन में बंधे रहे। मैंने अपने मोह के बंधन तोड़े वे इसलिये तोड़े ताकि मुझे देखकर तुम भी अपने मोह

के बंधन तोड़ सको। और जब नेमिनाथ ने राजुल को स्वीकार नहीं किया तब फिर राजुल ने भी आर्यिका दीक्षा लेकर के आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त किया।

स्त्रियों में कितने उदाहरण मिलते हैं जिन्होंने अपनी सहनशीलता का उदाहरण चरम सीमा तक दिया। चाहे अमूढ़ दृष्टि अंग में प्रसिद्ध रेवती रानी रही, चाहे अनंगमती रही, चाहे सुरसुंदरी, मैना सुंदरी, रयणमंजूषा, मनोरमा, ब्राह्मी-सुंदरी, सुलोचना, चंदनबाला, मदनलेखा आदि अनेक नारियों के नाम शास्त्रों में चौथे काल में आये। रावण चाहे भले ही प्रतिनारायण क्रूर था पर उसकी रानी मंदोदरी नीति निपुण थी। चाहे धृतराष्ट्र अन्याय के पक्ष में मुड़ गये और दुर्योधन ने चाहे भले ही युद्ध किया किन्तु गान्धारी फिर भी न्याय निपुणता के साथ चलने वाली रही। द्रोपदी ने चाहे आवेश में आकर के अपमान कर दिया किन्तु फिर भी अपने शील की रक्षा करने के लिये प्रभु की भक्ति, आराधना, उपासना की।

माँ कुन्ती ने किस प्रकार अपने सतीत्व का संरक्षण, पुत्रों का संरक्षण और सत्य की रक्षा की। उनका चित्त कितना सरल हो गया था कि वह कुन्ती स्वयं दुर्योधन के समीप जाती है। जब पाण्डव वनवास में थे, तब वह क्षमा के लिये उनके पास जाती है। विदुर ने कुन्ती से कहा भी कि तुम वहाँ क्यों जाती हो, उन्हें ही तुम्हारे पास आना चाहिये। संभव है वे आपको क्षमा न भी करें। कुंती ने कहा—आप ठीक कहते हैं, वे मुझे क्षमा न भी करें, और मुझे नहीं जाना चाहिये, यदि माँ की दृष्टि से सोचूँ तो मुझे भी ऐसा ही लगता है किन्तु मैं अपनी दृष्टि से सोचती हूँ तो मैं वहाँ इसलिये जा रही थी, कि मुझे अपना चित्त पवित्र करना है, मेरे चित्त की निर्मलता-पवित्रता, शुद्धि-विशुद्धि मेरे हित में सहायक होगी। वे मुझे क्षमा करें या न करें ये उनका कर्म है किंतु क्षमा माँगना मेरा धर्म है।

मेरे चित्त की पवित्रता मेरा कल्याण करेगी, दूसरे की चित्त की गंदगी मेरा अहित नहीं कर सकती।

ऐसे न जाने कितने उदाहरण शास्त्रों में पढ़ने-सुनने में मिलते हैं। चाहे वज्रमुष्टि की पत्नी मंगी हो, चाहे अन्य-अन्य भी नारी हों उन एक-एक नारी के चरित्र को पढ़ो तो लगता है धन्य है ऐसी नारियाँ। पट्टमहादेवी शान्तला, अत्तिमब्बे, गुल्लिका अज्जी, सिंहिका, मंदालसा, रानी सिंधुला, दमयन्ती कितने नाम नहीं आते। कौशल्या और केकया को भी देखो उनका जीवन चरित्र भी आप यथार्थ में पढ़ोगे तो आपको लगेगा कि न तो कैकया अपनी जगह गलत थी, न कौशल्या अपनी जगह गलत थी। नारी के त्याग को भी देखें तो वनमाला (लक्ष्मण की पत्नी) अथवा वे नारियाँ जिन्होंने पुरुष की तरह राज्य किया व पुरुषों के लिए प्रेरणा बनीं। जहाँ पुरुष कमजोर पड़ गया वहाँ देश रक्षा के लिये, धर्म रक्षा के लिये, परिवार रक्षा के लिये, अपने शील व सतीत्व की रक्षा के लिये, अपने गुणों की रक्षा के लिये अपनी आन-बान-शान-मर्यादा की रक्षा के लिये नारियों ने बहुत कुछ कुर्बान किया, अपना बलिदान कर दिया।

चाहे लक्ष्मीबाई के रूप में देखो, चाहे जीजाबाई के रूप में देखो, चाहे अहिल्याबाई के रूप में देखो, झलकारी बाई के रूप में देखो, चाहे जयवंता या उर्मिला के रूप में देखो। उस नारी का रूप ऐसा रहा कि जिस रूप को देखकर के लगता है कि यदि धर्म भी जीवंत है तो नारी के माध्यम से इला देवी, जिनदत्ता, अर्हदासी, जिनमती इत्यादि नारियाँ ऐसी रहीं जिन्होंने धर्म की रक्षा के लिये न केवल स्वयं कुर्बानी दी वरन् दूसरों को प्रेरणा भी दी। रानी चेलना को देखो किस तरह वारिषेण में संस्कार दिये कि उपसर्ग आने पर भी धर्म से विचलित नहीं हुये, चेलना ने अजातशत्रु को जन्म दिया जिसने पूरे भारत को एक करके अखण्ड भारत पर शासन किया।

ये सभी नारियाँ निःसंदेह इस भारत देश के लिये नहीं विश्व के लिये प्रेरक हैं, निमित्त हैं। इन्होंने समय-समय पर विश्व को एक नयी दृष्टि भी दी है। और नया आयाम भी दिया है। यह नारी किसी भी क्षेत्र में कम नहीं हैं। वर्तमान में देखें तो चाहे सुधाचन्द्रन, अरुणिमा सिन्हा, किरण बेदी, लक्ष्मी अग्रवाल, सीमा राव, भक्ति शर्मा, सिंधुताई, लता खरे इत्यादि जिन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि नारी किसी भी क्षेत्र में पीछे नहीं। आज भी जो नारियाँ अपने सतीत्व की रक्षा करते हुये आगे बढ़ रही हैं वह जग के लिये प्रेरक हैं किन्तु जिन नारियों ने अपने ही सतीत्व के साथ खिलवाड़ किया है उन नारियों से यह भूमि अपवित्र होती है, कलंकित होती है कुल कलंकित होता है।

नारी को जीवन में ऐसे ही माना जाता है जैसे भवन में जीना। जीने के समान ही नारी का महत्व है। जीना (सीढ़ी) के माध्यम से व्यक्ति ऊपर छत तक जा सकता है और उसी के माध्यम से नीचे उतर कर भी आ सकता है। हम मानते हैं युवा पिलर की तरह से होता है, बच्चे छत की तरह से होते हैं, वृद्ध नींव की तरह से होते हैं, और प्रौढ दीवारों की तरह से होते हैं किंतु घर में जीने की तरह से होती है तो नारी ही होती है। नारी ही प्राय:कर हर दम ऊपर जाने की प्रेरणा देती है, किन्तु जो व्यक्ति नीचे गिरना चाहे वह नारी के माध्यम से नीचे गिर भी सकता है।

नारी के संबंध में हम इतना ही कहना चाहते हैं कि इस जीवन चक्र में नारी ऐसे ही है जैसे नदी के दो किनारे होते हैं—एक किनारा पुरुष है तो दूसरा किनारा नारी। दोनों किनारों के माध्यम से ही वह सरिता अबाध गति से बहती हुयी सागर तक पहुँच पाती है। हम नारी नर को मानें कि वे एक रथ के दो पहिये हैं। यदि गृहस्थ जीवन का रथ चलता है तो नर-नारी दो पहियों के माध्यम से चलता है कभी

ये नहीं कहा जा सकता कि रथ का एक पहिया ज्यादा महत्वपूर्ण है दूसरा पहिया कम महत्वपूर्ण। पक्षी आकाश में उड़ता है तो दोनों पंखों से उड़ता है एक पंख नर की तरह से है दूसरा नारी की तरह से, कभी ये नहीं कहा जा सकता कि एक पंख ज्यादा महत्वपूर्ण है दूसरा कम महत्वपूर्ण। यदि सिक्के के दो पहलू होते हैं तो ये नहीं कहा जा सकता कि एक पहलू ही महत्वपूर्ण है दूसरा नहीं। किसी भी इलेक्ट्रिक इंस्ट्रयूमेंट में दो वायर होते है। एक को नर की तरह मानें दूसरे को नारी की तरह से तो दोनों में से किसी का महत्व कम नहीं आंका जा सकता, दोनों के बिना विद्युत उपकरण समीचीन रूप से संचालित नहीं हो सकते।

नेत्र दो होते हैं, दोनों नेत्रों का महत्व समान होता है किसी भी नेत्र के महत्व को कम नहीं किया जा सकता, कर्ण दो होते हैं दोनों का महत्व समान है ऐसे ही नर और नारी का महत्व समान है, श्वसन क्रिया के लिये नासिका के दो छिद्र हैं दोनों छिद्रों का महत्व बराबर है, ओष्ठ भी दो हैं दोनों का महत्व बराबर है। किसी के महत्व को कम आँका तो समझो हम स्वयं के साथ ही धोखा कर रहे हैं। यदि नर ऑक्सीजन देने की तरह से है तो नारी कार्बनडाइ ऑक्साइड छोड़ने की तरह से है। कोई व्यक्ति ऑक्सीजन लेता ही लेता जाये तब भी जी नहीं सकता और छोड़ता ही छोड़ता जाये तब भी जीवन नहीं जी सकता।

ऐसे ही जीवन न तो केवल नर से चल सकता है और न केवल अकेले नारी से चल सकता है। दोनों का महत्व उतना ही है। यदि दूसरी तरह से देखा जाये तो नर दूध की तरह से है नारी उसमें घुलने वाली मिश्री की तरह से है। पुरुष पुण्य की तरह से है नारी पुण्य के सौन्दर्य की तरह से है, पुरुष भवन की तरह से है तो नारी भवन की सुन्दरता व जीवंतता है। पुरुष अगर महज एक पुद्गल का

आकार है उस पुद्गल के आकार में प्रेम का प्राण फूँकने वाली जीवन संजीवनी वह नारी ही होती है। इसलिये नारी के महत्व को किसी भी प्रकार से कम नहीं आँकते।

दूसरी दृष्टि से देखें तो पुरुष पुरुष है नारी उसकी साधना है, पुरुष सूर्य है तो नारी उसकी ज्योति है, पुरुष चन्द्रमा है तो नारी उसकी चाँदनी है, पुरुष जल है तो नारी उसकी शीतलता है, पुरुष यदि गुण है तो नारी उसकी गुणवत्ता है, किसी भी क्षेत्र में हम नारी के मूल्य को कम नहीं कर सकते। नारी का मूल्य इस काल में भी उतना ही है, पूर्वकाल में भी उतना ही था, और आगे भी उतना ही रहेगा जो महत्व सूर्य का है वह उतना ही है किन्तु उसका महत्व पूर्व दिशा से है। पूर्व दिशा न हो तो सूर्य उदय नहीं हो सकता, इसी तरह से यदि नारी न हो तो नर उत्पन्न नहीं हो सकता।

वृक्ष की जड़ होती है तब वृक्ष होता है, जड़ नहीं हो तो वृक्ष वृद्धि को प्राप्त नहीं होता, वृक्ष को ऊपर जाने के लिये आकाश कितना भी ऊपर खुला है किंतु जड़ जितनी गहरी होती है वृक्ष उतना ऊँचा पहुँच जाता है। उसी तरह से जिस पुरुष के जीवन में नारी का जितना बड़ा सहयोग मिल सकता है, जितनी बड़ी प्रेरणा मिल सकती है पुरुष उतनी ऊँचाईयों को छू सकता है। ऊँचाई छूने के लिये बाहर की प्रकाश, हवा, ऑक्सीजन आदि जितना आवश्यक है उतना ही आवश्यक है जड़ों में खाद व पानी का पहुँचना। यदि जड़ों में खाद-पानी नहीं पहुँचेगा तो वृक्ष वृद्धि को प्राप्त नहीं होगा। पुरुष के लिये भी बाहर का माध्यम कितना भी अच्छा हो किन्तु जिस नारी ने दुर्गुणों को, कुसंस्कारों को पुरुष के अंदर गर्भ से ही भर दिया है तो फिर अच्छी संगति में आकर के भी वह पुरुष अपना कल्याण कर नहीं पायेगा। किंतु जिस नारी ने उस पुरुष के अंदर गर्भ से ही सुसंस्कार दे दिये तो वह पुरुष भटक भी जाये, सत्संगति को

पाकर आज नहीं तो कल कभी न कभी वह सही मार्ग पर आ ही जायेगा।

ललितांग कुमार अपनी माँ के अच्छे संस्कारों को प्राप्त करके पहले राजकुमार था किन्तु कुसंगति को प्राप्त कर बिगड़ गया और चोर बन गया किंतु बाद में उन्हीं माँ के संस्कार स्मृति में आये वही ललितांग (अंजनचोर) विद्या सिद्ध करके आकाशगामिनी विद्या सिद्ध करता है पुनः यथाजात दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण करके उसी भव से मोक्ष को प्राप्त करता है। सुसंस्कार कभी नष्ट नहीं होते, जो संस्कार गर्भ में दिये हैं वे मृत्युपरांत नष्ट नहीं होते क्योंकि ये सुसंस्कारों का ऐसा झरना है ऐसी नदी है जो पर्वत से निकली है तो समुद्र तक ही पहुँचेगी। रास्ते में मिलने वाले नाले तो बहुत होते हैं जो आज दिखाई देते हैं कल लुप्त हो जाते हैं। जीवन में बाहर से कोई पुरुष संस्कार प्राप्त करता है संभव है वे संस्कार नष्ट भी हो जायें किन्तु जो संस्कार गर्भ के माध्यम से प्राप्त होते हैं वे संस्कार यावज्जीवन चाहे हम किसी भी रूप स्वरूप में रहें वे यावज्जीवन परिलक्षित होते हैं।

महानुभाव! इसलिये नारियों को आचार्यों ने कहा कि यह पुरुष का सच्चा साथी है, संरक्षक है।

विपदाग्रस्ते अग्रा भवति, संपत्तिस्तु अनुचरा

नारी विपत्ति के समय आगे-आगे चलती है वह सोचती है पुरुष के सब संकट मुझे मिल जायें। और आपने ये शब्द कई बार सुना होगा, आपका जीवन साथी जो कोई भी होगा वह कष्ट में हैं, दुःख में हैं, रोग से पीड़ित है तो नारी एक ही शब्द कहेगी हे भगवान्! उनके सारे कष्ट मुझे मिल जायें, हो सकता है पुरुष ये शब्द न कह पाये। विपत्ति के समय वह नारी सदा आगे रहना चाहती है। श्री रामचन्द्र जी से कहती हैं सीता जी आपकी अविनय होगी अन्यथा

वनवास के समय मेरा मन है कि मैं आपके आगे-आगे चलूँ, मार्ग के काँटों को साफ करती चलूँ। तो नारी ये चाहती है सब आपत्ति विपत्ति संकट मैं सहन कर लूँ और आश्चर्य की बात तो यह है पुरुष के सारे दुःखों को लेकर भी आनंद का अनुभव करती है। पुरुष हारा थका है उसकी थकान को दूर करने के लिये उसके मन को बहलाने के लिये यथा तथा प्रयत्न करती है, मधुर भोजन कराती है, मीठी वाणी से उसका मन लगा रही है संभव है यह कार्य पुरुष के द्वारा नहीं हो सकता। नारी के हाथों में न जाने कोई शक्ति या जादू होता है, यदि पुरुष, पुरुष के हाथ का भोजन करे तो दो ग्रास कम खाये और नारी के हाथ का बना खाये तो दो ग्रास ज्यादा खाये।

साधुओं के लिये भी कहा कि साधु जब आहार लेते हैं तो वह आहार देने वाली बाला कन्या ही क्यों न हो वह उसे माँ के रूप में देखते हैं। माँ के अंदर वह भाव होता है क्योंकि जब वह भोजन कराने बैठती है तो निःसंदेह उसका मन यही रहता है कि मैं इसे न जाने क्या-क्या खिला दूँ। तो नारी की यह प्रकृति है वह विपत्ति में आगे रहती है और जब सुख-सम्पत्ति आती है तो पीछे-पीछे चलती है। वह चाहती है जो भी उत्कृष्ट वस्तु है उसको भोगने का अधिकार पुरुष को है और वह उत्कृष्ट वस्तु पुरुष को देकर के भी संतुष्ट होती है।

महानुभाव! ये नारी की प्रकृति है कि वह समर्पण में जी सकती है इसलिये नारी पुरुष से ज्यादा बुद्धिमान होती है। आप कहेंगे ये बात समझ नहीं आयी कि पुरुष तो पढ़-लिखकर बहुत आगे पहुँच जाते हैं, आप कह रहे हैं कि नारी उनसे ज्यादा बुद्धिमान होती है। हाँ पुरुष बहुत पढ़े लिखे होते हैं, बहुत ज्ञानी होते हैं पर उतने समझदार नहीं होते। नारी कम पढ़ी लिखी हो तब भी समझदार होती है, जो नारी ज्यादा पढ़ जाती है पुरुष जैसी बन जाती है अपनी प्रकृति को भले

ही छोड़ दे किंतु कम पढ़ी-लिखी नारी पुरुष से ज्यादा समझदार होती है। हो सकता है किसी प्रसंग को पाकर के नारी को गुस्सा न आये, पुरुष को गुस्सा सहज ही आ जाये।

जीवन में पुरुष कभी समर्पण में नहीं जी सकता, पुरुष हमेशा जीता है तो अहंकार में जीता है जिस पुरुष को अपना बनाना हो, उस पुरुष की नारी प्रशंसा करती जाये-करती जाये। कितना भी बड़ा पुरुष हो पानी-पानी हो जायेगा अपने अहंकार का पोषण देखकर के नम्रीभूत हो जायेगा। किंतु नारी हमेशा समर्पण में जीती है, पुरुष ही उसका अहंकार होता है पुरुष ही उसका आलम्बन होता है, पुरुष ही उसका सहारा होता है। पुरुष अशोक वृक्ष की तरह से है नारी लता की तरह से है वह वृक्ष की वृद्धि को अपनी वृद्धि मानती है जितना पुरुष वृद्धि को प्राप्त होगा वह लता भी उतनी ही वृद्धि को प्राप्त होती है। उसकी भावना ऐसी होती है इसलिये नारी का महत्व अपने आप में और बढ़ जाता है।

नारी समाज का जीर्णोद्धार करने वाली, प्रेमरसिका, नारी के बिना समाज का सौन्दर्य बिल्कुल नीरस है। नारी समाज को जोड़ने वाली एक कड़ी होती है जैसे ट्रेन के डिब्बों को जोड़ने के लिये कड़ी होती है वैसे ही पूरे परिवार को जोड़ने के लिये नारी की अहम् भूमिका होती है। यदि नारी चाहे तो जैसे माला टूटने पर सारे मोती बिखर जाते हैं वैसे नारी पूरे परिवार को बिखेर भी सकती है और नारी चाहे तो धागा बनकर के पूरे परिवार को मोती की माला की तरह जोड़ भी सकती है। नारी की सामर्थ्य ऐसी है। इसीलिये मनीषियों ने कहा नारी से बढ़कर के विश्व में कोई श्रेष्ठ शिल्पकार नहीं, नारी परिवार रूपी मंदिर में परमात्मा को गढ़ने वाली शिल्पकार है, नारी समाज रूपी भवन को बनाने वाली श्रेष्ठ वास्तुकार है, नारी श्रेष्ठ निर्देशक है उसके माध्यम से ही परिवार में धर्म का संवहन व

संवर्धन होता है। जिस परिवार में नारी धर्म का संवर्धन करने वाली न हो, पुरुष लाख प्रयास करे उस घर में धर्म का जन्म हो नहीं सकता। नारी चाहे तो पूरे परिवार को धर्मात्मा बना सकती है। पुरुष धर्मात्मा नहीं बनना चाहे, चाहे अत्याचार भी करे तब भी नारी उस अत्याचार को सहन करके भी उसे धर्मात्मा बना देगी। इसलिये नारी का दूसरा नाम धर्मपत्नी भी आता है। वह धर्म की प्रेरणा देने वाली होती है, पुरुष के लिये धर्मपति कभी नहीं लिखते। धर्मपति तो केवल एक ही पुरुष होता है वो हैं तीर्थंकर प्रभु जिन्हें धर्म चक्राधिपति कहा जाता है। नारी धर्मपत्नी घर-घर में है। जब तक धर्म के संस्कारों का संरक्षण करने वाली नारी जीवंत है तब तक निःसंदेह मानना चाहिये धर्म नष्ट नहीं हो सकता।

गुणगण-गणनारंभे अंबा नाम तु अग्रिमा

यदि गुणी जनों की गणना की जाये तो सबसे पहला नाम माता का आयेगा। ये बात बिल्कुल सत्य है, क्योंकि जिस पुरुष का नाम तुम लोगे वह पुरुष कहेगा मेरे अंदर में गुण मेरी माँ के माध्यम से आये तो उस पुरुष से बड़ी उसकी माँ हो गयी। माँ ही गुणों की पुंज है। नारियों ने भूतल को पवित्र किया है।

सतीत्वेन महत्त्वेन वृत्तेन विनयेन च।
विवेकेन स्त्रियः काश्चिद् भूषयन्ति धरातलम्॥

आचार्यों ने लिखा है—नारियों ने अपने सतीत्व के प्रभाव से शील के प्रभाव से दुष्ट पुरुषों को भी ठिकाने लगा दिया है। शील के प्रभाव से ऐसा चमत्कार करके दिखाया कि विश्व आश्चर्य चकित हो गया। और आपको एक नहीं पचासों उदाहरण ज्ञात हैं। सीता जी ने ऐसा चमत्कार दिखा दिया कि अग्निकुण्ड में कूद कर के जल कुण्ड बना दिया। किसी पुरुष का उदाहरण पढ़ने में आया हो तो बता देना। सोमासती ने नाग का हार बना दिया, किसी पुरुष का

उदाहरण आया हो तो बता देना, मनोवती, नीली और मनोरमा के प्रसंग विख्यात हैं कि पाँव लगाते ही फाटक खुल गया या गजमोती देवों ने लाकर दिये थे किसी पुरुष द्वारा हुआ हो तो बता देना। मैना सुंदरी ने अपने पति का कुष्ठ रोग दूर किया, किसी पुरुष ने अपनी पत्नी का रोग दूर किया हो तो बता देना। ऐसे उदाहरण विरले ही मिलेंगे और यदि किसी पुरुष ने ऐसा किया भी होगा तो जिदंगी भर दंभ से कहेगा मैंने तुझे बचा लिया वरना तू मर जाती, किंतु नारी ने कभी नहीं कहा होगा कि मैंने तुम्हें बचा लिया वरना आप मर गये होते, कभी दंभ की बात नहीं कही होगी।

तो नारियों ने अपने सतीत्व के माध्यम से, अपने शील के माध्यम से, अपनी ममता, समता, सहनशीलता के माध्यम से अपनी व्रत-चर्या संयम के माध्यम से अपने विवेक बुद्धिमता के माध्यम से इस भूतल को पवित्र किया है। यह भूतल निःसंदेह अपवित्र भी हो सकता था किंतु यहाँ नारियों के चित्त की पवित्रता भी है, पर्वत से गिरती हुये झरने की तरह से यह नारी जब सरिता बनकर बहती है, अहंकारी पर्वत जब गरजता है फूट पड़ता है तब उसमें से निकलने वाली वह नदी जहाँ भी चली जाती है हरियाली, खुशहाली, वृद्धि-समृद्धि देने वाली होती है। किन्तु जब इस पर अत्याचार होते हैं, भृकुटि मरोड़कर चलती है तो फिर इसे संहार करने में भी देर नहीं लगती। यह झगड़े की जड़ भी है, विनाश की जड़ भी है, पतन की जड़ भी है किंतु जब तक नारी पटरी पर चलने वाली ट्रेन की तरह से मर्यादा में रहती है तब तक सबकी जीवन यात्रा सुखद होती है और उस ट्रेन की पटरी को यदि कोई उखाड़ दे, तो फिर उसकी जीवन यात्रा उसी क्षण से दुःखद हो जाती है।

इसलिये नारी को कहा कि वह परमात्मा का रूप भी है, एक खिलौना भी है। भले ही पुरुष उसे प्यार से गुड़िया कहे, खिलौना

कहे अलग बात है क्योंकि यह प्रमोद का कारण है। नारी के संबंध में बस दो संकेत करने हैं यदि किसी भी समाज का सुधार करना है, किसी भी धर्म को दीर्घकाल तक ले जाना है, किसी भी परिवार में अच्छे पुत्रों का जन्म हो, वंश वृद्धि को प्राप्त हो, कुल सुरक्षित व संवर्धित हो, धर्म व संस्कृति की रक्षा हो उसके लिये सबसे पहली बात यही है कि हमारी कन्यायें, हमारी बालायें, हमारी माताएँ, बहिनें सुसंस्कारों से सहित हों।

माता पिता अपनी पुत्रियों को केवल उच्चशिक्षा न दें उसके साथ-साथ उन्हें अच्छे संस्कार देना भी आवश्यक है। प्रत्येक माता का कर्तव्य है अपने पुत्र पुत्रियों को अच्छी शिक्षा व सम्पत्ति देने के साथ-साथ अच्छे संस्कार दे, तब वे मातायें निःसंदेह अच्छे भविष्य का निर्माण कर सकती हैं। जब भी किसी भी देश का पतन होगा, जब भी प्रलयकाल आयेगा, जब भी विनाश का काल आयेगा, उसके पहले स्त्री समाज की बुद्धि भ्रष्ट हो जायेगी, स्त्री की बुद्धि भ्रष्ट होने पर ही पुरुष की बुद्धि भ्रष्ट होगी। वह सदाचार से गिरेगा, पतित होगा, शील व धर्म से गिरेगा, मान मर्यादा का उल्लंघन करेगा किन्तु करेगा तब जब स्त्री पतित होगी। यदि स्त्री पतित नहीं हुयी सुदृढ़ रही तो सौ पुरुष मिलकर भी एक सती के शील को छीन नहीं सकते, वह एक सती भी हजार पर भारी पड़ सकती है। जैसे अंधकार का पूरा समूह मिलकर के भी एक दीपक की ज्योति को बुझा नहीं सकता, ऐसे ही एक नारी की शक्ति को हजार व्यक्ति भी पराजित नहीं कर सकते। तो जब तक नारी सुरक्षित है, नारी की कुक्षि में सुसंस्कार सुरक्षित हैं तब तक तुम्हारे परिवार का, समाज का व देश का पतन नहीं हो सकता।

महानुभाव! इसलिये इस नारी का कभी अपमान मत करो, ये नारी अपमान के योग्य है भी नहीं, यह तो सम्मान के योग्य है। जिस

देश में नारी का सम्मान है उस देश में निःसंदेह वृद्धि है समृद्धि है। इसलिए कहा–

नारी में है उज्ज्वल सतीत्व, उज्ज्वल सतीत्व में महातेज।
उस महातेज के दीपक में, नारी रखती रवि को सहेज॥
वह औरों को सुजन (स्वजन) बना लेती, देखो स्वजनों का संग छोड़।
वह औरों का सदन बसा देती, प्रियजन सदन संबंध तोड़॥

नारी अपने गृह परिवार वालों को छोड़कर के दूसरे घर में जाकर के जिस तरह उस घर को अपना मान लेती है, यह सामर्थ्य पुरुष में नहीं, वह पुरुष जब भी कहेगा, यही कहेगा मेरा घर ये ही है। किन्तु नारी जब तक पिता के कुल में रहती है तब तक वहाँ की मान मर्यादा का संरक्षण करती है तथा पति के कुल में आते ही वहाँ की परम्परा मान-मर्यादा का पालन करती है उन्हें निभाती है। लोग कहते हैं नारी का कोई घर नहीं, मायके वाले कहते हैं परायी है, ससुराल वाले कहते हैं पराये घर से आयी है। भैया ऐसा ही मान लो, तब भी उसका सम्मान तो करो। इस कुल में पैदा हुयी, मेहमान की तरह रहना है थोड़े दिन बाद चले जाना है इसलिये उसका सम्मान करो, दूसरे घर में आयी है, अतिथि बनकर आयी है उसका सम्मान करो। अतिथि का तो सम्मान किया जाता है, उसका अपमान कहाँ। इसलिये जब-जब पुरुष की बुद्धि भ्रष्ट होती है तब-तब वह नारी का अपमान करता है और जब-जब पुरुष की बुद्धि ठीक होती है तब-तब नारी को सहन करता है। और नारी को एक बार सहन कर ले, तो वह नारी पुरुष को सौ बार सहन कर सकती है।

एक पुरुष ने किसी स्त्री से पूछा–मेरे बारे में कोई बुराई है? पत्नी ने कहा–नहीं आपके अंदर तो मुझे कोई बुराई दिखती ही नहीं आप तो पुरुगुण सम्पन्न हैं, आप तो बहुत अच्छे हैं। फिर नारी ने

पूछा क्या मेरे अंदर कोई बुराई है? पति ने कहा नहीं। पत्नी ने पुनः कहा मैं गंभीरता से पूछती हूँ, आज मेरा जन्म दिवस है और मैं अपने आप को सुधारना चाहती हूँ, कोई भी पाँच अवगुण वा दोष आप मेरे मुझे बता दो, आप बुरा नहीं मानना, आप तो मुझे सहजता में बता दो। पति ने कहा–ठीक है मुझे सोचने का मौका दो। प्रातःकाल पूछा–पुनः कहा समय दो। वह ऑफिस गया और एक कागज लिखकर भिजवा दिया कि मुझे तेरे अंदर कोई भी बुराई दिखाई नहीं दे रही। शाम को जब वह लौटा, तो पत्नी बोली वास्तव में आप जैसा दिव्य पुरुष संसार में कोई नहीं है। क्योंकि मेरे अंदर बुराई होते हुये भी जब आपको मुझमें बुराई दिखाई नहीं दे रही आप पुरुष होकर भी नहीं कह रहे, मैं तो नारी हूँ फिर मुझे पुरुष के दोष कैसे दिखाई दे सकते हैं। सत्यता ये है जब दृष्टि गुणग्राहक होती है तो दोष दृष्टिगोचर नहीं होते, जब दृष्टि दोषों पर जाती है तब गुण दिखाई नहीं देते। दोष ग्राहक की दृष्टि में गुण बोने पड़ जाते हैं और गुण ग्राहक की दृष्टि में दोष लुप्त हो जाते हैं।

इसलिये आप सभी का यही कर्तव्य है कि नारी का सम्मान अवश्य करना चाहिये, किन्तु नारी को उच्छ्रंखलता के लिये कभी प्रेरणा नहीं दें। नारी को सम्मान मिलना चाहिये किन्तु नारी के कारण यदि संस्कृति का ह्रास हो रहा हो तो कभी नहीं। नारी को सम्मान दो, आदर दो, उचित है उसकी कृतज्ञता ज्ञापित करो किंतु उतना ही जितने में नारी अपनी मर्यादा का उल्लंघन न करे। ट्रेन की स्पीड उतनी बढ़ाओ कि ट्रेन पटरी के बाहर नहीं जाये। गाड़ी रोड पर उतनी स्पीड में चलाओ जो नियंत्रण में भी रह सके, अन्यथा वह खतरनाक हो सकती है। जिस घर में नारी को प्रभु बनाकर पूजा करना प्रारंभ कर दिया वह घर भी सुरक्षित नहीं है। जिस घर में नारी को ही सब कुछ मान लिया, स्वयं उसका दास बनकर रहने लगा तब भी घर में

मर्यादा का उल्लंघन हुआ, तब भी घर सुरक्षित नहीं रहेगा। पुरुष की भी अपनी अलग मर्यादा है, नारी की भी अपनी अलग मर्यादा है। हमारा इतना कहना है।

"नारी कमजोर नहीं है, नारी पुरुष के जीवन की डोर है।"

नारी की कृपा दृष्टि सब ओर है, किन्तु तब जब वह नारी स्वयं में व्यवस्थित हो। इसलिये माता-बहिनों को भी यह ध्यान रखना है कि वे निर्बल नहीं बनें। किन्तु अपने बल का दुरुपयोग भी न करें। नारी दुर्बल न बने वरन् अपने बल का सदुपयोग करके जो निर्बल और दुर्बल हैं उन्हें भी संबल दे। और यह तभी संभव हो सकता है जब नारी निर्मल बन जाये। उसके चित्त में से मल अलग हो जाये। स्वर्ण तभी शुद्ध होता है जब कनक पाषाण में से किट्ट कालिमा निकाल दी जाती है। चंद्र की चांदनी, सूर्य का प्रकाश तभी स्वच्छ आता है जब आकाश में बादल न हों या उन्हें ग्रहण न लगा हो। ऐसे ही नारी के जीवन में दोषों का ग्रहण न लगा हो, नारी के जीवन में कोई ऐसी बुराई न हो जिस बुराई का प्रभाव नारी के सभी गुणों को ढांकने वाला हो।

आप सभी का जीवन शुभ हो, मंगलमय हो, इन्हीं सद् भावनाओं, के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

।।जैनं जयतु शासनं-विश्वकल्याणकारकं।।

समय का लुटेरा

महानुभाव! आज थोड़ी सी चर्चा करेंगे उस महत्वपूर्ण तत्त्व के संबंध में जिसे समझे बिना जीवन समझ में नहीं आता, वह है 'समय का लुटेरा।' पहले हम समय को समझें फिर लुटेरे को समझें। समय शब्द के मायने एक नहीं अनेक हैं। समय शब्द का अर्थ होता है आत्मा, शास्त्र, जैनमत, काल आदि ऐसे समय शब्द के अनेक अर्थ संभावित हैं। आत्मा के स्वभाव की प्राप्ति का उपाय भी समय है, आत्मा भी समय है, आत्मा जिसकी छत्रछाया में रहकर के अपने समय को शुद्ध कर पाती है वह भी समय है। हमें समय की छत्रछाया में रहते हुये, अपने समय के रहते हुये, अपने समय को, समय के माध्यम से, समय के निर्देशन में न केवल शुद्ध करना है अपितु समय को शाश्वत करना है।

समय न कभी किसी का एक सा रहता है, न कभी किसी का एक सा रहा, समय बदलता रहता है। यदि निश्चय की अपेक्षा से देखा जाये तो समय सदा एक सा था, है और रहेगा किन्तु व्यक्तिगत किसी एक व्यक्ति की अपेक्षा से देखा जाये तो उसके लिये समय न कभी एक सा था, न है न हो सकेगा क्योंकि उसके जीवन में सदा एक जैसे कर्म का उदय नहीं आ सकता, उस व्यक्ति की पर्याय सदा एक सी नहीं रह सकती, उस व्यक्ति के गुणों का परिणमन सदा एक सा नहीं रहता। उस व्यक्ति को अपने पुण्य पाप के अनुरूप एक जैसी सुख और दु:खानुभूति नहीं होती। इसलिये कहा जाता है समय सदा

एक सा नहीं रहता। समय तो नदी की धार की तरह से बहता चला जाता है, जो इस धार में आ जाते हैं वो भी इसमें बहकर चले जाते हैं, जो उस धार में सुमेरु की तरह से अडिग रहते हैं वे ही अपना इतिहास बना पाते हैं। इस समय की दौड़ में कौन व्यक्ति शाश्वत रहा ये सब बातें हमारे पढ़ने-सुनने में आती हैं। किंतु हम इसका आशय लगाते हैं कि इस समय हमारा कौन सा समय चल रहा है, शुभ समय चल रहा है या अशुभ समय चल रहा है, पाप का उदय चल रहा है या प्रतिकूलता का अनुभव कर रहे हैं! इस समय हमारे जीवन में आनंद की लहर आ रही है या दुःखों का बादल बरस रहा है, इस समय हमारे ऊपर संकटों का पहाड़ टूट रहा है या पुष्पों की वर्षा हो रही है। तो ये हमारे पुण्य और पाप पर निर्भर है। इस समय हम कौन सा जीवन जी रहे हैं हमारी मनुष्यायु का उदय चल रहा है या देवायु का उदय चल रहा है अथवा नरक आयु का उदय चल रहा है उसी के अनुसार हम समय को शुभ-अशुभ संज्ञा देने में समर्थ होते हैं।

यदि हम अपने आप से समय का मूल्यांकन न करें, अपने को यदि कहीं समय में अन्तर्निहित नहीं करेंगे तो आप कहेंगे काल द्रव्य अनादिकाल से था, आज भी है, अनंत काल तक रहेगा। काल द्रव्य का लक्षण है परिवर्तन। स्वयं अपने आप में परिवर्तन कराते हुये प्रत्येक द्रव्य का परिवर्तन कराना यह काल द्रव्य का लक्षण है। काल द्रव्य के बिना कोई द्रव्य परिवर्तित नहीं हो सकते। यदि किसी भी द्रव्य में पर्याय आ रही है तो काल द्रव्य के निमित्त से आ रही है काल द्रव्य नहीं होता तो संसार में क्या होता।

आकाश ने सबको अवगाहन दिया, धर्म द्रव्य ने सबको गति करने के लिये अवसर प्रदान किया, अधर्म द्रव्य ठहरने के लिये निमित्त बना, पुद्‌गल द्रव्य जीव के लिये सुख-दुःख में सहकारी बन गया, जीव द्रव्य इन सबका सहारा लेकर के अपनी आत्मा को शुद्ध-अशुद्ध करने

में समर्थ है किन्तु काल द्रव्य इन सभी द्रव्यों के परिणमन में सहकारी है बिना काल द्रव्य के किसी में परिणमन संभव नहीं।

तो ये काल अत्यंत महत्वपूर्ण है। उस निश्चयकाल को समझकर के व्यवहारकाल समझते हैं। व्यवहार काल ही हमारे द्वारा व्यवहार में आता है। हमने इसका प्रयोग चाहे युगों के रूप में किया, कल्पकाल के रूप में किया, चाहे सागर, पल्य के, सहस्राब्दी, लक्षावधि या सदी के रूप में किया, चाहे वर्षो के रूप में, महिनों के रूप में, पक्ष, सप्ताह, दिन, घड़ी, घंटा, पहर, मिनट, सैकिण्ड, पल, विपल, प्रतिविपल, प्रतिपल, विपुलांश इत्यादि छोटी-छोटी ईकाई के रूप में करते चले गये। ये हमने अपने व्यवहार जगत में व्यवहार चलाने के लिये किया है किन्तु समय तो सब एक सा है। हमने इसका निर्णय करने के लिये ज्योति विमानों की गति के अनुसार अपना समय निर्धारित कर लिया है। यदि सूर्य ने एक चक्कर लगाया तो हमने कहा—24 घंटे हो गये। जम्बूद्वीप में दो सूर्य दो चंद्र हैं, जो सूर्य आज उदय को प्राप्त हुआ है वह कल नहीं होगा, वह परसों उदय को प्राप्त होगा, एक सूर्य इस समय उदय है ऐसा ही सूर्य ऐरावत क्षेत्र में उदय को प्राप्त है। रात्रि में यह सूर्य पश्चिम विदेह में पहुँच जायेगा, दूसरा सूर्य पूर्व विदेह में आ जायेगा। फिर वह सूर्य पूर्व विदेह से यहाँ पर आ जायेगा, वो पश्चिम विदेह से ऐरावत क्षेत्र में पहुँच जायेगा, इस प्रकार यह क्रम चलता रहेगा। इसीलिये हमने यह समय निर्धारित कर लिया कि इतने में एक परिक्रमा लगायी तो 48 घंटे हो गए, इतनी गलियों में घूमकर के आता है तो एक पक्ष हो जाता है, यह व्यवहार काल हमने निर्धारित कर लिया। यह यंत्र (घड़ी) बना लिया कि यह सुई घूम करके आती है तब तक साठ सैकिण्ड हो गए, दूसरी सूई घूमने से 1 मिनट, अन्य तीसरी सूई से 1 घंटा होता है पुनः 12 घंटे होते हैं तो ये सब मनुष्य ने निर्धारण किया है वह व्यवहार काल है।

निश्चय से काल में कोई भेद नहीं है। यदि हमारा आपका जन्म वहाँ हुआ होता जहाँ दिन व रात की कोई कल्पना ही नहीं है, स्वर्गों के विमानों में होता या नरकों के बिलों में होता जहाँ कोई सूर्य-चन्द्रमा नहीं है, वहाँ ऐसे कोई घड़ी-घंटा नहीं चलते यहाँ के समय से ही वहाँ का समय निकाला जाता है। महानुभाव! उस समय के मायने हमने बहुत देखे, किन्तु समय है क्या?

व्यवहार जीवन में समय वह महत्वपूर्ण इकाई है जिसके बिना हमारा और आपका जीवन नहीं। जीवन है क्या? समय का नाम ही तो जीवन है। हम एक पर्याय को छोड़कर दूसरी पर्याय को प्राप्त करते हैं, उस पर्याय में हमारी आत्मा कितने समय तक रहती है, जितने समय तक रहती है उसी का नाम जीवन है। यदि मैं पूर्व में जिस पर्याय को छोड़कर आया, माना देव या मनुष्य पर्याय छोड़कर आया और इस (वर्तमान) पर्याय में जन्म लिया तो जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त यह मेरा जीवन कहलाता है। वैसे जीवन का प्रारंभ तो गर्भ में आने के पहले विग्रह गति में जीव था तब से ही इस मनुष्यायु का प्रारंभ हो गया। समय ही जीवन है, जिसने समय का दुरुपयोग किया है उसने अपने जीवन का दुरुपयोग किया है। जीवन में चाहे अपने किसी भी वाहन का दुरुपयोग करो तो इतनी क्षति नहीं है आत्मा की, चाहे आपने भोगोपभोग की वस्तु का दुरुपयोग किया, मकान, दुकान वस्त्राभूषणों का दुरुपयोग किया, चाहे आपने अपने व्यवहारिक संबंध बनाये, वे बिगड़ गये तब भी इति क्षति नहीं है आत्मा की जितनी क्षति समय का दुरुपयोग करने से हो जाती है। इसलिये कहा जाता है समय से ज्यादा महत्वपूर्ण संसार में कुछ भी नहीं है।

व्यवहार जगत में समय से ज्यादा महत्वपूर्ण कुछ भी नहीं है। हम और आप इस शरीर के साथ अपनी आत्मा का वर्तन कर रहे हैं, किंतु इस शरीर को प्राप्त करके कौन अपने समय का सदुपयोग कर रहा

है, कौन शरीर को प्राप्त करके जीवन का सही सदुपयोग कर रहा है, कौन दुरुपयोग कर रहा है, जिनकार्यों को करना चाहिये उन कार्यों को कर रहा है या नहीं कर रहा। यदि कर रहा है तो कहते हैं इसने अपने समय को सार्थक कर लिया। जो समय मिला था उसने समय की दौड़ में से भी समय बचाकर के अपनी दौड़ को बढ़ा दिया, समय की दौड़ को पीछे छोड़ दिया। कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जिन्हें समय की दौड़ में से समय तो बहुत मिला था किन्तु दौड़ नहीं पाया समय ही दौड़कर चला गया, वह यूँ ही पड़ा रह गया। इस संसार में देखें तो कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं समय की दौड़ में से बचाकर लाये थे चार क्षण, समय दौड़कर के चला गया हम दौड़ नहीं पाये किन्तु इतना ही नहीं हम वहाँ खड़े भी नहीं रह पाये जहाँ समय ने हमें छोड़ा था। हमने स्वयं ही अपने समय का दुरुपयोग किया, व्यर्थ ही ऊपर से नीचे गिर गये, पतित हो गये मनुष्य अवस्था से तिर्यंच अवस्था में पहुँच गये, नारकी अवस्था में या कुमानुष अवस्था में पहुँच गये या मनुष्य होते हुये भी समय के दुरुपयोग से उससे भी पतित हो गये।

महानुभाव! संसार का सबसे बड़ा लुटेरा है समय। ये हमारे शैशव को छीनकर ले गया, हमारे बालपन को छीनकर ले गया, हमारे यौवन को छीनकर ले गया, किसी की प्रौढ़ावस्था तो किसी की वृद्धावस्था छीनकर ले गया तो किसी का तो जीवन ही छीनकर ले गया। ये समय सबको छीनकर ले जाता है किसी के पुण्य को छीनकर ले गया तो किसी के पाप को छीनकर ले गया, किसी की अनुकूलता छीनकर ले गया तो किसी की प्रतिकूलता छीन कर ले गया ये कभी खाली नहीं जाता। ये समय प्रत्येक क्षण में अनंत-अनंत पर्यायों को लेकर के जाता है और ये बात भी सत्य है कि अनंत-अनंत पर्यायों को देकर भी जाता है। एक पर्याय को छीनकर ले जाता है तो उसी समय दूसरी पर्याय को उत्पन्न भी करता है। संसार में समय से बड़ा लुटेरा कुछ

भी नहीं है।

समय, समय के द्वारा दिये हुये घावों को भरने में समर्थ है, समय शरीर में हुये या मन के विकृत परिणामों से मन में हुये सभी घावों को भरने की औषधि बन जाता है। ये समय ही है जो दो भाईयों में बैर खड़ा कर देता है। ये समय ही है जो पति-पत्नी में टकरार कर देता है। ये समय ही है जो पिता-पुत्र के बीच युद्ध की भूमिका तैयार करता है, ये समय ही है जो सगे सहोदरों में इतना बैर भाव पैदा कर देता है कि वे एक दूसरे के प्राणों के, खून के प्यासे हो जाते हैं। ये समय ही है जब व्यक्ति की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। लोग कहते हैं आप भी खराब नहीं, मैं भी खराब नहीं फिर बात क्या है? ये कोई खराब समय आ गया था, आप भी भविष्य में अच्छे हो जायेंगे मैं भी अच्छा हो जाऊँगा, भूतकाल में आप भी अच्छे थे मैं भी अच्छा था किन्तु वर्तमान काल में ऐसा क्या हुआ? कोई समय खराब आ गया अर्थात् हम दोनों के कोई पाप कर्म का उदय आ गया तो हमने दोष पाप कर्म को नहीं दिया समय को दोष दे दिया कि आज का दिन खराब है।

महानुभाव! ये नहीं कहा कि हमारे परिणाम खराब हैं, क्या कह दिया? आज का दिन खराब है, न जाने सुबह से किसका मुँह देख लिया, हम दोष उसे देते हैं जो मूक होता है। अपनी गलती स्वीकार करने वाला ज्ञानी कहलाता है, जिसके पास ये सामर्थ्य है जो अपनी गलती जान सके वह ज्ञानी है, जो अपनी गलती को मान सके, पहचान सके, सुधारने का प्रयास कर सके वह वास्तव में भविष्य का परमात्मा है। किन्तु व्यक्ति की ये आदत है, विभाव परिणति है कि अपने दोषों का अपराधी दूसरों को ही ठहराता है स्वयं स्वीकार करने का सामर्थ्य नहीं इसमें। दीर्घ संसारी जीव कभी भी अपनी गलती स्वीकार नहीं करता, अपने आप को जिम्मेदार नहीं ठहराता, यही इसकी सबसे बड़ी

भूल है। कभी कोई घटना घटित होती है तो वह यह भी नहीं कहता कि समय खराब हो गया, वह कहता है इसकी वजह से ऐसा हो गया, वरना ऐसा नहीं होता।

एक साहब चौराहे पर खड़े होकर चाय पी रहे थे, सामने से बालक दौड़ता हुआ आया, साहब से टकराया, चाय के कप में से चाय छलक गयी, वे बड़े नाराज हुये, दो-चार लोग आये बोले क्या हुआ? बोले इसने चाय छलका दी, मेरी आधी चाय इस बालक की वजह से फैल गयी, और उसे डाँटने लगे। क्या वास्तव में चाय बालक के टकराने से छलकी? आप कह रहे हैं कि चौराहे पर खड़े होकर पी रहा था इसलिये छलकी, पर आपका उत्तर भी सही नहीं है, अगर वह चौराहे की जगह घर पर चाय पी रहा होता, वहाँ बालक टकरा जाता तब भी चाय छलकती, तो बात ये है कि चाय न बालक के टकराने से छलकी न चौराहे पर खड़े होने से छलकी अपितु इसलिये छलकी कि कप में चाय थी। कप में चाय नहीं होती तो चाहे फिर बालक टकराता या अन्य कोई बड़ा आदमी टकराता, चाहे सांड टकराता, व्यक्ति गिर भी पड़ता तब भी चाय नहीं फैलती। ऐसे ही हम वास्तव में अपनी गलती नहीं देखते कि हमारे अंदर क्रोध भाव या अहंकार था, मायाचारी भरी थी, हमारे अंदर लोभ की प्रवृत्ति थी, हमारे अंदर वासना बैठी थी, मोह-राग-द्वेष, हिंसा झूठ-चोरी-कुशील, परिग्रह का भाव हमारे अंदर था इसलिये हमारी मनोप्रवृत्ति में, वचन प्रवृत्ति में, काय प्रवृत्ति में आ गया, यदि हमारे अंदर भाव नहीं होता तो कहाँ से निकलकर आता।

हम स्वयं को दोष नहीं देते कि हमने अपनी चेतना के स्टोर में दुर्भावों को इकट्ठा कर लिया है इसलिये छलक-छलक कर आ जाते हैं। हम दूसरों को दोष देते हैं कि तुमने हमें गुस्सा दिला दिया, मुझे किसी से कम मत समझना इसलिये मान आ गया, मेरा काम यूँ सिद्ध

नहीं हुआ तो मैंने मायाचारी कर ली, दुनिया कर रही है इसलिये मैंने भी लोभ कर लिया, सभी विषय वासना में सने हैं तो मैं भी उसमें कूद गया, सभी ईर्ष्या कर रहे हैं तो मैं भी करने लगा, वह सबका नाम लेकर के स्वयं को छिपा लेता है कहता है मैंने क्या गलत किया? लोग तो मुझसे भी बड़े-बड़े पापी पड़े हैं। व्यक्ति अपने आप को कभी पापी स्वीकार नहीं करना चाहता। यदि अपने आपको पापी स्वीकार कर ले तो पापी रह ही न पाये।

महानुभाव! इसी क्षण स्वीकार करो तो कि जब कभी भी होता है मेरा ही अपराध होता है, संसार का कोई भी व्यक्ति मुझे तब तक अपराधी नहीं बना सकता, जब तक मैं अपराधी न बनना चाहूँ। यदि चाय के कप में चाय नहीं है तो कोई उस व्यक्ति को कितना भी हिलाता रहे, उस कप को उल्टा भी कर दे तब भी चाय गिरा नहीं सकता। कुयें से पानी खींचो तो पानी होगा तो निकलकर आ जायेगा चाहे बाल्टी सोने की है, चाँदी की है, पीतल की है, तांबे की है, स्टील की है या प्लास्टिक की है यदि पानी है तो आयेगा, यदि पानी है ही नहीं तो कहाँ से आयेगा। टंकी में टोंटी चाहे कैसी भी लगाओ, चाहे सामान्य लगाओ या रत्नों से जड़ी लगाओ किन्तु निकलेगा वही जो उसमें भरा है। टोंटी लगाकर घी-दूध निकलने लगे तो प्रत्येक व्यक्ति एक से बढ़कर एक टोंटी लगाना प्रारंभ कर देगा।

महानुभाव! किन्तु अकेले टोंटी से काम नहीं चलता, अकेले कहने से भी काम नहीं चलता, आत्मा में जो कर्म का बंध होता है वह कार्माण वर्गणायें हमारे भावों के अनुसार आती हैं, उसी अनुरूप पुण्य-पाप का बंध होता है। यह समय का लुटेरा जो हमसे हमारा सब कुछ लूटकर ले जाता है बचपन से लेकर जवानी, जवानी से बुढ़ापा सब कुछ तो लूटकर ले गया, हम बस कहते रह गये क्या हमारे बचपन के दिन थे, कैसे खिलौनों से खेलते थे आनंद आता था, कोई चिंता नहीं, टेंशन

नहीं, पूरी मस्ती में रहते थे और **जिसकी मस्ती जिंदा है उसकी हस्ती जिंदा है वरना आदमी जबरदस्ती जिंदा है** नहीं तो मरा हुआ है। वह मस्ती जो बचपन में होती है ता उम्र उस मस्ती का आनंद नहीं ले पाता क्योंकि उस बचपन में उसके मन में विकारों का दुष्प्रभाव नहीं है, उस बचपन में विकरों की सत्ता नहीं है उसकी स्वयं की स्वाधीन सत्ता है वह इतना सोचता ही नहीं कि मैं क्या माँग रहा हूँ, क्या कर रहा हूँ, इसका परिणाम क्या होगा, ज्यादा कुछ सोचना ही नहीं जो करना है सो करना है।

महानुभाव! इस समय के लुटेरे ने संसार के अनंत जीवों को लूटा, उनकी पर्यायों को लूटा और जब बुरी पर्याय लुटती है तब व्यक्ति कहता है मैंने पुरुषार्थ करके उस दुःख को नष्ट कर दिया अब मैंने इस पुण्य को कमाया है, किन्तु जब पुण्य का फल नष्ट होता है तो कहता है समय छीनकर ले गया मेरे स्वामी को, मेरे पति को, मेरा पिता-पुत्र-भाई को ये काल छीनकर के गया। ये काल निर्दयी है, ये काल किसी पर दया नहीं करता, बड़ा क्रूर है। जब आपका शत्रु मरता है तब ये नहीं कहते कि काल निर्दयी है कितना क्रूर परिणामी है। जब रावण की मृत्यु हुयी तब नहीं कहा लक्ष्मण ने कि काल कितना निर्दयी व क्रूर परिणामी है उस रावण की इतनी रानियाँ विधवा हो गयीं, पुत्र अनाथ हो गये, राज्य सूनसान हो गया तब तो नहीं कहा, और यदि राम जी के सामने लक्ष्मण जी की मृत्यु हो जाती है तो राम जी कहते हैं क्या मेरा भाई मरा है? अरे! मेरा भाई मरा नहीं सो रहा है। वहाँ रावण की तो मृत्यु स्वीकार कर ली पर यहाँ अपने भाई की मृत्यु स्वीकार क्यों नहीं की। मृत्यु को क्या वे तब जानते नहीं थे, क्या कभी जीवन में किसी की मृत्यु नहीं देखी थी। यह मोह ऐसा होता है जो सत्य पर भी असत्य का पर्दा डाल देता है। ये मोह ऐसा है जो होता है उसे दिखाता नहीं, जो नहीं है उसे दिखाता रहता है। यावज्जीवन उस मोह

के जाल में फँसे रहते हैं, मोह हमें जो दिखाना चाहता है हम वही देख पाते हैं, जो सत्य है उसे कहाँ देख पाते हैं। इन्द्र जालिया (जादूगर) जैसा खेल दिखाना चाहता है, दर्शकों को वही दिखाई देता है, जो सत्यशील होता है वह दिखाई देता ही नहीं।

महानुभाव! यह मोह बहुत बड़ा ठगिया है जो हमारे साथ छल करता है, समय छीनता है। ठीक है समय मूक है तो समय को दोषा-रोपण कर दिया कि वह हमारी सब अनुकूलता छीनकर ले गया। हमारा वो भी समय था जब हमारे पास इतना खेत था, घर का मकान था, घर की दुकान थी, हमारे पास पैसे की कमी नहीं थी, बड़ा आनंद था, घी-दूध की नदियाँ बहती थी आज वो समय है जब बच्चों के लिये दूध भी उपलब्ध नहीं करा पा रहे हैं। वह समय था जब हमारे दादा-परदादा लाखों का दान करते थे आज समय ऐसा आ गया कि बच्चों की फीस भी नहीं भर पा रहे हैं, मेरे पास कुछ भी नहीं, दूसरों के आगे हाथ फैलाने पर मजबूर हो गया ये समय कितना निर्दयी है, ये समय कितना पापी है यह समय किसी पर तरस भी नहीं खाता। पर मैं समझता हूँ समय से ज्यादा ईमानदार कुछ भी नहीं है, जो साक्षी भाव से संसार के प्रत्येक द्रव्य और गुण का परिणमन देखता है किन्तु उसमें रंजायमान नहीं होता। संसार के प्रत्येक द्रव्य का परिणमन चाहे शुभ रूप हो या अशुभ रूप में हो, शुद्धरूप में हो चाहे अशुद्ध रूप में हो, चाहे स्वभाव रूप हो या विभाव रूप में हो किन्तु यह समय साक्षीभाव से देखकर के चला जाता है जैसे सूर्य और चन्द्रमा देखकर चले जाते हैं चाहे पृथ्वी पर किसी की मृत्यु हो या जन्म। मृत्यु हुयी हो तो सूर्य के विमान से आँसू नहीं टपकते और जन्म लिया हो तो खिलखिलाहट की आवाज नहीं आती वह तो अपनी गति से चलता रहता है ठहरता नहीं है। ये तो कवियों की कल्पना है कि ऐसा युद्ध हो रहा था सूर्य भी ठहर गया क्षणभर के लिये, या ऐसा आनंद का

अवसर था कि चन्द्र, सूर्य भी खुशी मना रहे हों। या क्रोध से सूर्य में लालिमा छा गयी हो, बारिश हो गयी तो कह दिया ऐसा लग रहा है कि मेघ रो रहे हों यह सब तो कवियों की कल्पना है, यदि ऐसे न लिखें तो महाकाव्य कैसे बनें।

महानुभाव! सूर्य नहीं बदले, चाँद नहीं बदले, तारे नहीं बदले, धरती नहीं बदली, आकाश नहीं बदला, पशु-पक्षी नहीं बदले, देव-नारकी नहीं बदले, प्रकृति नहीं बदली कुछ भी नहीं बदला सूर्य से कमल पहले भी खिलते थे आज भी खिलते हैं, चंद्रमा से चाँदनी पहले भी मिलती थी आज भी मिलती है, पहले भी ओस आसमान से टपकती थी नीचे से नहीं। सब कुछ वही है जमाना व समय नहीं बदला तुम बदल गये, तुम्हारा मन बदल गया। तुम स्वयं पर नियंत्रण न कर पाये, अपनी इच्छा-वांछा पर नियंत्रण नहीं कर पाये तुमने अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिये उन लोगों को अपना आदर्श बना लिया जो वासना की दौड़ में कठपुतली बन गये थे, उन्हें देखकर तुम भी वासना में रमते जा रहे हो। तुमने अपने महापुरुषों को भुला दिया जिन महापुरुषों ने अपनी आन-मान-शान के लिये अपना सब कुछ कुर्बान कर दिया था, उन्हें भुलाकर के तुमने अपने आदर्श वे बना लिये जो भोगी हैं, नरक में जाने वाले हैं। उन्हें यदि आदर्श बनायेगा तो नरक की तैयारी ही करेगा। काश! उन महापुरुषों को आदर्श बनाया होता जिन्होंने स्वर्ग व मोक्ष को प्राप्त किया, उन्हें आदर्श बनाया होता जिन्होंने धर्म की रक्षा करी है, अपने संयम की रक्षा के लिये अपना बलिदान दिया, प्रतिकूलताओं का सामना किया किन्तु अपना प्रण नहीं तोड़ा, अपने धर्म से नहीं डिगे किन्तु तुम दोष देते हो उस समय को महाराज! वह समय का लुटेरा हमारी सब जागीर को लूटकर ले गया, हमारी सम्पत्ति नहीं हमारे संस्कार भी ले गया, हमारा धर्म भी छीन लिया। यह सब कहना बेईमानी है कोई भी समय किसी से कुछ नहीं छीनता, तुम

बस उसकी झोली में जो डाल देते हो वही निकाल लेते हो। तुम ही स्वयं के गुनाहगार हो और तुम्हीं स्वयं को पुरस्कार देने वाले हो।

इसी समय के रहते हुये आत्माओं ने मोक्ष को प्राप्त किया है, इसी समय के रहते हुये आत्माओं ने नरक भी प्राप्त किया है। समय का लुटेरा संसार का सबसे बड़ा लुटेरा माना जाता है समय की कीमत व्यक्ति नहीं पहचानता किंतु जब समय निकल जाता है तब सिर पकड़कर रोता है। उसे यदि मृत्यु से पहले होश आ जाये तब तो ठीक नहीं तो' जिंदगी बेहोशी में चली जाती है। एक नहीं अनेक जिंदगी चली गयी, होश आ गया तो अंतिम समय में रोता है पछताता है। इस संसारी प्राणी की सम्यक्त्व की भूमिका जब भी बनती है तब नियम से उसकी आँखों से आँसू बहते हैं कि मैंने अपना इतना जीवन व्यर्थ क्यों गँवा दिया। जब भी वह धर्म के क्षेत्र में आयेगा तब उसे पश्चाताप होगा कि मैंने अपना जीवन क्यों गँवा दिया इतने भव क्यों गँवा दिये। चाहे शेर की पर्याय में भगवान् महावीर स्वामी के जीव ने सम्यक्त्व को प्राप्त किया, चाहे उस सिंहनी ने प्राप्त किया जिसने सुकौशल मुनि पर उपसर्ग किया, चाहे किसी हाथी ने प्राप्त किया, चाहे किसी मनुष्य ने सम्यक्त्व प्राप्त किया सम्यक्त्व प्राप्ति के समय पूर्व में तो उसकी आँखों से आँसू बहते हैं पश्चाताप के आँसू बहते हैं, उन आँसुओं में मिथ्यात्व का मल धुल जाता है, दृष्टि निर्मल हो जाती है, सम्यक् हो जाती है।

चाहे वे इन्द्रभूति गौतम गणधर ही क्यों न रहे हों, चाहे ऋषभदेव का जीव राजा महाबल ही क्यों न रहा हो। उनका स्वयंबुद्ध मंत्री जो राजा को सम्यक् श्रद्धा हेतु समझाता किंतु राजा मिथ्यात्वग्रस्त ही रहा। एक समय वह स्वयंबुद्ध सुमेरु की वंदना के लिए पहुँचा। वहाँ उसने आदित्यगति व अरिंजय नामक चारणऋद्धि मुनिराज के दर्शन किए, पूजार्चना की। उन अवधिज्ञानी मुनिराज से उसने पूछा कि ''विद्याध

र राजा महाबल भव्य है अथवा अभव्य? इस विषय में मुझे संशय है।'' आदित्यगति मुनि ने बताया ''तुम्हारा स्वामी भव्य ही है, वह तुम्हारे वचनों पर विश्वास करेगा और 10वें भव में तीर्थंकर पद भी प्राप्त करेगा। मुनि ने कहा कि ''वह आपके वचन सुनकर शीघ्र ही इनसे विरक्त होगा। आज रात्रि में उसने स्वप्न में देखा है कि तीन दुष्ट मंत्री उसे (राजा को) कीचड़ में धकेल रहे हैं और तुमने राजा को निकाला है व सिंहासन पर बैठाकर उसका अभिषेक किया है। दूसरा स्वप्न देखा कि अग्नि की एक प्रदीप्त ज्वाला बिजली के समान चंचल व प्रतिक्षण क्षीण होती जा रही है। तुम शीघ्र जाकर उसे समझाओ। वह पूछने के पहले ही आपसे इन स्वप्नों को सुनकर विस्मित होगा और आपकी बात स्वीकार करेगा।

स्वप्नफल बताते हुए मुनिराज ने कहा–प्रथम स्वप्न का अर्थ है कि वह आगामी भव में विभूति प्राप्त करेगा व द्वितीय स्वप्न उसकी 1 माह की अल्पायु का सूचक है। स्वयंबुद्ध मंत्री तत्काल महल आया व राजा को मुनिराज के स्वप्न फल पर्यन्त समस्त वचन सुनाए। व कहा राजन! जिनधर्म ही समस्त दुखों का नाश करने वाला है आप स्वकल्याण में तत्पर होइए। पुन: राजा ने अल्पायु जान समाधिमरण धारण किया। जिनमंदिर में भक्ति से आष्टाह्निक महायज्ञ करके वहीं दिन बिताने लगा। पुन: सिद्धकूट पहुँचकर सिद्ध प्रतिमाओं की पूजा कर निर्भय हो संन्यास धारण किया। व समाधिपूर्वक शरीर त्यागकर ऐशान स्वर्ग में ललितांग नामक देव हुआ।

महानुभाव! जीवन में जब भी धर्म का सूर्य उदय को प्राप्त होता है तब पहले आकाश में लालिमा छाती है, आकाश में छायी लालिमा ही धवलता को देने वाली होती है। वह लालिमा कालिमा का अंत करने वाली है शाम को भी जब धवलिमा का अंत होता है तब भी लालिमा आती है कालिमा के पहले भी लालिमा, कालिमा के बाद

भी लालिमा। जीवन बहुत महत्वपूर्ण है, अनमोल है इसे व्यर्थ में नहीं गँवाया जा सकता है। इस जीवन को किसी की शर्तों पर यूँ ही नहीं खोया जा सकता। इस जीवन को प्राप्त करने के लिये संभव है अनेक भवों में भावना भायी थी कि मनुष्य जीवन मिले मनुष्य जीवन मिले, जब मनुष्य जीवन मिल गया तो क्या कर रहे हैं? भक्ष्य अभक्ष्य सब खा जायेंगे क्या? इसके लिये प्राप्त किया था ये मनुष्य भव? क्या भोगों को भोगने के लिये मनुष्य भव प्राप्त किया था? दिन हो या रात पापों को करने के लिये या परिग्रह संग्रह के लिये यह मनुष्य भव प्राप्त किया था या भयभीत रहने के लिये ये प्राप्त किया था? आहार, भय, मैथुन, परिग्रह ये चार संज्ञायें तो हमें हर भव में मिली उसके लिये ही जीते रहे, चार कषायों के लिये प्रत्येक जीवन जीया। हमने कभी क्रोध की, कभी मान की, कभी मायाचारी की, कभी लोभ की पुष्टि की, इसी के लिये दिन रात व्यतीत करते रहे। यदि इस भव को प्राप्त करते हुये वही करते रहे तो कौन सा बड़ा काम कर दिया। मनुष्य भव प्राप्त करके मनुष्यता को सार्थक करने के लिये यदि कोई काम कर लेता, मनुष्य से महामनुष्य बन जाता, मानव से महामानव बन जाता तब तो मानते कि कोई बड़ा काम किया। मानव से महात्मा बन जाता, परमात्मा बन जाता, पापात्मा से पुण्यात्मा बन जाता तो मान लेते तुमने कोई बड़ा काम कर लिया। यदि जिस काम को पशु कर रहे हैं, नारकी कर रहे हैं, देव कर रहे हैं, एकेन्द्रिय जीव से लेकर सभी संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव संसारी प्राणी कर रहे हैं और हम मनुष्य होकर के 84 लाख योनि में से श्रेष्ठ योनि को पाकर के भी वही कार्य कर रहे हैं तो सोचिये कौन सा विशेष कार्य कर लिया।

महानुभाव! समय के मायने यही समझें कि ये हमारा समय ही जीवन है, ये जीवन हमारी सामर्थ्य को, हमारी श्वासों को, आयु कर्म के निषेकों को लूटकर के ले जाये उससे पहले हमें जाग जाना है।

हमारे भवन में चोर चोरी कर रहे हैं, वे सब कुछ सामान चोरी करके ले जायें, उससे पहले पलंग को छोड़ दो। अलार्म घड़ी तुम्हें जगा रही है, माता-पिता की आवाज सुनाई दे रही है और तुम देख रहे हो चोरों को उसके बावजूद भी यदि आलस में पड़े हो, उठ नहीं रहे हो तो जिंदगी भर रोना पड़ेगा। इसीलिये समय के रहते जाग जाना चाहिये। ये समय लुटेरा सब लूट-लूटकर ले जा रहा है, मैं सद्कार्य कर नहीं पा रहा, क्यों? क्योंकि समय निकलता जा रहा है। निकल नहीं रहा, हम समय को धक्का देकर निकाल रहे हैं। किसी व्यक्ति से पूछो-कैसा चल रहा है? ठीक है, समय काट रहे हैं। जो समय काट रहा है, तो समय नहीं काट रहा अपितु काल के आरे से उसकी आयु को काट रहे हैं।

आप क्यों काट रहे हो समय को, यह टाईम पास क्यों करना? मनुष्य भव को प्राप्त करके समय पास कर रहे हो क्या समय पास करने के लिये मनुष्य अवस्था प्राप्त की थी? समय काटे से कट नहीं रहा भाई क्यों, क्या बात हो गयी? क्या आवश्यकता पड़ गयी समय काटने की? क्या इस मनुष्य अवस्था में कोई पुण्य का साधन नहीं है? क्या धर्म का कोई आलम्बन नहीं है? इस काल में क्या तुम्हें देव-शास्त्र-गुरु का सान्निध्य नहीं मिला? क्या तुम्हारे पास बुद्धि नहीं है, विवेक नहीं है जो समय काट रहे हो, क्या बुद्धि विवेक का उपयोग नहीं कर सकता?

कुछ व्यक्ति कहते हैं ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे पास समय कम पड़ रहा है सोचता हूँ कि 24 के 36 घंटे हो जायें इतने काम हैं। स्वकल्याण के साथ परकल्याण के लिये समय कम पड़ जाता है इसलिये सोचता हूँ समय और मिले। कुछ व्यक्ति कहते हैं समय काट रहे हैं। संभव है तुमने जिसे अपना मान लिया था उस जीवनसाथी का वियोग हो गया। संभव है तुम जिसे छोड़कर के आ गये, अब

उसे पकड़ नहीं सकते, अब उसकी याद कर रही है। तो समय काटे से नहीं कट रहा, संभव है तुम्हारा कोई इष्ट तुम्हें छोड़कर चला गया, उसकी याद आती है तब समय काटे से नहीं कटता। संभव है तुम्हारे पास पहले सम्पत्ति थी वह नष्ट हो गयी, उसकी याद में तुम रो रहे हो, कह रहे हो समय काटे से नहीं कट रहा। संभव है पहले आपके पुण्य का उदय था तो पुण्य का फल भोग रहे थे आज पाप का उदय है इसलिये कह रहे हो समय काटे से नहीं कट रहा।

महानुभाव! उस पाप के उदय में भी धर्म को संवर्धित किया जा सकता है, पाप के उदय में भी पुण्य का दरवाजा खोला जा सकता है। ऐसे अनंत जीव हुये जिन्होंने पाप के उदय में पुण्य का दरवाजा खटखटाया। पुण्य के उदय में भी खोला जा सकता है ऐसा नहीं सोचो कि पुण्य का दरवाजा नहीं खोला जा सकता। ऐसा नहीं है कि धर्म का मार्ग बंद हो गया, संसार के सभी मार्ग बंद हो जायें तब भी धर्म का वह मार्ग हमेशा खुला रहता है, हम उस पर चलना ही न चाहें यह अलग बात है। पीठ करके खड़े हो जायें, संकल्प लेकर खड़े हो जायें कि इस मार्ग पर तो मैं जाऊँगा ही नहीं। कई व्यक्ति ऐसे होते हैं जो कहते हैं–शिखर जी गया था, ऐसी दुर्घटना हो गयी, अब से शिखरजी जाने का त्याग या मंदिर जाते–जाते मुझे इतना समय हो गया, फिर भी मेरे व्यापार में घाटा लग गया आज से मंदिर जाने का त्याग कभी ये नहीं कहता भोजन करते–करते बीमार हो गया अब कभी भोजन करूँगा ही नहीं, कभी ये नहीं कहता विषय सेवन करते–करते मेरी पत्नी बीमार पड़ गयी अब विषय सेवन करूँगा ही नहीं, कभी ये नहीं कहता कि मैं व्यापार करने जाता हूँ, व्यापार करते–करते मेरा स्वास्थ्य खराब हो गया या कोई प्रतिकूलता हो गयी तो आज से व्यापार करने जाऊँगा ही नहीं, कभी ये नहीं कहता इस शरीर को प्राप्त करके मैंने नाना प्रकार के दु:ख प्राप्त किये हैं अब संकल्प लेता हूँ शरीर

को प्राप्त करूँगा ही नहीं सिद्ध बन जाऊँगा ऐसा संकल्प क्यों नहीं लेता। ये क्यों नहीं कहते कि कर्म की वजह से मुझे दु:ख मिलता है, अब उन कर्मों को बाँधूगा ही नहीं। व्यक्ति की सोच उल्टी होती है, वह उल्टा–उल्टा सोचता है इसीलिये बस एक बार व्यक्ति के जीवन में सम्यक् सोच जाग्रत हो जाये तो व्यक्ति के जीवन में न कोई सुख है न कोई दु:ख, वह समय को पहचान सकता है, समय के रहते अपने समय को पहचानना ही चाहिये।

एक व्यक्ति ने चित्र बनाया, चित्र में मनुष्य बनाया पर स्पष्ट नहीं था। उसका मुँह लंबे–लंबे बालों से ढका था वे बाल नाभि तक लहरा रहे थे और सिर पीछे से बिल्कुल गंजा था। चित्र में दिखाया कि वह व्यक्ति सामने से दौड़ता हुआ आया, कुछ व्यक्ति चित्र में खड़े भी हैं, पर पहचान नहीं पा रहे कि ये व्यक्ति कौन है? जब वह दौड़कर आगे निकल गया, पीछे देखा तो लिखा था मैं समय हूँ, लोगों ने पकड़ने की कोशिश की तो पीछे से उसकी चाँद चिकनी थी हाथ फिसल गया वह व्यक्ति भाग गया। वह चित्र समय का चित्र था, समय जब आता है तब उसका चेहरा पहचानने में नहीं आता, तुम्हारे जीवन में भी कब अच्छा समय आ जाये तुम उसे पहचान नहीं पाते हो, कब बुरा समय आता है पहचान नहीं पाते हो जब समय निकल जाता है तब सिर पकड़कर पश्चाताप करते हो कि हाय! मैंने ऐसा क्यों कर दिया, अपने समय का दुरुपयोग क्यों किया, मैंने कुछ अच्छा क्यों नहीं कर लिया और जब तक मुड़कर देखते हैं तब तक समय बहुत दूर निकल चुका होता है पकड़ने में नहीं आता। समय की गति बहुत तीव्र है अब उसे दौड़कर पकड़ा नहीं जा सकता वाहन लेकर दौड़ो तब भी पकड़ नहीं सकते।

क्या किसी के पास ऐसा वाहन है? क्या किसी वैज्ञानिक ने ऐसा वाहन तैयार किया है कि जो हमारे बचपन को जो निकल गया है

उस वाहन पर बैठकर के हम उसे पकड़कर ले आये, क्या है ऐसा कोई वाहन? तुम्हारा पहले का एक क्षण भी निकला उसे भी क्या किसी वाहन द्वारा पकड़कर ला सकते हैं। अभी 9:5 मिनट हो रहे हैं इससे पूर्व 9:4 मिनट का जो समय था वह 1 मिनट क्या लौटाकर ला सकते हो। कोई भी वाहन तैयार नहीं किया वैज्ञानिकों ने, और कर भी नहीं सकते। उस बीते समय को कोई लौटा नहीं सकता, जो गया सो गया, समय की गति को कोई नहीं रोक सकता।

महानुभाव! समय सबसे बड़ा लुटेरा है किन्तु ये न्यायप्रिय है। लुटेरा हम कहते हैं तो कह दें पर ये वास्तव में लुटेरा नहीं वह तो हमें शुभ संकेत देकर के जाता है, हमारे अशुभ को बटोरकर के ले जाता है। समय न आये तो हमारी आँखों में आँसू भरे हैं तो भरे ही रहेंगे, समय न आये तो हमारे चेहरे पर खेद की लकीरें बनी की बनी ही रहेंगी, समय न आवे तो हम आक्रंदन करते ही रहें। समय वह है जो हमारी दुःख, पीड़ा, वेदना, बेबसी, मजबूरी, लाचारी सबको ले जाता है और आनंद को दे जाता है। समय ही है जो हमारे जीवन में से एक-एक काँटे को बीनकर के ले जाता है और फूल देकर के जाना चाहता है यदि फूल हम लेना चाहें तो, किन्तु हम कर जाते हैं भूल और शूल के बदले शूल ही ले लेते हैं, शूल के बदले धूल ले लेते हैं। फूल नहीं ले पाते। हम प्रतिकूलता को चुन लेते हैं और अनुकूलता को छोड़ देते हैं। इसीलिये मूल में भूल कर जाते हैं।

महानुभाव! समय लुटेरा नहीं है समय तो तुम्हारा निर्देशक है। गुरु तुम्हारा लुटेरा नहीं है आप लोग भजन में गुरु को लुटेरा कह देते हैं, चोर कह देते हैं कि ये चोर हमारे चित्त को चुराकर ले गये, ये तो चोर हैं जिन्होंने हमारा दुःख छीन लिया। महानुभाव! गुरु तुमसे तुम्हारी खोट छीनते हैं, तुम्हारी बुराई छीनते है, तुम्हारी दोष प्रवृत्ति छीनते हैं, तुम्हारे अपराधों को लेते हैं, तुम्हें सद्प्रेरणा, पुण्य की प्ररेणा, पुण्य का

निमित्त देने वाले होते हैं, तुम्हें दर्शन, ज्ञान, चारित्र देने वाले होते हैं। मिथ्यात्वादि को छीनने वाले होते हैं। हाँ छीनते नहीं कह देते हैं, इसे छोड़ किंतु व्यक्ति संसार के सुख में मोहित हो जाता है। आपने देखा होगा संसार दुःख दर्पण में एक व्यक्ति उस पेड़ से लटका हुआ है जिस पर मधुमक्खी का छत्ता लगा है एवं जिसके नीचे कूप है उसमें सर्प और अजगर मुँह फाड़ कर बैठे हैं उस वृक्ष को विशाल हाथी गिराने का प्रयास कर रहा है। एक विद्याधर का विमान वहाँ से जाता है, उसकी विद्याधरी कहती है इस व्यक्ति पर दया-करुणा करो, विद्याधर कहता है आजा भाई अपना हाथ दे और मेरे विमान में आजा, परंतु वह कहता है अभी एक मधु की बिंदु और मेरे मुख में टपक जाये तब आ जाऊँगा, वह उस मधुबिंदु के चक्कर में अपना पूरा जीवन गंवा देता है। जिस वृक्ष पर लटका है उस वृक्ष को काले और सफेद दिन-रात रूपी चूहे, आयु रूपी शाखा को अहर्निश काट रहे हैं, शाखा जैसे ही कटेगी वह नीचे गिरेगा या वह हाथी उस वृक्ष को उखाड़ कर फेंक देगा तब भी वह धड़ाम से नीचे गिरेगा या तो उसे हाथी मार देगा या कूप में मुँह फाड़े वे अजगर सर्प मार देंगे उसे तो मरना ही मरना है यदि वह विद्याधर की बात मान ले, जो हाथ देने खड़ा है तो उसका कोई बाल बांका नहीं कर सकता है।

ऐसे ही गुरु तो आपको उस कूप से निकालने के लिये आते हैं किन्तु जब तक अंदर विवेक नहीं होता है तब तक हितैषी भी शत्रु जैसे लगते हैं। जो हमारे अशुभ वचनों पर टोके, रोके तो हमें लगता है ये हमारे शत्रु हैं किन्तु जब विवेक जाग्रत होता है तब अतीत की बातें याद आती हैं वास्तव में यदि उस समय नियंत्रण नहीं किया होता तो न जाने हम कहाँ समय की धार में बह गये होते।

यह समय जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण है जन्म से लेकर मृत्यु के बीच की दूरी को आप जीवन कहते हैं। इस दूरी का नाम ही समय

है। समय कहो या जीवन कहो। इस समय का दुरुपयोग करना जीवन का दुरुपयोग करना है। आप किस-किस प्रकार से समय का दुरुपयोग करते हैं आप स्वयं जानते हैं। एक व्यक्ति समय का दुरुपयोग कर रहा है भोगों में डूबकर के, एक कर रहा हैं बोतलों में डूबकर के, कोई सुरा में मस्त है कोई सुंदरी में सभी मस्ती में मस्त हैं समय का सदुपयोग करने की फुरसत ही नहीं।

एक दम्पत्ति दोनों ही जॉब करते थे, बालक घर में अकेला रहता था। एक मेड आती थी उस बालक का पालन पोषण करने के लिये, वह पीछे बालक को रुलाती है, पीटती है, तंग करती है, बालक बेचारा अभी रोता है, चिल्लाता है वह छोटा है। बड़ा हो गया तो स्कूल जाने लगा बेटे को कई-कई दिन हो जाते पिता का चेहरा ही नहीं देख पाता था। सुबह उठा तो पिता सो रहे हैं वह स्कूल चला गया, रात को पिता आये तो वह सोता हुआ मिलता। एक दिन उसने अपने पिता से कहा—पापा! आप एक दिन में कितना कमा लेते हो? पिता जी ने कहा—लगभग दो हजार रुपये। किंतु तुझे इससे क्या मतलब, तेरे लिये कुछ चाहिये तो बता, ये ले पैसे, वह बोला नहीं, पापा मैं तो पूछ रहा था। पापा आप 2000 रु. 24 घंटे में कमाते हो? बोले नहीं 10 घंटे में कमाता हूँ। 1 घंटे में 200 रुपये। पापा आपका समय बहुत कीमती है, किन्तु मैं आपका समय चाहता हूँ। वह दौड़कर कमरे में गया और अपनी गुल्लक को तोड़ा उसमें 200 रु. की रेजगारी थी, गिनकर के लाया और पापा के पास आकर बोला-पापा! ये 200 रु. आप ले लो और मुझे अपना 1 घंटा दे दो।

आज बच्चे अपने माता-पिता के प्यार के लिये तरस रहे हैं। क्यों जन्म दिया उन बच्चों को जब तुम्हारे पास उन्हें देने के लिये संस्कार व समय नहीं है, अंदर में प्रेम नहीं है। संबंध तभी चलते हैं जब उन्हें जल सिंचन की तरह समय दिया जाता है अन्यथा सूख जाते हैं। वृक्षों

को समय पर जल न मिले तो सूख जाते हैं संबंध भी त्यों ही सूख जाते हैं मुरझा जाते हैं। बच्चों को समय देना जरूरी है। किन्तु वो समय कहाँ चला गया, कहाँ जा रहा है, क्यों नहीं है समय हमारे पास? पूर्व में पूर्वज थे जो बाहर चौपाल पर, आँगन में बैठ जाते थे, 10-20 व्यक्ति बैठकर चर्चा कर रहे हैं, अपने सुख-दुःख की चर्चा कर रहे हैं। पहले हमारे घर में हमारे पड़ौसी व रिश्तेदार भी हुआ करते थे, सुख दुःख में शामिल हुआ करते थे आज में देखता हूँ हमारे ही घर के लोग पड़ौसी की तरह बैठ गये। बेटा अलग मोबाइल पर खेल रहा है, बेटी अलग मोबाइल से खेल रही है, पत्नी अलग चला रही है, पति अलग चला रहा है सबके पास अलग-अलग मोबाइल हैं किसी के पास किसी से बोलने का समय ही नहीं है। पहले हमारे पड़ौसी भी हमारे सुख दुःख में शरीख हुआ करते थे आज तो हमारे घर में ही अनेक पड़ौसी हो गये।

महानुभाव! इस मोबाइल ने न केवल बच्चों का बचपन छीना है, न केवल युवाओं की जवानी छीनी है, न केवल धर्म और संस्कृति को छीना है, इस मोबाइल न केवल लोक मर्यादा व हमारी आत्माओं को छीना है, इस मोबाइल ने न केवल वृद्धों के परमात्माओं के भजनों को छीना है, न केवल पति-पत्नी के प्रेम को छीना है, न केवल माँ-बेटे के वात्सल्य को छीना है ऐसा लगता है इस मोबाइल ने प्राय:कर के हमारे सम्पूर्ण जीवन का सुख और आनंद का जो भी कारण था वह सब छीन लिया है। हमें एकाकी लाकर खड़ा कर दिया है पहले कभी पत्र आया करते थे, **वो कागजी दौर था पर देर तक खतों में जजबात महफूज रहते थे, मशीनी दौर में यादें अंगुली से डिलीट कर दी जाती हैं।**

पहले कोई पत्र आया किसी की शादी का समाचार अथवा शोक समाचार अथवा कोई और भी समाचार आये तो घर में तार टंगा रहता

था। कोई भी पत्र आया तो टांग देते थे वर्षों बाद भी चिट्ठी पढ़ते थे तो आँखें गीली हो जाती थी, ऐसा लगता था वह प्रेम सामने आकर के खड़ा हो गया, ऐसा लगता था वही व्यक्ति सामने आ गया। कागजी दौर में व्यक्ति अपनी बात कम से कम कलम से लिखता तो था, अच्छी बातें भी लिखता था, बुरी बातें भी लिखता था, लिखकर के मन खाली हो जाता था, लिखकर के फिर पढ़ता था लिखते-लिखते पढ़ते-पढ़ते यदि याद आ जाये कि मैंने गलत लिखा है तो पत्र फाड़ देता था किन्तु अब सैकिण्डों में बस मैसेज किये। पहले तो पत्र पोस्ट करने से पहले भी एक बार पढ़ते भाई! एक बार और पढ़ ले, पर अब तो आवेश में आकर के जो कुछ भी लिखा वह सब फोरवर्ड किया।

कितने-कितने संकट आ रहे हैं कितने-कितने संबंध अँगुलियों से डिलीट हो रहे हैं। वे संबध जो वर्षों-वर्षों तक रहते थे और आज तो शायद खास रिश्ता भी नहीं निभाया जा सकता। पहले जो रिश्ते दूर के भी हुआ करते थे, ये कौन हैं? हमारी पिता की बूआ के फलाने के फलाने के ये हैं। इतने दूर-के बड़े-बड़े रिश्ते होते थे तो भी बड़े घनिष्ठ जैसे घर जैसे ही लगते थे, आज रिश्ते की बात तो छोड़ो पति को पत्नी से बात करने की फुर्सत नहीं, पत्नी को पति से बात करने की फुर्सत नहीं, फुर्सत की बात तो छोड़ो, मन में बात करने की इच्छा ही नहीं। पत्नी के पास भी बात करने के लिये और हैं, पति के पास भी बात करने के लिये और हैं। बच्चों के पास भी बात करने के लिये और हैं फिर कहते हैं बच्चे हमारे क्यों ऐसे हो गये? हमारे परिवार में क्या हो गया अब बच्चे हमारे नहीं हैं? क्योंकि बच्चों को तुमने सिर्फ जन्म दिया अपना प्रेम नहीं दिया।

बच्चों को कोरी सिलेट, गीली मिट्टी समझना चाहिये। पहले उन्हें समय नहीं दिया, अब बचपन में बच्चों के दिमाग की सिलेट में जो संस्कार आ गये वे संस्कार तुम्हारे नहीं किसी और के आ गये इसलिये

वे बच्चे तुम्हारे नहीं किसी और के हो गये।

आज तो जीवन भी किश्तों पर जारी है।
हजारों रिश्तों पर एक मोबाइल भारी है।।

सौ ग्राम का मोबाइल हजार रिश्तों पर भारी पड़ जाता है। आजकल का जीवन ऐसा है जैसे किश्त चुकाते हैं। जीवन की अखण्ड धारा जैसे टूट गयी हो। जीवन के निबंध की परिभाषा ही बदल गयी, इतना बड़ा जीवन कौन पढ़े, कटपीस, शॉर्ट में बताओ। बस 1-1 लाईन में बताओ। जिंदगी को शॉर्ट-शॉर्ट में ही जीना चाहते हैं इसलिए जीवन में इतने शॉट लगते चल जा रहे हैं कि वास्तव में जीवन का आनंद नहीं आ रहा। पहले बच्चे लोग कागज की नाव बनाकर के पानी में खेलते थे, आज वर्षा का पानी मन मसोस के गलियों में जाता जा रहा है क्योंकि आज बच्चे कागज की नाव बनाकर तैराने वाले नहीं हैं उनके हाथ में मोबाइल आ गया। जो बच्चे नाव बनाकर खेलते थे, दौड़ते थे, एक दूसरे की नाव पर झपटते थे, उनकी कसरत भी होती थी, आज तो बस मोबाइल ही रह गया है बाकी सब छूट गया है।

आज हम देखते हैं छोटा सा दो-चार साल का बालक भी रोया तो माँ उसे चुप नहीं करायेगी, बस झट से मोबाइल दे देती है ले, इससे खेल और बच्चा चुप। बच्चा अब कौन सा खेल खेल रहा है पब्जी खेल रहा है या कुछ और खेल रहा है, जिसमें मारो काटो-मारो काटो ऐसे शब्द आते हैं और जीत गया तो क्या मिलता है? माँस। मार काट करने पर पुण्य थोड़े ही न मिलेगा, आपको विजयी बनाकर कहे हम आपको उत्तम श्रावक की पदवी देते हैं ऐसे कोई नहीं कहेगा, कोई नहीं कहेगा कि ईनाम के रूप में आपको भगवान् के दर्शन करने का पुण्य मिलता है। मारकाट का खेल खेलोगे तो माँस ही तो मिलेगा।

खेल ऐसा भी तो हो सकता है कि घर में थक गया, महाराज जी के पास आया 1 घंटे वैय्यावृत्ति कर ली आनंद आया। कभी पढ़ते-पढ़ते

एक घंटे के लिये आया आहार देकर के गया बड़ा आनंद आया। उसका पुरस्कार क्या मिला? एक ग्रास दिया था किसी भव में तीन पल्य की आयु के लिये इस प्रकार के कल्पवृक्षों द्वारा प्रदत्त भोग सामग्री मिली। एक दिन वैय्यावृत्ति की उस सुभग ग्वाले ने अगले भव में सुदर्शन सेठ बना, कामदेव जैसा सुंदर शरीर, वज्रवृषभ नाराच संहनन उसी भव से मोक्ष को प्राप्त कर लिया तो ये खेल खेलो। वह धण्णंकर-पुण्णंकर एक बार पूजन की तो अमरसेन, वइरसेन बने। एक दिन धनदत्त ग्वाले ने भगवान् के सामने कमल का फूल चढ़ा दिया वह करकंडु राजा बन गया। एक बार भी कोई पुण्य का कार्य किया तो महान् फलों का भोक्ता हुआ तो ऐसे संस्कार बच्चों को क्यों नहीं दिये जाते। यूँ क्यों कह दिया जाता है कि जाओ मोबाइल लेकर खेलो। मोबाइल में क्या कोई अच्छी बात आ रही है? अच्छी बात कहने पर भी तो अच्छी बात सुनने में नहीं आ रही, फिर मोबाइल की हजार बुराईयों में से दस अच्छाईयों को कैसे खोज पायेंगे।

जो अच्छाई में से अच्छाई खोज नहीं पा रहे, जो अच्छाई में से भी बुराई ही खोज लेते हैं, किसी साधु में बुराई, किसी शास्त्र में बुराई, भगवान् में बुराई, धर्मात्मा में बुराई, माता-पिता में बुराई खोज लेते हैं तो वे बुराईयों के ढेर में से अच्छाईयाँ कहाँ से खोज कर लायेंगे। हमें तो सीधे-सीधे उन्हें अच्छाई प्रस्तुत करना चाहिये तब वे अच्छाई ग्रहण कर पायेंगे। वे तो अच्छाई को भी बुराई की दृष्टि से देखते हैं, मम्मी के पास तो कोई काम नहीं है सुबह से लेकर दस बजे तक मंदिर में बैठी रहती हैं। जो अच्छाई को बुराई कह रहा है वह बुराई को ही अच्छा कहेगा, अच्छाई को तो अच्छाई कह ही नहीं सकता।

''आज खेल का मैदान सूना पड़ा है, लगता है बालकों की गेंद को कोई मोबाइल चुराकर ले गया।'' जो बालक पहले गिल्ली डंडा खेलते थे, कबड्डी, खो-खो खेलते थे, आँखों पर पट्टी बाँधकर

नाना खेल खेलते थे, पेड़ पर चढ़कर कूद गये वे खेल अब कहाँ चले गये, अकेला मोबाइल सब खेलों को निगल गया।

कुछ लोग स्वभावों में जीते हैं, कुछ लोग विभावों में जीते हैं कुछ लोग ख्वाबों में जीते हैं, कुछ लोग भावों में जीते हैं, जीते हैं सभी लोग अपनी-अपनी मस्ती में, किन्तु लगे रहते हैं जो लोग मोबाइल में वे सदा अभावों में जीते हैं। उनके जीवन में सद्भाव नहीं आ पाता। इसलिये महानुभाव! इस मोबाइल की जिंदगी से बाहर आओ। **समय का लुटेरा सबसे बड़ा यदि कोई है तो ये मोबाइल है,** इसने सब कुछ छीन लिया, हमारी संस्कृति व संस्कारों को छीन लिया। हमने स्वयं देखा है जो तीन बार मंदिर में आकर स्वाध्याय करते थे अब वह समय न जाने कहाँ चला गया है मंदिरों से, अब मंदिरों में स्वाध्याय करने वाले क्यों नहीं रहे? कहाँ गया वह समय। आप कहते हैं महाराज जी! कम्पटीशन का जमाना है। अरे! आज भी आप एक दाम की दुकान खोलकर बैठो, दुकान न चले तो गारण्टी हमारी।

बेईमानी का भाव मत रखो। तुम्हारा पुण्य है, तीन लोक में कहीं भी तुम्हारे भाग्य का है। वह भागकर के तुम्हारे पास आयेगा और यदि बेईमानी करके तुमने कमा लिया है तो तुम्हारे पास टिक नहीं पायेगा, जिसके भाग्य का है वहाँ चला जायेगा। ये सब बहाना बनाना कि आजकल कम्पटीशन बहुत है, बच्चों को पालना मुश्किल है, घर चलाना मुश्किल है कुछ मुश्किल नहीं है बेईमानी ज्यादा छा गयी है। पहले ईमानदारी थी एक व्यक्ति कमाता था दस जन खाते थे, एक घर में 10-12 बच्चे होते थे, सबके भाग्य का अपना-अपना था, फिर भी बचता था, कभी अपने जीवन में, या पड़ौसी के जीवन में बुरे दिन आ जायें तो उनकी सहायता भी करता था, आज घर में चार सदस्य हैं तो चारों कमा रहे हैं फिर भी कुछ नहीं बचा पा रहे। पहले व्यक्ति, दूध, घी मक्खन, मावा खाता-पीता था जितना भी खाता था सब पचता

था आज बिस्लरी का पानी पी रहा है वह भी नहीं पच पा रहा।

महानुभाव! मोबाइल ने जिंदगी बर्बाद कर दी। इस लुटेरे ने हमारा सबकुछ लूट लिया। लोग कहते हैं मोबाइल में अच्छी बातें आती हैं, हाँ कौन मना कर रहा है कभी-कभी अच्छी बातें भी आती हैं ऐसी आती हैं जैसे उड़द पर सफेदी। व्यक्ति से पूछो उड़द कैसा होता है? काला। कोई सफेद नहीं कहेगा, कौवा कैसा होता है? काला तो क्या उसका खून लाल नहीं है क्या? हड्डी सफेद नहीं है क्या फिर क्यों नहीं कहते कौवा लाल या श्वेत होता है काला क्यों कहते हैं? मुख्यता जिसकी है उसी की बात कही जाती है। उड़द में एक लकीर भर सफेद है ऐसे ही मोबाइल में अच्छी बात भी आ सकती है। नहीं आये कोई अच्छी बात तो मोबाइल चल ही नहीं पाये। कहीं न कहीं बुराई पर अच्छाई का पर्दा होता है उसके पीछे ही बुराईयाँ पनपती हैं यदि वह पर्दा न हो तो बुराईयाँ पनप ही न पायें।

महानुभाव! एक चींटी ने रानी चींटी से कहा–इस बालक ने हमारे घर पर पानी डाल दिया है मैं इसे काटूँगी, रानी चींटी ने कहा–नहीं काटना मत, क्यों! हो सकता है बच्चे से गलती हो गयी हो भूल से पानी गिर गया हो। नहीं, इसने जानबूझ कर हमारे ऊपर पानी डाला है मैं इसे काटूँगी। रानी चींटी ने आदेश दिया नहीं, काटना मत। पूछा क्यों ऐसी क्या बात है? रानी चींटी बोली यदि तूने इसे काट लिया तो इसकी माँ कहेगी कि अब मिट्टी में मत खेल, चींटी काट लेती है इसलिये तू मोबाइल से खेल। ये तुझे अपने पैरों से कुचल दे तब भी काटना नहीं, कम से कम ये मिट्टी में खेलने तो आ रहा है, वरना माँ आना ही बंद करा देगी।

वास्तव में माता को जब अपने मन की करनी होती है तो बालकों को मोबाइल पकड़ा दिया जाता है, बालकों को जब अपने मन की करनी होती है तो वे भी आँख बचाकर के चुपचाप मोबाइल का सहारा

लेकर के जो जी चाहता है वह करने लगते हैं। वे कौन सी दुनियाँ में खो रहे हैं तुम्हें कुछ नहीं मालूम। बाद में कहेंगे, महाराज जी बच्चे हमारे हाथ में नहीं। आज बेटा नॉन जैन लड़की से शादी करना चाहता है, लड़की नॉन जैन से शादी करना चाहती है। क्यों करना चाहती है? क्योंकि तुमने ही तो धक्का देकर के अपने संस्कार उसे नहीं दिये, दूसरे के संस्कार लेने के लिये मजबूर कर दिया, उन्होंने उनसे संस्कार प्राप्त कर लिये। अब क्यों रोते हो? तुम्हें स्वयं ही जैन धर्म अच्छा नहीं लगा था, तुमने स्वयं ही अपने धर्म की मर्यादा का उल्लंघन किया है, तुमने अपने कर्तव्यों में चूक की है इसलिये आज ये परिणाम भुगतने पड़ रहे हैं।

आपने जब धक्का देकर कह दिया जा मोबाइल से खेल, वो भी अब अपने माँ-बाप को निकाल देता है। जब तक घर अपने नाम नहीं कराया तब तक तो उनके पैरों में सिर रखेगा, जैसे ही मकान नाम हुआ वैसे ही माता-पिता अब भार लगने लगते हैं। पत्नी कहती है–मेरी बनती नहीं है उनसे या तो वे रहेंगे या मैं नहीं तो माता-पिता स्वयं कह देते हैं बेटा–तू घर छोड़कर मत जा, मैं ही चला जाता हूँ। किसने ऐसा समय प्रस्तुत किया, ये क्यों हुआ? ध्यान रखना जब भी एक्सीडेंट होता है छोटे वाहन-बड़े वाहन में, तो गलती बड़े वाहन की मानी जाती है। बड़ा कौन है आप या आपके बच्चे? फिर अपनी गलती स्वीकार करने में झिझक क्यों? मेरे परिवार में कोई कमी होती है तो अपराधी मैं। आपकी समाज में कोई कमी होती है तो अपराधी समाज का मुखिया जिसके हाथ में सत्ता है, जिसके हाथ में सत्य है जिसके हाथ में न्याय है, जिसके हाथ में दण्ड तुला है उसके रहते हुये भी यदि कहीं बिगाड़ हो रहा है तो छोटा नहीं बड़ा ही अपराधी माना जायेगा।

बच्चे बिगड़ गये, वे तो बच्चे थे, आपने बच्चों को अपने से बड़े होने क्यों दिया? आपके पास बच्चों को संभालने का समय क्यों नहीं

बचा। पहले एक माँ दस-बारह बच्चे पाल लेती थी आज आपसे अपना एक बच्चा क्यों नहीं पाला जा रहा, संस्कार क्यों नहीं दिये जा रहे? समय क्यों नहीं निकल रहा! औरों के लिये समय क्यों है? अपने बच्चों को अपने हृदय से लगाकर संस्कार व समय दोगे तो मैं गारण्टी के साथ कह सकता हूँ कि वह बच्चा आपका साथ जिंदगी भर नहीं छोड़ सकता। यदि तुमने उसे अंगुली पकड़कर यात्रा करायी है शिखर जी की, तो वह भी तुम्हें अपनी पीठ पर बैठाकर शिखर जी की वंदना करायेगा, तुम अंगुली पकड़कर मंदिर लाये हो तो वह भी तुम्हें डोली में बिठाकर तीर्थयात्रा करायेगा पर तुम्हारे पास तो समय ही नहीं है, तुमने किसी और को, बालक ने किसी और को अपना समय दे रखा है। आप तो उसे छोड़कर अकेले तीर्थ पर चले गये, यात्रा का भाव कम था मौजमस्ती की इच्छा ज्यादा थी यदि तुम्हारे मन में यह भाव आ सकता है तो तुम्हारे बच्चों के मन में यह भाव क्यों नहीं आ सकता।

महानुभाव! हम दोहरी जिंदगी जीना चाहते हैं, हम बच्चों के साथ जिंदगी दूसरी जीना चाहते हैं, बच्चों के पीठ पीछे जिंदगी दूसरी जीना चाहते हैं तो बच्चे भी दोहरी जिंदगी जीना सीख जाते हैं इसलिये वे तुम्हारे सामने कुछ और जिंदगी जीते हैं, तुम्हारे पीठ पीछे कुछ और जिंदगी जीते हैं। यह सब करने वाला है मोबाइल। जो बच्चे अपनी कॉलोनी के बाहर की बात नहीं जानते थे, वे बच्चे आज मोबाइल लेकर सब जानते हैं। तुम और हम जब 20-25 वर्ष के हो गये थे तब ये भी नहीं जानते थे कि विषय सेवन क्या चीज है आज 4-6 साल के बच्चों से भी पूछो तो वे तुम्हें ऐसा बता देंगे कि तुम्हारी आँखें शर्म से झुक जायेंगी। वे क्या-क्या नहीं कर रहे, इन सबको रोकना चाहिये। बच्चों का यदि कैरियर बनाना है तो उनके हाथ में मोबाइल नहीं कर्तव्य की पुस्तक देना चाहिये। बच्चों का भविष्य सुधारना है तो वास्तव में उन्हें अच्छे संस्कार देना चाहिये।

मंहगे मोबाइल अच्छी गाडियाँ, अच्छी घड़ी। अच्छे वस्त्र आपने दे दिये इनसे कुछ नहीं होता है जिंदगी बनती नहीं है। हाँ यदि बच्चों में धर्म के संस्कार दे दिये तो उस बालक की जिंदगी स्वर्ग जैसी बन जायेगी और जब बालक की जिंदगी स्वर्ग जैसी बनेगी तो आपकी जिंदगी भी फिर नरक जैसी नहीं स्वर्ग जैसी ही हो जायेगी। अपने बच्चों को मोबाइल देकर आप स्वयं अपने व बच्चों के जीवन के साथ खिलवाड़ कर रहे हो। जो वृद्ध पुरुष भी मोबाइल लेकर परमात्मा का नाम नहीं ले रहा, उसे जिसमें रुचि है चाहे राजनीति में, चाहे खेलों में वह वही देखता जा रहा है किसी को कोई रोकने टोकने वाले नहीं है सब निरंकुश होते जा रहे हैं और निरंकुश जो कुछ भी होता है वह संहारक होता है, पतन का कारण होता है। नदी दो किनारों से यदि निरंकुश हो जाये तो संहारक बन जाये, हाथी निरंकुश हो जाये तो सब कुछ उजाड़ दे, हमारा आपका जीवन भी निरंकुश न बन जाये वरना पूरी समाज व मानव जाति बिखर जायेगी, नष्ट हो जायेगी। इसीलिये संस्कारों का अंकुश होना चाहिये।

समय सबसे बड़ा लुटेरा है पर इस समय को भी लूटने वाला ये मोबाइल है। इससे बचने का सम्यक् पुरुषार्थ करो। इसे उतना ही उपयोग करो जैसे सब्जी में नमक। सब्जी में नमक आवश्यक है, आज घर में आवश्यकताओं को देखते हुये मोबाइल आवश्यक है हम ये नहीं कर रहे कि बिल्कुल मत छूओ पर जैसे सब्जी में नमक डलता है उतना ही उपयोग मोबाइल का करो। रोग होने पर जैसे औषधि का प्रयोग किया जाता है वैसे ही मोबाइल का प्रयोग करो। जैसे आप समय देते हो मल विसर्जन करने के लिये, दीर्घशंका, लघुशंका, स्नान के लिये उतना समय मोबाइल के लिये दो। बस थोड़ी देर के लिये आपने अपने मित्रों से संपर्क कर लिया, मैसेज भेज दिया, अच्छे कार्यों में प्रयोग करो। इस मोबाइल के माध्यम से पुण्य भी कमाया जा सकता

है। प्रतिदिन एक अच्छी बात अपने मित्रों को शेयर करो, प्रतिदिन प्रवचन भेजो, अच्छे तीर्थों के, भगवानों के चित्र भेजो। परन्तु आज फोटो भी भेजेंगे तो भगवान् पीछे हैं उनसे आगे खड़ा होकर फोटो खिचवायी और भेज दी। अथवा सेल्फी बनायेंगे और डाल देंगे। मोबाइल पर भगवान् दिखें या न दिखें मेरी फोटो दिखनी चाहिये। यदि इस प्रकार का उपयोग करोगे तो पाप कमाया जा सकता है। इसके माध्यम से यदि शांतिधारा की वीडियो बनायी या अन्य धार्मिक कार्यक्रम का वीडियो बनाकर डाला तो पुण्य भी कमाया जा सकता है। वस्तु का सदुपयोग व दुरुपयोग हमारे बुद्धि-विवेक पर आश्रित होता है।

महानुभाव! इस मोबाइल रूपी लुटेरे से बच जाओगे तो निःसंदेह भव दुःख से भी बच जाओगे, यदि इसमें फँस गये तो यह तो ऐसा चक्रव्यूह है एक बार मोबाइल का स्वाद आ गया तो जैसे श्वान सूखी अस्थि को नहीं छोड़ता ऐसे ही मोबाइल छूटता नहीं है फिर तो चाहे मंदिर हो या चौका सब जगह साथ चलता है। मोबाइल सबसे बड़ा हो गया, यह धर्म का दुश्मन होता जा रहा है। घर में बच्चों को छोड़ जाते हैं पर मोबाइल ले जाना कभी नहीं भूलते। इस मोबाइल को धर्म का शत्रु नहीं मित्र बनाकर उपयोग करने का पुरुषार्थ करो, इसी में आप सभी का हित है। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देते हैं।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

।।जैनं जयतु शासनं-विश्वकल्याणकारकं।।

बिना कली का चमन

महानुभाव! आज करते हैं अपने जीवन से जुड़ी वार्ता, जो सबके लिये आवश्यक है ''बिना कली का चमन।'' कली के बिना चमन सूना क्यों? कली की ऐसी क्या विशेषता है, कली को इतना महत्व क्यों? हम चमन को देखें तो हमारा देश एक चमन है उसकी कली है उसकी आजादी। कली किसी वस्तु का वह सौन्दर्य है जिसके लिये वह जीता है और मृत्यु को स्वीकार करता है। कली का आशय है वह उपलब्धि जो उपलब्धि ही उसके जीवन को सार्थकता प्रदान करती है। कली का जीवन है जैसे साधक की साधना से प्राप्त ऋद्धि। कली का मतलब है सम्यक्त्व के मूल में प्राप्त होने वाली पाँच लब्धियाँ, कली का मतलब है केवली को प्राप्त होने वाली नवलब्धियाँ, कली जीवन की वह शाश्वत सम्पत्ति है जिसे प्राप्त करके फिर कुछ प्राप्त करने की इच्छा न रहे। कली का आशय है किसी अरिहंत के द्वारा मुक्ति कांता को वर लेना, कली का आशय है अपने जीवन की नियति को प्राप्त कर लेना। यदि इन सबको उनके आधार से अलग कर दिया है तो जीवन मृत तुल्य ही कहलायेगा।

हमारे इस बड़े से शरीर में नन्हीं सी चेतना कली के रूप में है जिसके माध्यम से सारा शरीर मुखरित है, जीवंत है, हर्षित है, आनंदित है, पुलकित है। यदि नन्हीं सी कली के रूप में रहने वाली चेतना शरीर में न रहे तो शरीर महज मिट्टी का ढेर है इसे

मानवकृति का एक पुद्गल स्कंध कह सकते हैं। जीवन में जो महत्व श्वाँसों का है वही महत्व किसी चमन में कली का है। जिस प्रकार का दूध का महत्व उसकी मलाई से है, घृत से है, घृत का महत्व उसकी चिकनाई से है, उसकी पौष्टिकता से है, चेहरे का महत्व नेत्रों से है, नेत्रों का महत्व ज्योति से है, तिलों का महत्व तेल से है, समीर का महत्व उसके प्रवाह से है, नदी का महत्व उसके जल से है, संगीत का महत्व मधुर ध्वनि से है, किसी योद्धा का महत्व उसकी वीरता से है, किसी शासक का महत्व उसकी गंभीरता व दूर दृष्टि से है, किसी नाविक का महत्व उसके नाव संचालन से है, लकड़ी का महत्व उसकी ज्वलनशीलता है, किसी पुष्प का महत्व उसकी गंध से है, फलों का महत्व उसके स्वाद से है, किसी वृक्ष का महत्व उसकी जड़ों से है या उस तरु पर लिपटी हुयी त्वचा से है, इस तरह से प्रत्येक वस्तु अपनी-अपनी किसी अभिन्न वस्तु से महत्वपूर्ण बन जाती है।

यदि सागर में रत्न न हों तो उसे रत्नाकर कौन कहे? यदि तालाब में पुष्प न खिलें तो उस तालाब की महिमा कौन गाये? यदि आकाश में सूर्य चन्द्रमा के साथ अन्य तारे-नक्षत्र अपना दिव्य प्रकाश न दें तो उस गगन की शोभा को कौन कवि अपनी कविता में लिखना चाहेगा? ऐसे ही जीवन में जीवंत कली का भी बहुत महत्व है। अब देखते ये हैं वह जीवंत कली कौन है? जिस कली के बिना सारा चमन ही शून्यवत् हो जाये, सारा चमन ही नीरस हो जाये, जैसे व्यंजनों में से नमक निकाल दिया जाये तो सब व्यंजन नीरस कहलाते हैं। यदि किन्हीं मिष्ट पदार्थों में से मिठास को निकाल दिया जाये तो मिष्ट पदार्थ स्वादहीन हो जाते हैं। यदि जीवन में से शांति को निकाल दिया जाये तो जीवन भी भार स्वरूप हो जाता है ऐसे ही प्रत्येक चमन में वह कली आवश्यक है। जैसे घर आँगन में लोग

तुलसी को लगाते हैं।

महानुभाव! वह कली है घर की बेटी, वह कली है मंगल रूप कन्या, वह कली है दोनों कुलों को सुशोभित करने वाली बिटिया। उसके बिना न तो माता-पिता का कुल या परिवार आनंद का अनुभव कर पाता है और न ही द्वितीय परिवार जहाँ वह कली जाती है पुष्प बनकर के अब वहाँ फल देने में समर्थ होती है। वह कली निःसंदेह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में एक निमित्त है। उस कली के बिना गृहस्थ अपनी धर्म साधना में पूर्ण सफल नहीं हो पाता उसे आवश्यकता होती है सहारे की। वह अर्थोपार्जन करता है किन्तु अर्थ से सुख नहीं मिलता जब तक घर में महकती-चहकती एक चिड़िया बिटिया रूपी कली न हो। विषय सेवन के लिये भी किसी घर की कली अपने घर के आँगन की पुष्प नहीं बनती है तो जीवन में आनंद व सुख का अनुभव नहीं हो पाता। मोक्ष प्राप्त करने के लिये भी साधना की कली, भावना-अनुप्रेक्षा की कली, उपासना-आराधना की कली आस्था-निष्ठा की कली हमारे जीवन में मुखरित होती है तभी मुक्ति सुंदरी परिणय करने के लिये बरवश हमारी ओर निहारती रहती है।

वह बिटिया घर आँगन की कली है जिसके माध्यम से जीवन में जीवंतता आती है, परिवार में खुशहाली आती है, जिसके माध्यम से समृद्धि बढ़ती है, जिससे माध्यम से जीवन जीने का मकसद समझ आता है इसलिये संसार में सबसे बड़ा कोई राजा है, सबसे बड़ा व्यक्ति है तो वह है बेटी का पिता। बेटे का पिता तो हर कोई हो सकता है किंतु परियों सी बेटियों को पालने का सामर्थ्य यदि किसी में हो सकता है तो किसी राजा में हो सकता है।

ये कलियाँ पुष्प बनती हैं, ये कलियाँ न केवल तरु की बल्कि पूरे चमन की शोभा बढ़ाती हैं। घर आँगन की खिलती हुयी कलियाँ

है बेटियाँ,

माँ बाप का दर्द समझती हैं बेटियाँ,
सुख शांति की गलियाँ हैं बेटियाँ।
लड़के तो आज का दिन हैं, आने वाला कल हैं बेटियाँ॥

महानुभाव! लड़के पिता पर अपना अधिकार जमाते हैं, कहते हैं पिता की सम्पत्ति मेरी सम्पत्ति है, मेरे बाप का है। किन्तु बेटी इस प्रकार अपने पिता पर अधिकार नहीं जमाती, वह कहती है मैं अपने पापा की लाड़ली बेटी हूँ। पिता कुछ भी कमाकर लाता है बेटा कहता है मेरा है, हक से माँगता है किंतु बेटी अपनी आवश्यकता की वस्तु माँगने में भी झिझकती है, सोचती है बाद में माँग लूँगी। कोई वस्तु डिस्टर्ब हो गयी तो बेटा उसे फेंक करके अलग कर देगा मुझे नहीं चाहिये आप ही रखो, किन्तु बेटी वो है जो टूटी माला को पुनः गाँठ लगाकर के पहन सकती है। जब पिता बाहर जाते हैं तो पत्नी पूछती है तुमने आज क्या कमाया, बेटा पूछता है–मेरे लिये क्या ला रहे हो किन्तु बेटी पूछती है पापा आप कब आ रहे हो। यह बेटी का मन होता है जो पिता के दुःख को अपना दुःख मानकर के चलती है। एक नहीं अनेकों बेटियाँ हैं इस भारत भूमि पर जिन्होंने बेटे की कमी को पूर्ण किया है। बेटी ने बेटे का अहसास कराया है, बेटा बनकर के माता-पिता के दुःख दर्द को बाँटा है, माता-पिता के वृद्धापन का सहारा बनी हैं बेटियाँ, बेटियाँ जिन्होंने अपनी सुख-सुविधा को छोड़कर अपने माता-पिता की सेवा करने के लिये अपने मन में निर्णय लिया है कि हमें शादी नहीं रचाना है, माता-पिता की सेवा करना है।

महानुभाव! शायद मैं समझता हूँ ऐसे उदाहरण पुरुषों में बहुत कम मिल पायेंगे कि मैं शादी न करूँ माता-पिता की सेवा करूँ। ऐसे कई लड़के हैं जो वैराग्य की भावना से युक्त थे, किंतु उन्हें

लगा कि हमें वृद्ध अवस्था में अपने माता-पिता की सेवा करनी है, मैं उनका इकलौता बेटा हूँ। तो उस इकलौते बेटे ने माँ बाप की सेवा करने के लिये शादी तो कर ली कि हम मिलकर सेवा करेंगे पर उसने ये नहीं सोचा कि मैं अकेला रहकर सेवा करूँ। बेटी ये भी सोच सकती है, मुझे संसार सुख नहीं चाहिए, मुझे तो माता-पिता की प्यारी सी गोद चाहिये। चाहे पिता के पास अपूर्व सम्पत्ति हो, चाहे पिता के महल में गुलाबों का ढेर लगा हो, चाहे पिता के पास कितने भी वाहन हों, सेवक हों, चाहे कितनी ही धर्मपत्नी हों किन्तु जो अनुभूति अपनी लाडली बेटी को अपने हृदय से लगाने पर होती है वह अनुभूति विश्व की किसी भी शक्ति को प्राप्त करके नहीं हो सकती।

महानुभाव! बेटियों के महत्व को संसार ने हर काल में हर समय पर उचित मूल्यांकन किया, ऐसा नहीं है कि बेटी पंचमकाल में महत्वपूर्ण नहीं, ऐसा नहीं कि बेटियाँ का महत्व किसी क्षेत्र विशेष पर कम हो जाता हो, उनका महत्व कभी खत्म नहीं होता। अपितु महत्व जब कभी-कभी उनका अभाव होता है तो महत्व और ज्यादा बढ़ता दिखायी देता है। बेटी जब पास होती है तब भी माता-पिता के दुःखों का अवशोषण करने वाली होती है, दूर होती है तब भी माता-पिता से फोन से बात करके, माता-पिता के मुख को विकसित करने वाली होती है जैसे सूर्य पास में रहकर के तपन को विकसित करता है, चन्द्रमा कुमुदिनी को। ये बेटियों का साहस है जो माता पिता की अंतरंग की अनुभूति का अनुभव कर सकती हैं अन्यथा कई बार तो पिता की अनुभूति बेटा नहीं कर पाता। अपने पति की मनोवेदना को जीवन साथी भी नहीं समझ पाती किंतु अपने पिता के हृदय का टुकड़ा वह बेटी जो पिता के अंतरंग की परिणति को भी जानने में भी समर्थ होती है।

बेटियों के बारे में आचार्यों ने भी कहा है कि वह कन्या बाल्यावस्था में भी शुभकर होती है, यदि वह कन्या यौवन अवस्था को प्राप्त होती है तब भी अपने जीवन साथी को सुख देती है, वृद्ध अवस्था में पुत्रों के लिये सुख देने वाली होती है। जैसे सम्यग्दर्शन अव्रती के लिये सुखद होता है, सम्यग्ज्ञान व्रती बनने के लिये प्रेरणा देता है वैराग्य का कारण है, सुख का कारण है और सम्यक् चारित्र मोक्ष का साधन बनता है। ऐसे ही बेटी कभी श्रद्धा के रूप में, कभी ज्ञान के रूप में, कभी चारित्र के रूप में दृष्टिगोचर होती है।

बेटियों ने राज्य का संचालन किया, बेटियों ने देश की रक्षा के लिये कुर्बानियाँ दी, बेटियों ने धर्म की समृद्धि के लिये तप और त्याग को स्वीकार किया। ब्राह्मी और सुंदरी वे बेटियाँ ही थी जिन्होंने तृतीय काल के अंत में सबसे पहले शीलव्रत को स्वीकार किया। महाराज ऋषभदेव तो वैरागी बाद में हुये, उन्होंने तो दीक्षा बाद में ली किंतु ब्राह्मी और सुंदरी ने अपने पिता के मान की रक्षा करने के लिये कि हमारे पिता का सिर हमारे कारण किसी अन्य राजा के चरणों में न झुके।

वार्ता आपको ज्ञात है। शिक्षा ग्रहण करने के लिये ब्राह्मी, सुंदरी अपने पिता के पास गयी, महाराज ऋषभदेव का राज्याभिषेक हो चुका था, भरतादि पुत्र भी थे तभी बेटी सुंदरी ने पूछा–पिता जी ये राजा-महाराजा आपके दरबार में क्यों आये हैं? आपको भेंट चढ़ाकर के नमस्कार क्यों कर रहे हैं? महाराज ऋषभ देव ने समझाया–बेटी ये भारतीय संस्कृति है यह एक व्यवस्था है, अनुशासन है हर अधीनस्थ राजा अपने बड़े राजा के लिये शक्ति अनुसार भेंट समर्पित करता है आधीनता स्वीकार करता है और नमस्कार करता है यह एक लोक धर्म है। ब्राह्मी ने पूछा–पिता जी! आप तो सर्वोच्च राजा है, आपको तो सारा जग प्रणाम करता है, सभी आपको शीश झुकाते

हैं, भेंट समर्पित करते हैं। तभी महाराज ऋषभदेव ने कहा–नहीं बेटी–यद्यपि वर्तमान में सभी राजा प्रणाम करते हैं यह बात ठीक है किंतु भविष्य में जब आप यौवन अवस्था को प्राप्त होंगी तब मैं आपका पाणिग्रहण संस्कार जिस राजकुमार के साथ करूँगा, वह मेरा पूज्य होगा, उसे मैं आदर भी दूँगा और अपनी कन्या भी। तभी दोनों बेटियाँ कहती हैं–नहीं पिता जी! हमारे कारण आपको अन्य किसी अधीनस्थ राजा को प्रणाम करना पड़े, उसके लिये सिर झुकाना पड़े ये कदापि नहीं हो सकता। हम संकल्प करते हैं कि हम जीवन में विवाह ही न रचायेंगे, हम आत्मकल्याण करेंगे, संयम के मार्ग को स्वीकार करेंगे।

महानुभाव! ऐसा उदाहरण जो ब्राह्मी सुंदरी ने प्रस्तुत किया, क्या इस प्रकार का त्याग किसी पुत्र में देखने को मिलता है, क्या कोई पुत्र ऐसा कर सकता है। बेटियाँ ही कर पायेंगी। पद्मपुराण में प्रसंग आया कल्याणमाला का, जिसने अपने पिता के राज्य का संचालन किया पुरुष के भेष में रहकर, कोई ये जान ही नहीं पाया कि ये पुरुष है या स्त्री, केवल धाय माँ और उसकी माँ जानती थी, उसके पिता जानते थे कि मेरा बेटा नहीं है, मेरे राज्य को कोई भी हथिया लेगा, इसलिये बेटी को कहा–अगर तुम समर्थ हो तो राज्य का संचालन करो पुरुष भेष में रहो। कल्याणमाला ने यही किया। जब वनवास के समय राम-सीता-लक्ष्मण वहाँ पहुँचे तब वे लक्ष्मण से मिली, तब रामचंद्र की अनुमति से लक्ष्मण को अपना जीवन साथी बनाकर फिर राज्य का संचालन उस प्रकार से किया।

देशभक्ति में मनु जैसी (लक्ष्मीबाई) बेटी थी जिसमें बचपन से ही देश भक्ति का रंग चढ़ा हुआ था। देश को स्वतंत्र देखने की भावना थी, पराधीनता उन्हें नहीं सुहायी। अरुणिमा सिन्हा यह बेटी आज भी है, बरेली से दिल्ली जाते समय मार्ग में किसी बदमाश

लड़कों ने उसके गले की चेन खींची और धक्का दे दिया, वह चलती ट्रेन में से नीचे गिरी, वह रातभर वहाँ पर पड़ी रही, जब अखबारों में समाचार छपा कि अरुणिमा सिन्हा आत्महत्या करना चाहती थी परिवार वालों से परेशान थी या और व्यक्ति जो सोच सकता था, सबने अच्छे-बुरे कमेन्ट्स उसके बारे में किये। वह अरुणिमा रातभर वहाँ पड़ी रही, रात भर में उसके ऊपर से लगभग 49 ट्रेनें निकल गयीं एक पैर घुटने से आगे तक कट गया, दूसरा पैर लटक रहा था घुटने के पास से, वह पड़ी है स्टेशन के आगे उसे जंगली चूहे खा रहे थे, कभी मूर्च्छित हो जाती कभी होश आता चीखती-चिल्लाती। प्रात:काल गार्ड लालटेन लेकर गया तो देखता है रेल की पटरी के समीप पत्थर-गिट्टियों के बीच कोई शव पड़ा हुआ है। किन्तु जब पास में पहुँचा तब कराहने की आवाज आयी, उसने देखा ये तो जीवित है बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने समाचार दिया आस-पास के लोग आ गये, भीड़ इकट्ठी हो गयी, बरेली के डॉक्टर वहाँ पहुँचे, कहा इसके पैर काटे जायेंगे ऑपरेशन होगा, डॉक्टर ने कहा इसके लिये मरीज को एनेस्थीसिया देना पड़ेगा पर वो व्यवस्था अभी है नहीं। अरुणिमा ने कहा-आप चिंता न करो, आप अपना कार्य करो, इसे सुन्न करने की आवश्यकता नहीं। डॉक्टर ने कहा-आप सहन नहीं कर सकोगी। वह बोली जब 49 ट्रेन अपनी आँखों से अपने पैरों पर जाती देख लीं तो इसको भी मैं सहन कर सकती हूँ। उसका ऑपरेशन हुआ ऑपरेशन होने के उपरांत उसके माता-पिता ले गये, वह ठीक हुयी, उसके मन में एक बात सवार हो गयी, कि मेरे संबंध में जो मिथ्या बातें प्रसारित हुयीं कि मैं आत्महत्या करना चाहती थे, मेरा किसी से प्रेम था या परिवार से परेशान थी आदि-आदि बातों के उत्तर मैं यहाँ से दूँगी तो कोई सुनेगा नहीं। उसने संकल्प किया कि मैं ऐवरेस्ट की चोटी चढूँगी, अपने माता-पिता से कहा, लोगों को पता चला तो लोग हँसने लगे, लगता

है इसको सदमा लग गया है या सपना देख लिया है, जिसके दोनों पैर कट गये हों, आर्टीफीशियल पैर लगे हैं।

डॉक्टर ने कहा है छ: महीने तक तो तुम दोनों ओर से किसी का सहारा लेकर ही चलना वो भी सौ कदम से ज्यादा नहीं। उसके बाद शनै: शनै: प्रयास करना, जीवन में कभी ये मत सोचना कि एक-दो किलोमीटर चलना है। उसने कहा कि मैं दौडूँगी, एवरेस्ट की चोटी चढूँगी। लोगों ने उसे पागल कहा। वह सबसे कहती पर किसी ने उसकी बात नहीं सुनी उसके भाई ने पूछा-तुम सही बताओ तुम्हारे मन में क्या चल रहा है। वो बोली मेरा संकल्प है मैं ऐवरेस्ट की चोटी चढूँगी। भाई ने कहा-बहिन तू बिना सहारे के चल नहीं सकती इतनी ऊँचाई कैसे चढ़ सकती है। भाई! कुछ भी हो मेरा संकल्प है, अगर तू मेरी सहायता कर सकता है तो सहायता कर।

भाई ने बहिन के आँसूओं को देखा-उसने कहा तेरा मन है तो मैं तेरा सहायक बनता हूँ, वह उसे उसके अध्यापक के पास ले गया, उन्होंने कहा-बेटा! ये बहुत बड़ा लक्ष्य है तुम कैसे प्राप्त करोगी, उसने कहा आपका आशीष है तो मैं सब कुछ प्राप्त कर लूँगी। और उसने शनै: शनै: उनके मार्गदर्शन से चलना प्रारंभ किया। अंदर की आत्म शक्ति से बिना बैसाखी के चलने लगी। पुन: धीरे-धीरे उसकी चाल बढ़ने लगी अब वह एवरेस्ट की चोटी चढ़ने के लिये निवेदन करती है, उसका भाई व अध्यापक उसके साथ गये। वहाँ बहुत लोग थे चढ़ने वाले, कुछ तो थोड़े कदम चलकर ही लौटकर आ गये, कुछ थोड़ी-थोड़ी दूरी से लौट आते सबको अपने प्राण प्यारे थे। ऑक्सीजन की कमी थी, ऑक्सीजन का सिलेण्डर लेकर जाना पड़ता था। वह चढ़ती है, चढ़ती जाती है साथ में दो चार कैमरे भी ले गयी कोई खराब न हो जाये, मुझे अपने साथ वीडियो भी बनाकर लानी है। कल को कोई ये न कहे कि चढ़ी नहीं। उसका

भाई भी साथ था। मार्ग में चढ़ते-चढ़ते उसका पैर फिसला और जो कृत्रिम पैर था वह हिलने लगा, अब बड़ा मुश्किल पैर को खींचने लगी, कैसे चढ़े ऊपर फिर भी साहस नहीं छोड़ा आगे बढ़ी, ऑक्सीजन का सिलेण्डर खत्म हो गया, अब तो और मुश्किल हो गया, तभी इधर से जाते हुये एक व्यक्ति ने सोचा मैं नहीं जा पाऊँगा। तुम यदि जाना चाहती हो तो मैं अपना सिलैण्डर तुम्हें दे दूँगा। उसने उसे प्राप्त किया, आगे चढ़ती चली गयी, उसकी गति भले ही कम थी, पर उसने हिम्मत नहीं हारी।

नीचे खड़े लोग इंतजार कर रहे थे। चढ़ने वाले व्यक्ति औसतन 17-18 घंटे में लौटकर आ जाते हैं ये 20 घंटे तक लौटकर नहीं आयी, 21-22 घंटे हो गये, उसके साथी तो आने लगे, लोगों ने निश्चय कर लिया कि शायद अब वह संसार में नहीं रही। 28 घंटे के बाद जब लौटकर के आयी तब लोगों को विश्वास नहीं हो रहा था कि ये वो ही अरुणिमा सिन्हा है जो ऐवरेस्ट की चोटी चढ़कर आयी है। उसके भाई ने और लोगों ने उसके फोटोग्राफ्स लिये, वीडियो बनायी। उसके बाद उसने विश्व की अन्य 7 पर्वत चोटियाँ भी चढ़ीं।

महानुभाव! संकल्प में बहुत शक्ति होती है। लड़कियाँ क्या नहीं कर सकती। आकाश में हवाई जहाज भी उड़ा सकती हैं तो पानी में तैर कर रसातल तक भी पहुँच सकती हैं। वह नाव का संचालन भी कर सकती हैं, नेतृत्व कर सकती हैं। वह प्रशासनिक अधिकारी बनकर के शासन भी कर सकती है। वह अच्छी सतह भी दे सकती हैं तो सही निर्णय भी ले सकती हैं। बेटी क्या नहीं कर सकती। बेटी वास्तव में एक चैतन्य निधि है जिसे पुण्यवान् ही प्राप्त कर पाते हैं।

बेटी घर की आन है, बेटी घर की शान।
जिस घर में बेटी नहीं, सूखा वह उद्यान॥

यदि पुष्प वाटिका सूख जाये तो महत्वहीन हो जाती है ऐसे ही जिस घर में बेटी नहीं होती वह घर भी महत्वहीन हो जाता है। उस घर में जीवंतता प्रदान करने वाला, किलकारी भरने वाला नहीं है तो बेटों के माध्यम से घर महकता नहीं है। कलियों से ही पुष्पवाटिका महकती है, पुष्पों से महकती है। बेटी का अपना अलग महत्व है।

क्या राखी, होली दीवाली, मिष्ठान्न वस्त्र उपहार।
जिस घर में बेटी नहीं, सूने सब त्यौहार॥

कोई भी त्यौहार हो रक्षाबंधन, दीपावली, होली, दौज, तीज कोई भी पर्व हो बेटियाँ घर में रंगोली बनाती हैं ऐसा लगता है घर मुस्कुरा रहा हो। बेटियाँ जब अपने पिता से लड़याती हैं तो ऐसा लगता है स्वर्ग धरा पर उतर आया हो, बेटियाँ जब माता-पिता के दुःखों को बाँटती है, ऐसा लगता है घर में किसी मसीहा ने अवतार ले लिया हो। बेटी की अनुभूति एक पिता ही कर सकता है। जिस पिता ने अपने जीवन में बेटी प्राप्त नहीं की समझो उसका पिता बनने का वह सपना ही रहेगा। बेटे का पिता बनना कोई महत्व की बात नहीं, बेटा तो सम्पत्ति का मालिक होता है किंतु दुःख को बाँटने वाली तो बेटी होती है। बेटी के बारे में यही समझना चाहिये कि बिना बेटी के हमारा जीवन बहुत छोटा सा है, बेटी की किलकारियों के साथ, आनंद के साथ बिताया गया जीवन प्रत्येक दिन बसंत की तरह से होता है घर में बसंत ऋतु बस जाती है, आनंद की वर्षा होने लगती है। ऐसा लगता है प्रत्येक दिन ब्रह्मदिन है प्रत्येक काल ऊषा काल है, ऐसा लगता है प्रत्येक दिन बसंत बहार लेकर के आया है, ऐसा लगता है प्रत्येक दिन चन्द्रमा की चाँदनी पूर्णिमा के साथ उदित हुयी है, ऐसा लगता है सूर्य का दिव्य तेज अपने घर में फैलता जा रहा है घर में बेटी नहीं है तो फिर लगता है कि निःसंदेह घर में कुछ न कुछ कमी तो है।

मातृ शक्ति यदि नहीं बची तो, बाकी यहाँ रहेगा कौन,
प्रसव वेदना लालन-पालन, सब दु:ख दर्द सहेगा कौन।
मानव हो तो दानवता को, त्यागो फिर ये उत्तर दो,
इन नन्हीं सी जान के दुश्मन को इंसान कहेगा कौन॥

जो उस बेटी को अपनी कोख से जमीन पर नहीं ला पाते क्या वे इंसान हैं? यदि बेटी कोख में आयी है तो तुम पर पूरा विश्वास व भरोसा करके आयी है, उस बेटी को जमीन पर लाने में तुम निमित्त हो, जमीन पर आने के पहले ही उस बेटी को संसार से बाहर भेज दिया, उससे बड़ा दुश्मन मानवता का और कौन होगा। बेटी नि: संदेह एक ऐसा अवतार है, जिसके माध्यम से सारी सृष्टि जीवंतता को प्राप्त करती है।

मेंहदी रोली कंगन का कोई श्रृंगार नहीं होता,
रक्षाबंधन भाई दूज का त्यौहार नहीं होता।
रह जाते हैं वो घर सूने, केवल सूने आँगन बनकर,
जिस घर में बेटियों का अवतार नहीं होता॥

महानुभाव! जिस घर में बेटी नहीं, भाई द्वार पर खड़ा इंतजार कर रहा है काश! मेरे पास भी एक बहिन होती, पिता भी किसी दूसरी लाडली को विदा होते देख रहा है उसको भी मन में अहसास होता है काश! मेरे पास भी एक लाडली बेटी होती। चाहे बेटा मुख मोड़े पिता की आँख गीली हो या न हो किन्तु बेटी जब घर छोड़े तो पिता का गला भर जाता है, वह किसी कोने में छिपकर के सुबक-सुबक करके रोता है। बेटी की अनुभूति नि:संदेह पिता की रग-रग में ऐसा विश्वास व अहसास भरने वाली होती है जो अहसास और विश्वास सहसा अन्य किसी वस्तु से प्राप्त नहीं किया जा सकता।

जिंदगी में किसी का साथ काफी है,
अपने हाथों में हो किसी कली का हाथ काफी है।

दूर हो या पास कोई फर्क नहीं पड़ता,
बिटिया की तोतली भाषा का अहसास काफी है॥

कभी भी पिता बिटिया की तोतली भाषा को आँख बंद करके सोचे और पलकों के अंदर अश्रु न आयें ऐसा नहीं हो सकता। बिटिया की बिदाई ही पलकों को गीला नहीं करती, बिटिया की स्मृति भी पलकों को गीला कर देती है। क्योंकि बेटी होने का अहसास एक बेटी ही करा सकती है, और तो और शायद पिता अपने पिता की बात भी न माने, अपनी माँ की बात भी न माने, अपने जीवन साथी की बात भी न माने, अपने बेटे की बात भी न माने किंतु बिटिया सामने आकर खड़ी हो जाये तो पिता में सामर्थ्य नहीं कि बेटी की बात को नकार सके। वह बेटी की बात बिन कहे भी समझ लेता है, बेटी का मनोभाव पिता के हृदय को बहुत शीघ्र छू लेता है जैसे दूर बैठा हुआ भ्रमर किसी भी पुष्प की गंध का आभास कर लेता है ऐसे ही पिता के दर्द का अभास बेटी को बहुत शीघ्र होता है।

एक बेटी किसी माँ के गर्भ में आयी, ससुराल का दबाब ऐसा था कहने लगे कि हमें बेटी नहीं चाहिये। सास ने ताना दिया पहली बार में बेटी को जन्म देगी, मुझे नहीं चाहिये बेटी, चल निकल घर से। संस्कारवान् वह कन्या थी, बेचारी रोने लगी, सोचा ससुर कुछ कहेंगे किंतु सब कुछ सुनने देखने के उपरांत भी कुछ नहीं कहा वे मौन रहे। ननद, जेठानी, देवर, जेठ कोई कुछ नहीं बोले। उसने अपने पति से कहा–देखो आप मेरे प्राणनाथ हो, मैं अपने मन की बात आपसे कह सकती हूँ, बेटी मेरे गर्भ में है यह आपका ही अंश है बेटा हो या बेटी हमें जन्म देना चाहिये। मैं वो नहीं कर सकती जो आपके माता-पिता, बहिन, भाई-भावज चाहती हैं। पति ने कहा देखो मैं कुछ नहीं कह सकता परिवार के सामने मैं बोल नहीं सकता

जैसा वे कहते है वैसा करो। उसने कहा मैं ऐसा हरगिज नहीं करूँगी। वह बोला इस घर में रहना है तो करना ही पड़ेगा। उसने कहा चाहे कुछ भी हो, चाहे तुम मुझे घर में रखो या न रखो, किंतु मैं बेटी को जन्म दूँगी यह कलह चलती रही। क्रमशः नौ महीने पूरे हो गये। उसने अपने भाई को फोन कर दिया था, भाई ने कहा बहिन चिंता न कर तू बेटी को जन्म दे दे, तेरा परिवार नहीं पाल सकता तो कोई बात नहीं मैं तेरी बेटी को पालूँगा। जब वह अस्पताल पहुँची, बेटी को जन्म दिया, उसका भाई तुरंत आया और अस्पताल से ही बेटी को लेकर चला गया, डॉक्टर से कहा—यह पुत्री का जन्म अच्छे से हो गया, अब इस पर मेरा अधिकार है। ये मेरी बहिन की पुत्री है। घर वाले कुछ न कह सके, वह बेटी को लेकर चला गया, जाकर अपनी पत्नी को दे दिया। पत्नी ने उस बच्ची का पालन पोषण किया, अच्छे संस्कार दिये, और अच्छी शिक्षा भी उसे प्राप्त हुयी। बड़े होने पर जब उस बेटी को ज्ञात हुआ कि वास्तव में मेरे असली माता-पिता कौन है, वह अपने मामा के यहाँ पली-बड़ी हुयी है फिर उसे संसार-भोगों से विरक्ति हो गयी। पूज्य आचार्य श्री के पास जाकर के उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया, शिक्षा प्राप्त कर कुछ समय पूर्व भोपाल में आई एस के पद पर नियुक्त हुयी।

महानुभाव! कौन बेटी कहाँ तक पहुँच सकती है कौन जानता है। बेटी के पास भी चार अँगुल का मस्तिष्क है उसमें उसका भाग्य लिखा है। कौन जानता है वह बेटी ही तुम्हारी सुसमाधि कराने में कारण बने, कौन जानता है तुम्हारे कुल का नाम रोशन करे, जिन शासन की प्रभावना करे, कौन जानता है कौन सी बेटी के रूप में कौन सी दिव्य आत्मा तुम्हारे परिवार में जन्म ले रही है। जिन्हें बेटी की कीमत नहीं मालूम, बेटी का महत्व नहीं मालूम वे ही वास्तव में बेटी का अपमान कर सकते हैं। जिसे बेटी का महत्व मालूम है,

बेटी की कीमत मालूम है वे जानते हैं जहाँ पर बेटी उठ खड़ी होती है तभी विश्व में सबसे बड़ी विजय होती है। जिस कार्य में बेटी सहभागी बन जाती है उस कार्य में असफलता तो होती ही नहीं सफलता भी एक अनुपम तरीके की होती है।

बेटी जीवंत चमन की कली है, उस कली को कुचलो मत। एक बार किसी कवि ने अजन्मी बेटी का पत्र जो उसकी माँ के नाम था वह पढ़ा। उसने अपनी पीड़ा रो-रो कर लिखी। जब कविता के माध्यम से सुनाया तो श्रोताओं के आँसू बहने लगे कि क्या माँ इस प्रकार की क्रूर और दुश्मन हो सकती है जो अपने ही गर्भ के शिशु का कत्ल करा दे। यदि जन्म दे दिया होता, फिर कत्ल कराया होता तो फाँसी की सजा होती उसका इस संसार में माँ के अलावा दूजा कौन है? सबसे पहला आश्रय तो माँ की कुक्षि है। माँ के हृदय से गया करुणा का जल, माँ के उदर से गया वह भोजन का रसांश व शरीर की धातु-उपधातु के माध्यम से जिसका शरीर बन रहा है वही उसका घात करने पर उतारू हो जाये, गर्भपात करवाने के लिये तैयार हो जाये तो समझो वह आत्माघात से भी बड़ा पाप कर रही है।

महानुभाव! बेटी जब तक यहाँ रहती है तब तक इस घर को रोशन करती है, वहाँ जाती है तो उस घर का अंधकार भी दूर करती है। कभी कन्या बनकर के मंगल होती है तो कभी लक्ष्मी बनकर बहुरानी के रूप में जाती है तो कभी वृद्धा होकर के संरक्षिका बनती है। एक बेटी ने पिता से पूछा—पापा! ये जो आँगन में पेड़ लगा हुआ है इस पौधे को यदि घर के पिछवाड़े में लगा दें तो? पिता जी ने कहा—बेटा! अब ये पेड़ बड़ा हो गया है चार-पाँच साल का हो गया है इसे उखाड़ कर वहाँ लगाना बड़ा मुश्किल है। वह बोली—वहाँ पर भी तो इसे पानी मिलेगा खाद-प्रकाश भी मिलेगा। पिता ने कहा—हाँ संभव तो है पर फिर भी पौधा सूख जायेगा। जिसकी जड़ जहाँ पर

है जहाँ उत्पन्न हुआ है यहाँ जितनी अनुकूलता से जीवंत रह सकता है उतनी अनुकूलता शायद वहाँ मिले या न मिले इसीलिये इसे उखाड़ करके वहाँ लगाना उचित नहीं। बेटी ने कहा–पापा! आपके आँगन में एक और भी तो पेड़ है जो बाईस साल से आपके आँगन में है, उसे उखाड़कर के आप दूसरे के आँगन में लगाते हैं तब आप ऐसा क्यों नहीं सोचते? पिता की आँखों में आँसू आ गये कि 22 साल पुराना पेड़ और कौन हो सकता है। वह बेटी है जिसे अपने घर से रोते-रोते पिता विदा करता है, वह इस घर के पौधे को दूसरे के आँगन में रोपता है।

महानुभाव! बेटी प्रकृति की वह अनुपम कृति है जिससे संस्कृति जीवंत है, जिसके माध्यम से व्यक्ति अपनी प्रकृति को प्राप्त करने की स्वीकृति प्रदान करते हैं। बेटी एक ऐसी कृति है जिसके पीछे-पीछे संस्कृति अनुकृति के रूप में दृष्टिगोचर होती है। उस बेटी के महत्व को समझो, उस बेटी का सही मूल्यांकन करो, उस बेटी को कोई खिलौना मत समझो। गर्भ में आयी हुयी बेटी को ये न सोचो कि इसमें जीव नहीं है, चेतना नहीं है ये जानो उसमें भी तुम्हारे जैसे प्राण हैं, इसलिये उसे भी इस वसुधा पर जीने का पूरा अधिकार है। जन्म के बाद उसे मारते तो कोर्ट से फाँसी की सजा होती। गर्भ में मारा है, गर्भ से सजा तो नहीं दिला सकते किन्तु तुमने जो कृत्य किया है उससे बंधा कर्म, तुम्हारी आत्मा की साक्षी में हुआ वह दुष्कर्म, परमात्मा की साक्षी में हुआ वह दुष्कर्म निःसंदेह उसका फल देगा ही देगा।

महानुभाव! आप भी जो आज नारी हैं अपने बारे में भी सोचें यदि आपकी माँ आपको जन्म नहीं देती तो आप इस पृथ्वी को कैसे देखती, अपनी आत्मा का कल्याण कैसे करती, कैसे संस्कारों का संवहन करती, कैसे मानवता को जीवंतता प्रदान करती, कैसे

संस्कृति को संवर्धित करती? यह सोचकर ही जीवन में संकल्प लेना है कि किसी के भी घर की कली हो हम कभी भी जीवन में उस कली को कुचलने की अनुमति नहीं देंगे, प्रेरणा नहीं देंगे, कहेंगे नहीं, सुनेंगे नहीं उन्हें अच्छा समझाने की कोशिश करेंगे। एक कली को कुचलना अनेकों शुभ संभावनाओं को कुचलना है, एक को भी कुचलना मानो धर्म का ही घात करना है।

महानुभाव! बेटियाँ वृक्ष के नीर की तरह से व बेटे खाद की तरह से होते हैं। वृक्ष को खाद न मिले तो चल जायेगा किन्तु नीर तो मूल तक सिंचन करने वाला है, वह वृक्ष को हरा भरा करता है। खाद और स्वाद दीर्घ काल तक अच्छे नहीं लगते बेटियाँ नीर की तरह अपने माता-पिता की पीर को जानती हैं। अपनी पीर को वीर बनकर धीरता से सहन करती हैं। दूसरों के कष्टों में अधीर हो जाती हैं, दोनों कुलों की प्रतिष्ठा बढ़ाने में चीर की तरह से होती हैं, जिन्होंने इन्हें सम्मानित अवस्था में स्वीकार किया है उनकी तकदीर और तस्वीर बदल जाती है। दुःखों को नष्ट करने के लिये इन जैसी शमशीर (तलवार) संसार में दूसरी नहीं। ये गरिष्ट मावा नहीं पाचक पनीर की तरह से होती हैं।

जो बेटियों को पैर की जंजीर मानते हैं उन्हें उनके जीवन में कभी सौभाग्य की खीर उपलब्ध नहीं होती। बेटा यदि धनुष की तरह से है तो बेटी तीर की तरह लक्ष्य तक पहुँचाने वाली है। बेटा यदि नीर की धार की तरह से है तो बेटी नदी के तीर की (तट) तरह से है जो उसे संयमित रखती है। ज्यादा खाद पेड़ को जलाता (खराब करता) ज्यादा स्वाद पेट को खराब करता है।

महानुभाव! जिनके मन में उस कली के प्रति करुणा का भाव नहीं है, दया क्षमा का भाव नहीं है तो समझना चाहिये उस व्यक्ति से ज्यादा निष्ठुर, क्रूर, पाषाण हृदयी, पापी दूसरा कोई जीव नहीं।

आप सभी लोग दया, क्षमा, अहिंसा, समता, मैत्री, प्रमोद इत्यादि भावनाओं से परिपूरित होकर उस कली का भी पल्लवन करें। जिसके घर में कली नहीं है तो कली की भावना भी भायें। वे ये न सोचें कि हमें पुत्र ही मिले, पुत्री की भी भावना उसी प्रकार से रखें।

हम वो राही हैं जो लिये फिरते हैं सिर पर सूरज,
हम कभी पेड़ों से छाया नहीं माँगा करते।
बेटियों के लिये भी हाथ उठाओ मंजर,
सिर्फ भगवान् से बेटा ही नहीं माँगा करते।।

भगवान् से सिर्फ बेटा मत माँगो, भगवान् से वैसे तो कुछ भी मत माँगो परंतु जब बेटा माँगते हो तो बेटी भी माँगो। महानुभाव! हमने कई परिवार ऐसे देखे जहाँ बेटियाँ नहीं, उनके मन बड़े व्यथित रहते हैं कहते हैं हमने महाराज जी बेटी को गोद लिया है। आपको आश्चर्य होगा बेटे तो सभी गोद लेते हैं उन्होंने बेटी को गोद लिया। बेटियाँ दिल को सकून देने वाली होती हैं, बेटियाँ अन्तस की पीड़ा को हरने वाली होती हैं इसलिये प्रत्येक परिवार में हँसती मुस्कुराती चहकती चिड़िया की तरह से, कल-कल करती हुयी नदी की तरह से बेटी रूपी सरिता अवश्य हो तभी देश में वृद्धि-समृद्धि, खुशहाली दृष्टिगोचर होगी। हम सब इसके सही अर्थ को, सही मायने को समझें। इन्हीं भावनाओं के साथ शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।
।।जैनं जयतु शासनं-विश्वकल्याणकारकं।।

***